भिक्षु वाङ्मय-२

आचार्य भिक्षु तत्त्व साहित्य

२

कालवादी री चौपई, इन्द्रियवादी री चौपई,
परजायवादी री चौपई

प्रवाचक
गणाधिपति तुलसी
आचार्य महाप्रज्ञ

प्रधान संपादक
आचार्य महाश्रमण

भिक्षु वाङ्मय‒२

आचार्य भिक्षु तत्त्व साहित्य

२

कालवादी री चौपई, इन्द्रियवादी री चौपई, परजायवादी री चौपई

प्रवाचक

गणाधिपति तुलसी

आचार्य महाप्रज्ञ

प्रधान सम्पादक

आचार्य महाश्रमण

सम्पादन सहयोगी

मुनि सुखलाल

मुनि कीर्ति कुमार

अनुवादक

मुनि मदनकुमार

जैन विश्व भारती प्रकाशन

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-३४१३०६
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (०१५८१) २२६०८०/२२४६७१
ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

प्रथम संस्करण : २०१३

मूल्य : २००/- (दो सौ रुपया मात्र)

टाईप सेटिंग : नीलम टाईप सेन्टर, लाडनूं

मुद्रक : पायोराईट प्रिन्ट मीडिया प्रा.लि., उदयपुर, फोन : ०२९४-२४१८४५२

सम्पादकीय

सत्य एक अगम विस्तार है। उसे अविकल रूप से समझ पाना सर्वज्ञता का ही विषय है। सर्वज्ञता एक अतीन्द्रिय अनुभूति है। उसे बौद्धिक या तार्किक दृष्टि से समझ पाना असंभव है। जब हम भगवान महावीर की वाणी का अनुशीलन करते हैं तो लगता है आगमों का ज्ञान एक अपार पारावार है। मैंने स्वयं भी आगमों की अनुप्रेक्षा की है तथा गुरुदेव आचार्यश्री तुलसी एवं आचार्यश्री महाप्रज्ञ की सन्निधि में आगम-सम्पादन के कार्य में भी मेरी भागीदारी रही है। इस सिलसिले में मैं आगमों की अपार ज्ञानराशि से अत्यन्त प्रभावित हुआ। मुझे ज्ञान के आनंत्य की एक झलक मिली। मैं केवल भगवती सूत्र की ओर दृष्टिपात करता हूं तो मुझे लगता है वह ज्ञान का विशाल खजाना है। उसमें अणु-परमाणु से लेकर समूचे लोक पर विस्तार से विचार किया गया है।

भगवान महावीर की वाणी प्राकृत भाषा में निबद्ध है। आचार्यश्री तुलसी ने उसे हिन्दी में अनूदित करने का बीड़ा उठाकर एक भागीरथ प्रयत्न किया है। आज प्राकृत को समझने वाले लोगों की संख्या अत्यंत अल्प है। सचमुच उसके हार्द को समझ पाना तो आचार्य महाप्रज्ञ जैसे कुछ विरले ही लोगों के लिए संभव है।

तेरापंथ परम्परा में पलने के कारण मैंने आचार्य भिक्षु के साहित्य को भी पढ़ा है। मैं उनकी प्रतिभा से भी अत्यन्त अभिभूत हूं। उन्होंने आगमों का मन्थन कर उसे अत्यंत कुशलता से राजस्थानी भाषा में गूंथ दिया। निश्चय ही महावीर को समझने में उन्होंने जो अर्हता प्राप्त की वैसी बहुत कम लोग कर पाते हैं। उनकी वाणी सहज ज्ञानी की वाणी है। वह स्वयं स्फुरित है। उसमें निर्मल रश्मियों एवं अनुभवों का प्रकाश है। उनकी दृष्टि स्पष्ट और सही सूझ-बूझ वाली है। उसमें जैन दर्शन के मौलिक स्वरूप पर दिव्य प्रकाश है तथा क्रांत वाणी की तीव्र भेदकता और उद्बोध है। स्व-समय और पर-समय का सूक्ष्म विवेक उनकी लेखनी के द्वारा जैसा प्रकट हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। मिथ्या मान्यताओं पर उन्होंने करारा प्रहार किया है।

संस्कृत व्याख्या साहित्य की बात तो दूर है उन्हें मूल आगम भी बड़ी दुर्लभता से प्राप्त हुए होंगे। फिर भी थोड़े से समय में आगमों का गहन अध्ययन कर उन्होंने अपनी क्षीर-नीर बुद्धि का अप्रतिम परिचय दिया है।

आचार्य भिक्षु एक कुशाग्र चर्चावादी भी थे। उनका अनेक उद्भट लोगों से चर्चा करने का काम पड़ा। यह सौभाग्य की बात है कि उन चर्चा-वार्ताओं को संकलित कर एक दूरदर्शिता का परिचय दिया गया। पर उन्होंने तत्त्वज्ञान को पद्यों में बांधने का जो प्रयत्न किया, वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गद्य साहित्य पढ़ने में तो सरल रहता है पर उसे अविकल रूप से स्मृति में संजो पाना अत्यंत कठिन होता है। आचार्य भिक्षु ने पद्य साहित्य की रचना लोक गीतों की शैली में की, इसलिए आज भी अनेक लोग अपने अधरों पर उन गीतों को गुनगुनाते रहते हैं। गीत याद करने में भी सुगम होते हैं। इसलिए अपढ़ लोगों के लिए भी वे परम्परित बन जाते हैं।

आचार्य भिक्षु का कवित्व अत्यन्त प्राञ्जल एवं रससिद्ध था। उन्होंने दार्शनिक साहित्य के साथ-साथ आख्यान साहित्य लिख कर भी अपनी लेखनी की कुशलता का परिचय दिया है। उनके आख्यानों में तत्कालीन लोक संस्कृति के सुघड़ बिम्ब उभरे हैं। मानव मन की अतल गहराइयों को छूने में वे सिद्धहस्त कवि थे। उनके कवित्व पर विस्तार से चर्चा करने के लिए एक पूरे ग्रंथ की आवश्यकता है।

फिर भी यह सही है कि आज राजस्थानी भाषा भी दुर्गम होती जा रही है। आचार्य भिक्षु निर्वाण द्विशताब्दी के अवसर पर १५ अक्टूबर २००४ को सिरियारी में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने मुझे फरमाया कि मैं भिक्षु वाङ्मय का हिन्दी में अनुवाद करूं। मेरे लिए उनकी आज्ञा अत्यन्त आह्लादक थी। उसे शिरोधार्य कर मैंने उसी वर्ष दीपावली के दिन शुभ मुहूर्त्त देखकर अपराह्न में भिक्षु वाङ्मय के अनुवाद को प्रारंभ करने के लिए मंगल पाठ सुना। मेरे साथ कुछ और भी संत थे। मैंने संतों के साथ बैठकर एक रूपरेखा बनाई। तदनुसार मैंने कुछ साधु-साध्वियों को भी इस कार्य में जोड़ा। यह निर्णय किया कि अनुवाद की अंतिम निर्णायकता मेरी रहेगी। मेरे अवलोकन के बाद अनुवाद को अंतिम रूप दिया जा सकेगा।

आचार्य भिक्षु ने लगभग ३८ हजार पद्य परिमाण साहित्य लिखा है, ऐसा आकलन है। द्वितीय आचार्य भारमलजी ने अपने हाथ से उस साहित्य का लेखन किया। हमने उसे ही प्रमाणभूत माना है। उस समय राजस्थानी में एक ही शब्द के अनेक पर्याय प्रचलित थे। उदाहरण के लिए हम आश्रव शब्द को लें। भिक्षु वाङ्मय

में आश्रव के आसरव, आसवर, आसव, आश्व आदि अनेक रूप स्वीकृत किए गए हैं। हमने भी उस मौलिकता की सुरक्षा करते हुए उन रूप पर्यायों को उसी रूप में मूल पाठ के रूप में स्वीकार किया है।

इसी प्रकार तात्कालीन राजस्थानी में अक्षरों के साथ बिन्दुओं का भी प्रयोग बहुलता से होता था। हमने भी मूल पाठ की इस मौलिकता को यथावत् स्वीकार किया है। हो सकता है वर्तमान में ऐसा प्रचलन नहीं है पर हमने उस समय की लिपिह्नरूढ़ि तथा इतिहास को सुरक्षित रखने की दृष्टि से तथा मूल पाठ की सुरक्षा के लिए उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया।

कुछ लोग राजस्थानी को एक बोलचाल की भाषा मानते हैं। पर इस भाषा के संपूर्ण वाङ्मय को देखा जाए तो लगेगा कि इसमें अभिव्यक्ति की अनुपम क्षमता है। जैनाचार्यों ने तमिल, तेलगु, कन्नड़, शूरसेनी, मराठी, गुजराती की तरह राजस्थानी भाषा में भी विपुल साहित्य लिखा है। यदि कोई विद्वान केवल तेरापंथी साहित्य का भी सम्यग् अनुशीलन करले तो उसे लगेगा कि राजस्थानी एक समृद्ध एवं समर्थ भाषा है। तेरापंथ के अनेकों आचार्यों तथा साधु-साध्वियों ने भी राजस्थानी भाषा में अपनी लेखनी चलाई है। निश्चय ही वह राजस्थानी भाषा की महत्त्वपूर्ण सेवा है।

भिक्षु वाङ्मय को हम चार भागों में बांट सकते हैंह्न१. तत्त्वदर्शन २. आचार दर्शन ३. औपदेशिक ४. आख्यान साहित्य।

आचार्य भिक्षु तत्त्व साहित्य के द्वितीय खंड में कालवादी री चौपई, इन्द्रियवादी री चौपई तथा पर्यायवादी री चौपई को लिया गया है। आचार्य भिक्षु की इन तीनों कृतियों में यथानाम विषय को प्रतिपादित किया गया है।

कालवादी और पर्यायवादी आत्मा के गुण और पर्याय को जीव नहीं मानते हैं, उनके बारे में लिखा गयाह्न

तिण नास्तवादी रा मत तणों, कालवादी पिरवार।
तिण नास्त पाडी जीवरी, ते भूलो भर्म गिवार।।१।।

आचार्य भिक्षु ने कालवादी और पर्यायवादी को नास्तिक मतावलम्बियों के परिवार का अंग बताया है क्योंकि उन्होंने जीव के अस्तित्व को अस्वीकार किया है। वे जीव की विभिन्न अवस्थाओं को काल या पर्याय कहकर ही संबोधित करते थे। आचार्य भिक्षु ने आगम प्रमाण सहित जीव के अस्तित्व की स्थापना तथा कालवादियों, पर्यायवादियों के मत का निरसन किया है।

'इन्द्रियवादी री चौपई' नामक ग्रन्थ में आचार्य भिक्षु ने इन्द्रिय के स्वरूप को स्पष्ट किया है तथा इस मत की स्थापना की है कि इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव हैं इसलिए वे सावद्य नहीं हैं। उनसे किंचित् भी पाप नहीं लगता है। पाप केवल इन्द्रियों की अविरति और अशुभ प्रवृति से लगता है। विषय, विकार और कषाय ही पाप के हेतु हैं और सावद्य हैं।

तात्त्विक तथ्यों की दृष्टि से ये तीनों कृतियों अति महत्त्वपूर्ण हैं। तीनों कृतियों में तत्संबंधित मतावलम्बियों के मतों को भी विस्तार से स्पष्ट किया गया है तथा आचार्य भिक्षु द्वारा उनका सटीक निरसन किया गया है। प्राप्त मत वर्तमान में किस धर्म-सम्प्रदाय को मान्य है यह शोध का विषय है किन्तु इससे यह स्पष्ट होता है कि उस काल में इन विचारों से भी प्रभावित समाज था।

इन ग्रंथों के अनुवाद कार्य का जिम्मा मुनि मदनकुमारजी को सौंपा गया। उन्होंने श्रम और निष्ठा के द्वारा इस कार्य को संपादित किया। भिक्षु वाङ्मय सम्पादन कार्य में शासनश्री मुनिश्री सुखलालजी स्वामी का योगदान प्राप्त होता है। इस अनुवाद कार्य को निर्णायक स्थिति तक पहुंचाने में मुनि कीर्तिकुमारजी का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है।

मैं मंगलकामना करता हूं कि इस कार्य में रत सभी साधु-साध्वियों के कदम निरंतर इस दिशा में उठते रहें।

जैन विश्व भारती, लाडनूं

आचार्य महाश्रमण

प्रकाशकीय

भिक्षु वाङ्मय का तेरापंथ के लिए आगम तुल्य महत्त्व है। आचार्य भिक्षु स्वयं आगमों को ही अपने विचार-चिन्तन का उत्स मानते हैं, पर कालक्रम से भगवान महावीर की विचार-धारा पर जो एक प्रकार की धुंध छा गई थी, उसे दूर करने में आचार्य भिक्षु का बहुत बड़ा योगदान है। इसीलिए उनका वाङ्मय तेरापंथ के लिए आगम साहित्य से कम नहीं है। वह तेरापंथ के रथ की धूरी के समान है।

एक संतहृदार्शनिक के रूप में आचार्य भिक्षु को जगत् के सामने लाने का श्रेय आचार्यश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञ को है। यद्यपि चतुर्थ आचार्य जयाचार्य भी आचार्य भिक्षुमय ही थे। इसलिए उन्हें दूसरा भिक्षु भी कहा जा सकता है। पर उन्होंने आचार्य भिक्षु पर जो कुछ लिखा वह केवल राजस्थानी में था तथा उसका यथेष्ट प्रचार-प्रसार भी नहीं हो सका। आचार्य तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ ने आचार्य भिक्षु को पुनर्जन्म दिया। आपके प्रयासों से दार्शनिक जगत् में आचार्य भिक्षु के प्रति एक नया श्रद्धा भाव जागा। आचार्य भिक्षु की वाणी केवल वाङ्मय नहीं है अपितु अनुभवों का अखूट खजाना है। पर राजस्थानी भाषा में होने के कारण वह वर्तमान लोगों के लिए अगम्य बनती जा रही है। आचार्यश्री महाश्रमणजी ने अपने गुरुदेव के इंगित की आराधना करते हुए भिक्षु वाङ्मय का हिन्दी में अनुवादन करने का जो कार्य अपने हाथ में लिया वह अत्यंत सामयिक है। हम उनको शत-शत श्रद्धा नमन करते हैं।

राजस्थानी भाषा को राज्य मान्यता देने का एक प्रयास भी यदा-कदा होता रहता है। भिक्षु वाङ्मय इस प्रयास में एक मजबूत कड़ी बन सकता है। आचार्य भिक्षु को राजस्थानी के एक प्रबल संरक्षक के रूप में प्रस्थापित करने का भी यह एक महत्त्वपूर्ण अवसर है। हमें आशा ही नहीं विश्वास है कि संपूर्ण भिक्षु वाङ्मय का हिन्दी अनुवाद सामने आने से राजस्थानी भाषा का भी गौरव बढ़ेगा।

आचार्यश्री ने भिक्षु वाङ्मय के प्रकाशन के लिए जैन विश्व भारती को अवसर प्रदान किया यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है। जैन विश्व भारती तेरापंथ की तो एक प्रतिनिधि संस्था है ही, जैन समाज में भी इसका अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। विश्व भारती के अनेकविध गतिविधियां हैं। आगम साहित्य का प्रकाशन भी जैन विश्व भारती द्वारा हो रहा है। विश्व भारती द्वारा प्रकाशित आगमों को विद्वानों ने एक महार्घ्य महत्त्व प्रदान किया है। अन्य साहित्य का भी काफी समादर हुआ है। अब आचार्य भिक्षु के तत्त्व साहित्य का द्वितीय खंड प्रकाशन में आ रहा है। यह बहुत प्रसन्नता की बात है।

भिक्षु वाङ्मय के सम्पादन में परम पूज्य आचार्यश्री महाश्रमणजी का अमूल्य समय तो लगा ही है पर उनके निर्देशन में मुनिश्री सुखलालजी एवं मुनिश्री कीर्तिकुमारजी ने भी श्रम किया है। उसके लिए हम उनके प्रति श्रद्धानत हैं।

प्रस्तुत भिक्षु वाङ्मय की साहित्य श्रृंखला तेरापंथ के अनुयायियों के लिए तो उपयोगी सिद्ध होगी ही पर अन्य जिज्ञासुजनों के लिए भी तत्त्व दर्शन में सहायक बनेगी। यही मंगलभावना है।

ताराचंद रामपुरिया
अध्यक्ष
जैन विश्व भारती

आमुख

काल जीव-अजीव का पर्याय है यह निश्चय का दृष्टिकोण है तथा काल स्वतंत्र द्रव्य है यह व्यवहार का दृष्टिकोण है। इन दोनों दृष्टियों से काल का अस्तित्व है। द्रव्य से वह अनन्त द्रव्यों पर वर्तन करता है, क्षेत्र से वह अढाई द्वीप प्रमाण है, काल से वह अनादि-अनन्त है, भाव से वह अरूपी है और गुण से वह वर्तमान गुण से युक्त है।

काल पांच समवाय में स्वीकृत है। यह हर घटना का महत्त्वपूर्ण घटक है। काल का अस्तित्व है, किन्तु प्रदेश-प्रचय न होने से वह अस्तिकाय नहीं है।

काल प्रति समय उत्पन्न होता है और प्रवाह रूप से निरन्तर बना हुआ है। सूर्य और चन्द्रमा की गति से काल निष्पन्न होता है। इसे व्यावहारिक काल कहते हैं। यह काल अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों में प्रवर्त्तित हो रहा है। यह काल तिर्यक् लोक के मध्यवर्ती पैंतालीस लाख योजन क्षेत्र में वर्त्तन करता है।

कालवादी एक मत रहा है, जिसकी यह मान्यता थी कि लोक और अलोक में सर्वत्र काल का वर्त्तन होता है। इस तरह वे काल के विषय में भ्रान्त थे। काल का एकान्त आग्रह होने से वे कालवादी के रूप में प्रसिद्ध हुए।

कालवादी नास्तिक मत है। वे जीव के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में तीर्थंकर आदि प्रवर पुरूष अजीव हैं। इसी तरह गुरु और धर्म को भी वे अजीव की कोटि में गिनते हैं। वे इन सबको काल कहकर लोगों में अपना मत प्रचारित करते रहे हैं।

कालवादी जीव की विभिन्न अवस्थाओं को केवल काल कहकर ही संबोधित करते थे। चार गति, छः काय, जीव के चौदह भेद आदि सभी को वे काल ही मानते थे। प्रथम तीन ध्यान, तीन अज्ञान, चार संज्ञा, छः लेश्या,

चौदह गुणस्थान आदि को वे काल निरूपित करते थे।

कालवादियों की धारणा थी कि जो बोल सिद्धों में नहीं पाए जाते हैं, वे सभी काल हैं। जैसे जो चार आत्माएं सिद्धों में नहीं पाई जाती हैं, उन्हें वे काल कहते थे। छह प्रकार के निर्ग्रन्थ और पांच प्रकार के चारित्र-जो लोकवंद्य हैं, इन्हें भी ये काल बतलाते थे।

यह जगत् पुद्गलमय है। पुद्गल के चार भेद हैं-स्कंध, देश, प्रदेश और परमाणु। कालवादी इन्हें भी काल कहने से नहीं चूकते थे।

कालवादी की चौपई में मिथ्या मान्यताओं का निरसन कर यथार्थ तत्त्व को उजागर किया गया है। चार गति, षड् जीवनिकाय, चौबीस दण्डक आदि को इस कृति में आगम-प्रमाण से जीव प्रमाणित किया गया है। इस तरह यह रचना तात्त्विकता से ओतः प्रोत है। महामना आचार्य भिक्षु की लेखनी से क्षीरनीरवत् इसमें तत्त्वान्वेषण हुआ है जो मनोमुग्धकारी है। इसमें सात गीत हैं। ३६ दोहे और २४७ गाथाओं से गुंफित यह रचना विशिष्टता से परिपूर्ण है।

कालवादी री चौपई

दुहा

१. दसासतखंध सूयगडाअंग में, अकिरीयावादी रो विसतार।
नासत मत छें तेहनों, वले किरिया न मांनें लिगार।।

२. तीर्थंकर चक्रवतादिक, वले साध सती अणगार।
त्यांनें जीव न मांनें सर्वथा, उ जांणें भर्म संसार।।

३. तिण नास्तवादी रा मत तणों, कालवादी परिवार।
तिण नास्त पाडी जीवरी, ते भूलो भर्म गिवार।।

४. उ सरधा परूपें एहवी, कर कर खांच अतीव।
जे सिद्धां में गुण पावे नही, ते गुण सर्व अजीव।।

५. वले असासता द्रव्य नें इम कहें, नही चेतन गुण परजाय।
उण कुण कुण काल में घालीया, ते सुणजो चित ल्याय।।

ढाल : १

(लय : आ अणुकम्पा जिण अगन्या में)

आ सरधा छें कालवादी री।।

१. तीरथंकर गणधर धर्म रा नायक, आचार्य नें उवझाय मोटां अणगारो।
साध साधवीयादिक च्यारोइ तीर्थ, त्यांनें अजीव कहें मुढ विना विचारो।।

२. देव गुर धर्म तीनोइ रत्न अमोलक, त्यांरो सरणो लीयां उतरे भवपारो।
यांनें अजीव कहें कोइ मुढ मिथ्याती, तिण आंख मीचीने कीयों अंधारो।।

दोहा

१. दशाश्रुतस्कन्ध और सूत्रकृतांग में अक्रियावादी का बहुत विस्तृत विवेचन है। उनका मत नास्तिक है। वे क्रिया को किंचित् भी नहीं मानते हैं।

२. वे तीर्थंकर, चक्रवर्ती और साधु-साध्वी आदि को सर्वथा जीव नहीं मानते हैं। वे संसार को भ्रम (जिसका कोई अस्तित्व न हो) के रूप में मानते हैं।

३. उस नास्तिकवादी मत में जो कालवादियों का परिवार है, उसने जीव के अस्तित्व को अस्वीकार कर दिया। वे अज्ञ जन भ्रमवश भटक गए हैं।

४. जो गुण सिद्धों में नहीं पाए जाते हैं, वे सारे गुण अजीव हैं। वे अत्यन्त आग्रहपूर्वक ऐसी श्रद्धा की प्ररूपणा करते हैं।

५. वे अशाश्वत द्रव्य के विषय में कहते हैं कि वे चेतन, गुण और पर्याय नहीं हैं। उन्होंने किस-किस को काल में डाल रखा है, उसे आप एकाग्र चित्त होकर सुनें।

ढाल-एक

यह कालवादी की श्रद्धा है।

१. तीर्थंकर और गणधरह्नधर्म नायक, आचार्य और उपाध्यायह्नमहामुनि, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाह्नचार तीर्थ हैं। ऐसे उत्तम जीवों को मूढ जन अविचार पूर्वक अजीव कहते हैं।

२. देव, गुरु और धर्म-ये तीन अनमोल रत्न हैं। उनकी शरण से जीव भव सागर से उत्तीर्ण हो जाते हैं। कोई मूढ-मिथ्यात्वी इन्हें अजीव कहता है, उसने आंख बन्द कर अन्धेरा कर दिया है।

३. गुर ही काल नें चेलो ही काल, काल रो विनो काल करें उछरंगो।
काल सुं काल संभोग करें छें, काल सुं काल रो मन जाअें भंगो।।

४. काल उपदेस दे सूतर वांचें, धर्म कथा कहें मोटें मंडांणों।
काल ही आय वखांण सुणें छें, काल कनें काल लें पचखांणो।।

५. काल तिरें नें काल ही तारें, काल ने काल उतारें पारो।
काल डूबें नें काल डबोंवे काल ने काल करें छें खुवारो।।

६. चक्रवत वासुदेव मंडलीक राजा, ए मनख हूआ करणी कर मोटी।
भवी द्रव्य देवादिक पांचोइ देवां नें, यांनें अजीव कहें तिणरी सरधा खोटी।।

७. बाप ही काल नें बेटोइ काल, काल रे काल वधे परवारो।
काल जन्म लेइ मोटो हुवे छें, पछें काल रे वधें छें विषय विकारो।।

८. काल परणीजे नें काल परणावें, काल रे काल प्रावणा आवें।
असणादिक आहार काल नीपाए, काल जीमें नें काल जीमावें।।

९. अपर्याप्तो पर्याप्तो काल, काल छें बाल जुवान नें बूढो।
नेरइयो तिरजंच मिनख नें देवा, सगला नें काल कहें छें मूंढो।।

१०. चालें ही काल नें बोलें ही काल, काल करें छें विणज व्यापारो।
खेती करसंण आदि दे काल करें छें, वले काल करें छें झगडा नें राडो।।

३. गुरु ही काल है और शिष्य ही काल है। काल का विनय काल ही उत्साह पूर्वक करता है। काल से काल संभोग करता है तथा काल से काल का मन भंग भी हो जाता है।

४. काल उपदेश देता है, आगम का वाचन करता है और बहुत लोगों के बीच धर्म-कथा करता है। काल ही आकर के व्याख्यान सुनता है और काल के पास ही काल प्रत्याख्यान लेता है।

५. काल ही तीर्ण है और काल ही तारक है। काल को काल ही भव समुद्र से पार लगाता है। डूबने वाला भी काल है और डूबोनेवाला भी काल है। काल का अनिष्ट करने वाला काल ही है।

६. चक्रवर्ती, वासुदेव और माण्डलिक राजाह्नवे विशिष्ट साधना कर मनुष्य हुए हैं। भव्य द्रव्य देव आदि पांच प्रकार के देवों को अजीव कहने वाले की श्रद्धा विपरीत है।

७. पिता भी काल है और पुत्र भी काल। काल के काल का परिवार बढ़ रहा है। काल जन्म लेकर बड़ा होता है और फिर काल के विषय-विकार की वृद्धि होती है।

८. काल ही पाणिग्रहण करता है और काल ही पाणिग्रहण करवाता है। काल के काल ही मेहमान बनकर आता है। अशन आदि आहार को काल ही निष्पन्न करता है तथा काल ही खाता है और काल ही खिलाता है।

९. काल ही अपर्याप्त और पर्याप्त है। बाल, जवान और वृद्ध भी काल है। नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवह्नइन सबको काल कहने वाले मूढ हैं।

१०. चलने वाला भी काल है और बोलने वाला भी काल है। काल ही वाणिज्य और व्यापार करता है। खेती-कृषि आदि भी काल करता है तथा कलह-झगड़ा भी काल करता है।

११. एकेंद्री आदि दे पंचिंद्री नें, छकाय धुरा धर कहें छें कालो।
चवदेइ भेद छें जीवरा त्यांनें, यांने अजीव कहें अग्यांनी बालो।।

१२. हिंसक झूठाबोलो इ काल, चोर कुसीलीयों नें धनपातर।
वले तीन सौ तेसठ पाखंडीयां नें, यांनें इ काल कहें छें कुपातर।।

१३. भोगी काल नें जोगी काल, वेंरी नें मिंत्री ए पिण कालो।
मायावीया मिथ्याती नें काल कहें छें, इण सरधा रो बुधवंत करसी टालो।।

१४. आरत रूद्र नें धर्म ध्यांन, तीनोइ ध्यांन नें कहें छें कालो।
छ भाव लेस्या नें पिण काल कहे छें, सूतर रे सिर दे दे आलो।।

१५. अज्ञान तीन नें च्यारूंइ संज्ञा, वले चवदें गुणठांणा कहें छें कालो।
बुध अकलमत ए पिण काल, ते कर रह्या मूर्ख झूठी झखालो।।

१६. छ नियठा नें पांचोंइ चारित, उठांण कमादिक ए पिण पांच।
वले आत्मा च्यार नें सावद्य निरवद, यांनें काल कहें मूढ कर कर खांच।।

१७. इत्यादिक जीवरा बोल अनंता, त्यानें नेश्चेंइ काल कहे छें अग्यांनी।
जे जे सभाव सिद्धां में न पावें, ते सगला नें कर दीया काल री कांनी।।

१८. असासता सगलाइ पाछें कह्या ते, त्यांनें तो जीव कहिसी किण लेखें।
यांनें जीव कहें तो झूठ बोल छें, आपणी सरधा सांमों क्यूं नही देखें।।

१९. जो चरचा रो कांम पर्‌यां जीव कहें तो, असासता द्रव्य री पूछा कीजें।
असासता द्रव्य नें काल कहें छें, यांनें जीव कहें तो झूठो घालीजें।।

११. एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रियह्नइन षड्जीव निकाय के धुराधर को काल कहते हैं। जीव के चौदह भेद हैंह्नबाल-अज्ञानी जन इन्हें अजीव कहते हैं।

१२. हिंसक, मृषावादी, चोर, अब्रह्मचारी और परिग्रही तथा तीन सौ त्रेसठ प्रकार के पाखंडीह्नकुपात्र इन्हें काल कहते हैं।

१३. भोगी काल है और योगी काल है। शत्रु और मित्र भी काल हैं। मायावी और मिथ्यात्वी को काल कहते हैं। इस श्रद्धा का बुद्धिमान लोग परहेज करेंगे।

१४. आर्त्त, रौद्र और धर्म ध्यानह्नइन तीनों को काल कहते हैं। छह भाव लेश्या को भी काल कहते हैं। वे सूत्र की वाणी को कलंकित करते हैं।

१५. तीन अज्ञान, चार संज्ञा और चौदह गुणस्थान को वे काल कहते हैं। संबुद्ध और बुद्धिमान पुरूषह्नये भी काल हैं। मूर्ख इस तरह का मिथ्या बकवास कर रहे हैं।

१६. छह निर्ग्रन्थ, पांच चारित्र और उत्थान, कर्म आदि पांच वीर्य तथा चार आत्मा और सावद्य-निरवद्य को मूढ लोग आग्रहपूर्वक काल कहते हैं।

१७. ऐसे जीव के अनंत बोल (पर्याय) हैं। अज्ञानी लोग इन्हें निश्चयपूर्वक काल कहते हैं। जो जो स्वभाव सिद्धों में नहीं पाए जाते हैं, उन सबको उन्होंने काल के खाते में डाल दिया हैं।

१८. उपरोक्त सभी अशाश्वत बोलों (पर्यायार्थिक नयों) को वे किस अपेक्षा से जीव कहेंगे? इन्हें यदि वे जीव कहते हैं तो झूठ लगता है। वे अपनी श्रद्धा की ओर क्यों नहीं देखते?

१९. यदि चर्चा काल में वे इन्हें जीव कहते हैं तो अशाश्वत द्रव्य के विषय में पृच्छा करनी चाहिए। अशाश्वत द्रव्य को वे काल कहते हैं अतः इन्हें जीव कहने पर उन्हें मृषाभाषी सिद्ध करना चाहिए।

२०. असासता द्रव्य नें जीव कहें तो, आपरी सरधा रो आप अजांणों।
सिधां में नही ते गुण नें जीव थापें, तो पोतेइ काय न दीसें पिछांणों।।

२१. हिवें कालवादी नें पूछा कीजें, संसार मांहें दुख किण विध पावें।
कुण उपजावें नें कुण खपावें करमां रो करता कुण कहावें।
ए प्रश्न कालवादी नें पूछीजें।।

२२. जो करमा रो करता जीव नें थापें, तो उणरी सरधा जाबक उठजावें।
करता अनेक असासता दीसें, वले सिधां में करता कठासूं वतावें।।

२३. जो करमा रो करता अजीव कहें तो, घणां लोक न मांनें तिणरी वातो।
आ सरधा हुवे तो पिण छांनें राखें, एहवा कपटी रो झूठ नें गूढ मिथ्यातो।।

२४. उणरी सरधा रा अेंलांण एहवा दीसें, करमा रा करता नें सरधें छें कालो।
कदा झूठ बोले ने जीव कहें पिण, सिधां में नही करता ते सरधा संभालो।।

२५. सिधां मांहे तो करता मूल न दीसें, ते जीव नें करता कहिसी किण लेखें।
एहवा प्रश्न पूछ्यां रा जाब न आवें, जब झूठ बोलण री सेरी देखें।।

२६. केंतो झूठ जांणें नें बोलें छें, के आपरी भाषा रो आप अजांणो।
ए वातरो निश्चो तो केवली जांणे, पिण बुधवंत होसी ते करसी पिछांणो।।

२७. श्री वीर कह्यो आचारंग मांहें, करमां रो करता छें निश्चें जीवो।
चेतन गुण पर्याय सहीत ओलखसी, त्यारें अभिंतर ग्यांन खुलसी घट दीवो।।

२०. यदि वे अशाश्वत द्रव्य को जीव कहते हैं तो वे अपनी श्रद्धा से स्वयं ही अनभिज्ञ हैं। जो गुण सिद्धों में नहीं हैं, उन्हें वे यदि जीव कहते हैं तो उन्हें स्वमत की किंचित् भी पहचान नहीं है।

२१. फिर कालवादी से पूछना चाहिए कि जीव संसार में किन कारणों से दुःख पाता है? कौन दुःख का उत्पादक है, कौन नष्ट करता है? और कौन कर्मों का कर्त्ता कहलाता है? ये प्रश्न कालवादी से पूछने चाहिए।

२२. यदि कर्म का कर्त्ता जीव को स्थापित करते हैं तो उनकी श्रद्धा सर्वथा समाप्त हो जाती है। कर्म के कर्त्ता अनेक और अशाश्वत दीख रहे हैं (मोक्षगामी भव्य जीवों की अपेक्षा से) तथा सिद्धों में कर्त्ता कहां से बताएंगे?

२३. यदि वे कर्म के कर्त्ता को अजीव बतलाएं तो अनेक लोग उनकी बात को स्वीकार नहीं करेंगे। यह श्रद्धा होती है तो भी वे छिपाकर रखते हैं। ऐसे कपटी का वचन झूठ और गूढ़ मिथ्यात्व वाला है।

२४. उनकी श्रद्धा के संकेत ऐसे प्रतीत होते हैं कि वे कर्म के कर्त्ता को काल श्रद्धते हैं। कदाचित् वे झूठ बोलकर उसे (कर्म के कर्त्ता को) जीव कह देते हैं किन्तु सिद्धों में कर्तृत्व भाव नहीं है। इस श्रद्धा को समझें।

२५. सिद्धों में तो मूलतः ही कर्त्ता भाव नहीं होता फिर वे किस न्याय से जीव को कर्त्ता कहेंगे? ऐसे प्रश्न पूछने पर जबाब न आने से वे झूठ बोलने का मार्ग खोजते हैं।

२६. वे जानबूझकर झूठ बोलते हैं या अपनी भाषा से अनभिज्ञ हैं, इस बात का निश्चय तो केवलज्ञानी ही जानते हैं, किन्तु जो बुद्धिमान होगा वह पहचान कर लेगा।

२७. आचारांग सूत्र में भगवान श्री महावीर ने कहा है कि कर्मों का कर्त्ता निश्चय ही जीव है। जो व्यक्ति चेतन तत्त्व को गुण और पर्याय के साथ जानेंगे, उनके आभ्यन्तर ज्ञान रूपी घट दीप प्रज्वलित होगा।

२८. हिंसादिक झूठ चोरी जीव करे छें, तिण किरतब सुं लागें जीवरें पापो।
तो छेदन भेदन जन्म मरण रा, चिहुं गति में दुख भुगतें आपो।।

२९. कालवादी री सरधा परगट कीधां, केइ क्रोध करे केइ मन माहे लाजें।
जिण आगम लोपे विरूध परूपें, ते सीह तणी परें कदेय न गाजें।।

३०. इण खोटी सरधा रो उघाड़ कीयां सुं, केइ बुधवंत सुण सुण रहसी दूरा।
केइ विपरीत सरधा आदर नें छोड़ें, त्यांनें पिण वीर वखांण्या सूरा।।

•

२८. जीव हिंसा, झूठ, चोरी आदि दुष्कर्म करता है, जिससे उसके पाप कर्म का बंध होता है। परिणाम स्वरूप वह छेदन-भेदन और जन्म-मरण के दुःख चारों गतियों में स्वयं ही भोगता है।

२९. कालवादी की श्रद्धा को प्रकट करने पर कई मन में कुपित होते हैं और कई लज्जित। जो लोग जिन आगम को विलुप्त कर विरुद्ध प्ररूपणा करते हैं, वे सिंह की तरह कभी गाज नहीं सकते।

३०. इस मिथ्या श्रद्धा को उद्घाटित करने से कई बुद्धिमान पुरूष इसे सुन-सुन कर दूर रहेंगे तथा कई गृहीत विपरीत श्रद्धा को छोड़ देते हैं। उन्हें भी भगवान महावीर ने शूरवीर कहा है।

●

दुहा

१. आ कालवादी री सरधा बुरी, घोर रूद्र मिथ्यात।
हलूकर्मा जीव किम सरधसी, आ प्रतक्ष झूठी वात।।

२. चेतन गुण परजाय नें, कहि कहि अग्यांनी काल।
उंधी करेय परूपणा, दीयो घणां सिर आळ।।

३. त्यांने साधु वतावें जूजूवा, जीव अजीव साख्यात।
पिण गुघू सरीखा मांनवी, त्यांरे दीह तकाइज रात।।

४. त्यांनें धुर सूं तो संत मिलिया नही, कीधो कालवादी रो प्रसंग।
जांणें निरणें कोठें झूंबीयों, काल नाग भूयंग।।

५. उणनें मिलें सतगुर गारलूं, जो उ दूर करें पखपात।
सूतर अरथ सुणाय नें, काढें जहर मिथ्यात।।

६. कालवादी री सरधा उपरें, सूतर मांहें जाब अनेक।
पिण थोडासा परगट करूं, ते सुणजो आण ववेक।।

ढाल : २

(लय : पाखंड वधसी आरे पांचमें)

ए अरिहंत वायक सतकर जांणजो रे।।

१. तीर्थंकर गणधर उत्म जीव छें रे, उत्म छें आचार्य नें उवझाय रे।
त्यांरा ग्यांन दरसण चारत छें निरमला रे, यांनें वांद्या सुं पातक दूर पलाय रे।

दोहा

१. यह कालवादी की श्रद्धा अत्यन्त बुरी, रौद्र और मिथ्या है। हलुकर्मी जीव इस प्रत्यक्ष असत्य बात पर कैसे श्रद्धा करेंगे?

२. अज्ञानियों ने चेतन, गुण और पर्याय को काल कह-कहकर मिथ्या प्ररूपणा कर बहुत लोगों के सिर पर कलंक चढाया है।

३. उनको उत्तम साधु जीव और अजीव तत्त्व का भिन्न-भिन्न स्वरूप स्पष्ट रूप से बतलाते हैं, किन्तु वे उल्लू सदृश मानव ऐसे हैं कि उनके लिए दिन ही रात है।

४. उन्हें प्रारंभ से तो शुद्ध साधुओं का सुयोग मिला नहीं, अतः वे कालवादियों की संगति में चले गए। यह तो वैसा ही हुआ है जैसे किसी खाली पेट वाले व्यक्ति को काला नाग डस गया हो।

५. उन्हें सद्‌गुरु रूपी गारडू (विष-वैद्य, सांप का जहर उतारने वाला) मिलते हैं, जो पक्षपात पूर्ण दृष्टि को दूर कर देते हैं और सूत्र-अर्थ सुनाकर मिथ्यात्व रूपी विष बाहर निकाल देते हैं।

६. कालवादियों की श्रद्धा पर सूत्र में अनेक जबाब हैं। पर कुछ प्रकट कर रहा हूं, उन्हें विवेक पूर्वक सुनें।

ढाल : दो

इस अर्हत्-वाणी को सत्य जानें।

१. तीर्थंकर, गणधर, आचार्य और उपाध्याय उत्तम जीव हैं। उनके ज्ञान, दर्शन और चारित्र गुण निर्मल हैं। उनको वन्दन करने से पाप कर्म दूर पलायन कर जाते हैं।

२. वले साध साधवी श्रावक श्रावका रे, सूतर में भाष्या छें तीर्थ च्यार रे।
त्यांनें पिण उत्म जीव जिण कह्या रे, ग्यांनादिक गुण रत्नां रा भंडार रे।।

३. त्यांनें कालवादी पाखंडी इम कहें रे, ए सगला छें जड अचेतन काल रे।
यांनें जीव चेतन कोइ मत जांणजो रे, ए दीयो अग्यांनी मोटो आल रे।।
एक कालवादी रो मत रूडो नही रे।।

४. च्यारूं तीर्थ तीथंकर देव मे रे, पावें गुणठाणा परजा प्रांण रे।
जोग उपीयोग लेस्यां तेहमें रे, यांनें अजीव कहें छें मुंढ अयांण रे।।

५. त्यांरो विनो वीयावच गुण कीरत कीयां रे, बांधे तीथंकर गोत रसाल रे।
ते कह्यो छे गिताधेन आठमें रे, लीजो वीसोइ बोल संभाल रे।।

६. ओ काल वीयावच करसी किण विधें रे, काल वीयावच केम कराय रे।
ए कालवादी कूडो मत काढीयो रे, ए प्रतक्ष चोडें भूलों जाय रे।।

७. भवी द्रव्य देवादिक पांचूं देवमें रे, यांमें करें केइ वेक्रें रूप रसाल रे।
यांरी गति आगति नें यांरो आंतरो रे, यांनें अजीव कहें ते मूर्ख बाल रे।।

८. अें पेंली गतमां सूं उपजें आय नें रे, अें मरनें उपजें पेंली गति माहि रे।
देवातिदेव जाअें छें मुगत में रें, यांनें अजीव सरधे नें बूडो कांय रे।।

९. परभव में जासी ते निश्चें जीव छें रे, काल गतागत करसी केम रे।
इतरोइ न सूझें मोह अंध जीव नें रे, उ बोलें सूंनें चित गहला जेम रे।।

२. इसी तरह सूत्र में चार तीर्थ बतलाए गए हैंह्नसाधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। जिनेश्वर देव ने उन्हें भी उत्तम जीव कहा है, क्योंकि वे ज्ञान आदि गुण रत्नों के भण्डार हैं।

३. उन्हें कालवादी पाखण्डी यों कहते हैं कि ये सब जड़, अचेतन और काल हैं। उन्हें जीव और चेतन कोई न जानेंह्नयह कहकर इन अज्ञानियों ने बहुत बड़ा मिथ्यारोपण किया है। यह कालवादी का मत सम्यक् नहीं है।

४. चार तीर्थ और तीर्थंकर देव में गुणस्थान, पर्याप्ति, प्राण, योग, उपयोग और लेश्या पाए जाते हैं। मूढ और अज्ञानी जन इन्हें अजीव कहते हैं।

५. उनका विनय, वैयावृत्त्य और गुणोत्कीर्तन करने से जीव अत्यन्त शुभ तीर्थंकर गोत्र का बंधन करता है। यह ज्ञाता सूत्र के आठवें अध्ययन में (सं. गा. १) कहा गया है। वहां (वर्णित तीर्थंकर गोत्र बंध के) बीसों ही बोलों को देखें।

६. यह काल वैयावृत्त्य किस प्रकार करेगा और कैसे करवाएगा? इन कालवादियों ने मिथ्या मत निकाल लिया है और वे प्रत्यक्षतः भूले हुए हैं।

७. भव्य द्रव्य देव आदि पांच प्रकार के देवों में कई अति सुन्दर वैक्रिय रूप बनाते हैं। इनकी गति, आगति और अन्तराल को अजीव कहने वाले मूर्ख और अज्ञ हैं।

८. ये जीव पूर्व गति में से आकर उत्पन्न होते हैं और ये (जीव) मरकर उत्तर गति में उत्पन्न होते हैं। देवाधिदेव (तीर्थंकर भगवान) शरीर को छोड़कर मोक्ष में जाते हैं। इन्हें अजीव मानकर ये लोग क्यों डूब रहे हैं?

९. परभव में जाने वाले निश्चय ही जीव हैं। काल गति और आगति कैसे करेगा? मोहान्ध जीव को इतना भी नहीं दीख रहा है और वह शून्य चित्त होकर बावले की तरह बोल रहा है।

१०. भवी द्रव्यादिक पांचूं देवरो रे, अर्थ भगोती सुतर माहि रे।
नवमें उदेसें सतक बारमें रे, ए निरणों कर लेजो भवीयण ताहि रे।।

११. एकंद्री आदि पचिंद्री जीव नें रे, छकाय धुरा धर कहें छें काल रे।
चवदेंइ भेद जीवरा तेहमें रे, यांनें अजीव कहें अग्यांनी बाल रे।।

१२. काल समयादिक वरतें तेहनें रे, नही कोइ खंध देस परदेस रे।
तिण काल नें एकेंद्रीयादिक जे कहै रे, ते करें अग्यांनी कूड कलेस रे।।

१३. एकेंद्री आदि पचिंद्री जीव नें रे, देस प्रदेस कह्या जिणराय रे।
ते देस प्रदेस चेतन द्रव्य रा रे, जोवो भगोती सुतर माहि रे।।

१४. ते दशमें उदेशें दूजा सतक में रे, वले दशमा सतक रें पेंहिलें जांण रे।
सोलमें सतक उदेशें आठमें रे, ए निरणों कर लेजो चुत्तर सुजांण रे।।

१५. वले दसमें उदेसें सतक इग्यारमें रे, तिहां पिण तेहीज छें निसतार रे।
जीव अजीव देस परदेस नो रे, रूपी अरूपी नो विस्तार रे।।

१६. नेरइयों तिरजंच मिनख नें देवता रे, त्यांरे आठोंई करम कह्या भगवंत रे।
अें जीव हूसी तो यांरे कर्म छें रे, त्यांने निश्चेंइ जीव जांणो मतवंत रे।।

१७. चोवीसोइ डंडक नियमा जीव छें रे, नियमा कह्यो ते वीसवावीस रे।
दसमें उदेशें छठा सतक में रे, भगोती में भाख गया जगदीस रे।।

१०. भव्य द्रव्य देव आदि पांच प्रकार के देवों का अर्थ भगवती सूत्र के बारहवें शतक के नौवें उद्देशक (सू. १६३ से १६८) में उपलब्ध होता है। भव्य जीवों को यह निर्णय कर लेना चाहिए।

११. षड्जीवनिकाय की धुरा को धारण करने वाले एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों को ये काल कहते हैं। उनमें जीव के चौदह ही भेद पाए जाते हैं। बाल-अज्ञानी लोग इन्हें अजीव कहते हैं।

१२. समय आदि को काल कहते हैं, जो निरन्तर वर्त्तन कर रहा है। उसके स्कंध, देश और प्रदेश नहीं होते हैं। उस काल को एकेन्द्रिय आदि कहने वाले अज्ञानी लोग मिथ्या क्लेश कर रहे हैं।

१३. एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों के जिनेश्वर देव ने देश और प्रदेश कहे हैं। वे देश और प्रदेश चेतन द्रव्य के हैं। यह भगवती सूत्र में देखें।

१४. यह तथ्य भगवती सूत्र के दूसरे शतक के दसवें उद्देशक (सू. १३९) में, दसवें शतक (सू. ५,६) के पहले उद्देशक में तथा सोलहवें शतक के आठवें उद्देशक (सू. ११० से ११५) में उपलब्ध है। अच्छी समझ वाले चतुर व्यक्ति ये निर्णय कर लें।

१५. इसी तरह ग्यारहवें शतक के दसवें उद्देशक (सू. १०० से) में ऐसा ही समाधान उपलब्ध है। वहां जीव-अजीव, देश-प्रदेश, और रूपी-अरूपी का विस्तृत विवेचन है।

१६. नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवता के भगवान ने आठ कर्म बतलाए हैं। ये जीव होंगे तभी तो इनके कर्म होंगे। मतिमान लोग इन्हें (चार गति के जीवों को) निश्चय ही जीव जानें।

१७. चौबीस ही दण्डक नियमतः जीव हैं। नियमा का अर्थ है विश्वावीस अर्थात् परिपूर्णतः सत्य। भगवान ने भगवती सूत्र के छठे शतक के दसवें उद्देशक (सूत्र १७४ से १७७) में यह बतलाया है।

१८. जीवरा चवदें भेद सिधंत में रे, ते निश्चेंइ जीव कह्या साख्यात रे।
यांनें मुंढ मिथ्याती कहें अजीव छें रे, आ प्रतक्ष झूठी तिणरी वात रे।।

१९. वले दशवीकालक चोथा अधयन में रे, निश्चेंइ जीव कही छकाय रे।
तिणनें अग्यांनी जीव न लेखवें रे, ते करें बुडण रो मुंढ उपाय रे।।

२०. गिनाता सुतर रा तीजा अधयन में रे, ठाणां अंग में तीजा ठाणा माहि रे।
छ जीवनीकाय माहे संका करें रे, तो अहेत असुख नें समकित जाय रे।।

२१. छभाव लेस्या नें जीव जिण कही रे, तिणरी अंतर में करो पिछांण रे।
माठी लेस्या रा माठा लखण छें रे, रूडी लेस्या रा रूडा जांण रे।।

२२. जीव रें मोह कर्म उदें हुवें रे, जब जीव वरतें जो सावद्य कांम रे।
ते पाप उपजावें मेंला जोग सुं रे, माठी लेस्या रा ए परिणांम रे।।

२३. कदे मोह कर्म रो खयउपसम हुवें रे, जब जीव वरतें जो निरवद ठांम रे।
ते पाप खपाय उपजावें पुन नें रे, रूडी लेस्या रा ए परिणांम रे।।

२४. ए लेश्या छें निश्चें लखण जीवरा रे, तो कांय भारी हुवो कहि कहि काल रे।
जोवों उतराधेन चोतीसमें रे, वले पन्नवणा लेस्या पद संभाल रे।।

२५. वले लेस्या परिणांम कह्या छें जीवरा रे, ठांणा अंग दसमां ठांणा माहि रे।
वले जोग उपीयोग पावे तेहमें रे, तो निश्चेंइ जीव जांणों इण न्याय रे।।

१८. आगम में जीव के चौदह भेदों को निश्चय ही जीव कहा है। इन्हें मूढ और मिथ्यात्वी लोग अजीव कहते हैं। यह बात उनकी प्रत्यक्षतः असत्य है।

१९. इसी तरह दसवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन में भगवान ने षड्जीव निकाय को निश्चय ही जीव कहा है। अज्ञानी लोग इन्हें जीव नहीं मानते हैं। वे मूढ जन डूबने का उपाय कर रहे हैं।

२०. ज्ञाता सूत्र के तीसरे अध्ययन (सूत्र २४) में तथा स्थानांग सूत्र के तीसरे स्थान (सूत्र ५२३) में कहा गया है कि जो व्यक्ति षड्जीवनिकाय के विषय में शंका करता है, यह उसके लिए अहित और असुख का हेतु है तथा सम्यक्त्व नाश का कारण है।

२१. जिनेश्वर देव ने छह भाव लेश्या को जीव कहा है। इस सच्चाई को अपने अन्तःकरण में पहचानें। अशुभ लेश्या के अशुभ लक्षण और शुभ लेश्या के शुभ लक्षण जानें।

२२. जीव मोह कर्म के उदय से सावद्य योग में प्रवृत्त होता है। वह अशुभ योग से पाप कर्म का बंध करता है। ये अशुभ लेश्या के परिणाम हैं।

२३. जब मोह कर्म का क्षयोपशम होता है तब जीव निरवद्य योग में वर्तन करता है। इससे उसके पाप कर्म क्षीण होते हैं तथा पुण्य कर्म बंधते हैं। ये शुभ लेश्या के परिणाम हैं।

२४. ये छहों लेश्याएं निश्चय ही जीव के लक्षण हैं। इन्हें काल कह-कहकर क्यों वे (कर्मों से) भारी हो रहे हो। इस तथ्य की सच्चाई उत्तराध्ययन सूत्र के चौतीसवें अध्ययन तथा प्रज्ञापना सूत्र के लेश्या-पद में देखें।

२५. स्थानांग सूत्र के दसवें स्थान (सूत्र १८) में लेश्या को जीव का परिणाम बतलाया गया है। तथा उसमें योग और उपयोग पाए जाते हैं। इस न्याय से उसे निश्चय ही जीव जानें।

२६. मत सुरतादिक च्यारूं ग्यांन रा रे, कीधा अग्यांनी दोय दोय भेद रे।
सुतर अरथ विनां मुख सुं कहे रे, कर्मावस करें अणहुंती खेद रे।।

२७. मत सुरतादिक नें कहें काल छें रे, ग्यांन कहें छें यांसुं न्यार रे।
दोय दोय भेद कीया छें इण विधे रे, उण उंधी अकल सुं कीयों विचार रे।।

२८. समदिष्टी री मति नें मतिग्यांन कह्यों रे, मिथ्याती री मति ते मति अनांण रे।
ए निरणो नंदी सुतर में काढीयो रे, तो ही करें अग्यांनी कूड़ी तांण रे।।

२९. पांच ज्ञान नें तीन अज्ञान नो रे, वले च्यारोइ दर्शण तणो विचार रे।
त्यांरा भेद कीयां छें ग्यांनी अतिघणा रे, ते दोय उपीयोग तणो विसतार रे।।

३०. जे भेद कीया छें जिण उपीयोग रा रे, ते भेद नें तेहीज उपीयोग जांण रे।
त्यांमें काल रो भेद अग्यांनी घालीयो रे, ते नदीय सुतर सुं करो पिछांण रे।।

३१. वले अज्ञान नें कही छें नियमा आत्मा रे, नियमा ते नेश्चेंइ जीव जांण रे।
ए दसमें उदेशें सतक बारमे रे, भगोती में जोय करो पिछांण रे।।

३२. उवाइ उपंग नें ठांणा अंग में रे, च्यारोइ ध्यांन तणों विस्तार रे।
ध्यांन ध्यावें ते लखण जीवरों रे, यांनें अजीव कहें ते मुंढ गिवार रे।।

३३. चवदें गुणठांणा लखण जीवरा रे, जोवो समवायंग सुतर माहि रे।
ए नेश्चेंइ चेतन गुण पर्या नें रे, काल परूपें डूबो काय रे।।

२६. मति, श्रुत आदि चार ज्ञान के इन अज्ञानियों ने दो-दो भेद किए हैं। सूत्र और अर्थ से निरपेक्ष होकर वे मुख से ऐसी प्ररूपणा कर रहे हैं तथा कर्माधीन होकर व्यर्थ ही कष्ट उठा रहे हैं।

२७. मति, श्रुत आदि को वे काल कहते हैं तथा ज्ञान को इनसे भिन्न बतलाते हैं। इस तरह उन्होंने दो-दो भेद किए हैं। यह चिन्तन उन्होंने विपरीत बुद्धि से किया है।

२८. सम्यक् दृष्टि की मति को मति ज्ञान कहा गया है तथा मिथ्या दृष्टि की मति को मति अज्ञान। यह निर्णय नंदी सूत्र (प्र. ३/३६) में उपलब्ध है फिर भी अज्ञ लोग मिथ्या आग्रह कर रहे हैं।

२९. पांच ज्ञान, तीन अज्ञान और चार दर्शन की अवधारणा के ज्ञानी जनों ने बहुत भेद किए हैं। यह सारा दो उपयोग (साकार उपयोग और अनाकार उपयोग) का ही विस्तार है।

३०. जिनेश्वर देव ने उपयोग के जो भेद किए हैं, उन भेदों को वही उपयोग जानना चाहिए। उनमें इन अज्ञानियों ने काल का भेद डाल रखा है। इन उपयोगों की पहचान नंदी सूत्र से करें।

३१. अज्ञान को भी नियमतः आत्मा कहा गया है। नियमतः कहा गया है अतः उसे निश्चय ही जीव जानें। यह भगवती सूत्र के बारहवें शतक के दसवें उद्देशक (सूत्र २०८) में देखकर पहचान करें।

३२. औपपातिक उपांग और स्थानांग (सूत्र ६० से ७२) में चार ध्यान का बहुत विस्तार है। ध्यान की क्रिया जीव का लक्षण है, इन्हें अजीव कहने वाला मूढ और अज्ञ है।

३३. चौदह गुणस्थान जीव के लक्षण हैं। यह समवायांग में देखें। ये निश्चय ही चेतना के गुण और पर्याय हैं। इन्हें काल प्ररूपित कर क्यों डूब रहे हैं?

३४. च्यारूइ संज्ञा चेतन द्रव्य छें रे, वीर कह्यो ठांणा अंग माहि रे।
जोवो चोथो दसमा अधयन में रे, संका मत आंणो भवीयण काय रे।।

३५. जे जे द्रव्य में जोग उपीयोग छें रे, वले लेस्या गुण ठांणा परजा प्राण रे।
ते तो द्रव्य नेश्चेंइ जीव छें रे, ए सरधा में संका मूल म आंण रे।।

●

३४. चारों संज्ञा चेतन द्रव्य है। ऐसा भगवान श्री महावीर ने स्थानांग के चौथे (सूत्र ५७८) और दसवें अध्ययन (सूत्र १०५) में कहा है। भव्य जीव इसमें किंचित शंका न करें।

३५. जिन-जिन द्रव्यों में योग, उपयोग, लेश्या, गुणस्थान, पर्याप्ति और प्राण पाए जाते हैं, वे द्रव्य निश्चय ही जीव हैं। इस श्रद्धा में किसी प्रकार की शंका न करें।

●

दुहा

१. कालवादी रा मति तणी, केइ कर रह्या कूडी तांण।
त्यांनें खुलवा जाब बतावीया, साख सुतर री आंण।।

२. त्यांरी खोटी सरधा छुड़ायवा, काढ़ण मूल मिथ्यात।
कितराएक तो वले कहूं, ते सुणजो विख्यात।।

ढाल : ३

(लय : नीन्हव तेरासीया केड़ायत ओलखों ए)

कालवादी रो मत कूडो घणों।।

१. छ नियठा नें पांचूंइ चारित भणी, यांनें कहें छें अग्यांनी काल हो।भवकजण।
ए नेश्चेंइ चेतन गुण प्रय्याय छें, ते सुणजो सुरत संभाल हो।।भवकजण।।

२. छ नियठा नें पांचूंइ चारत तणा, छतीस छतीस छें दुवार।
पचीस में सतक उदेसे छठें सातमें, ए भगोती में कह्यों विस्तार हो।।

३. यांरा पजवा अनंता कह्या छें एक एक ना, त्यां पजवांरी अल्पा बहुत जांण।
ते संख असंख अनंत गुण कह्या, ते पजवांरी करजों पिछांण हो।।

४. निग्रंथ सनातक नें जथाख्यात रा, यांरा पजवा बरोबर जांण।
सेष चारित नें नियठा मेंला कह्या, तिणसुं छें पजवांरी हांण हो।।

दोहा

१. कालवादी के मत को लेकर कई लोग मिथ्या आग्रह कर रहे हैं। उन्हें आगम की साक्षी से स्पष्ट जबाब बतलाए हैं।

२. उनकी मिथ्या श्रद्धा को छुडवाने के लिए और समूल मिथ्यात्व का नाश करने के लिए कुछ बोल कह रहा हूँ। उन्हें अच्छी तरह सुनें।

ढाल : तीन

कालवादी का मत बहुत मिथ्या है।

१. छः प्रकार के निर्ग्रन्थ और पांच प्रकार के चारित्र को अज्ञानी लोग काल कहते हैं। ये निश्चय ही चेतना के गुण और पर्याय हैं। उसे सावधानी से सुनें।

२. छह निर्ग्रन्थ और पांच चारित्र के छत्तीस-छत्तीस द्वार हैं। भगवती सूत्र के पच्चीसवें शतक के छठे-सातवें उद्देशक में इनका बहुत विस्तार कहा गया है।

३. इनके एक-एक के अनन्त पर्यव कहे गए हैं। इन पर्यवों का अल्प-बहुत्व जानना चाहिए। वे संख्य, असंख्य और अनन्त गुना कहे गए हैं। इन पर्यवों की पहचान करें।

४. निर्ग्रन्थ, स्नातक और यथाख्यात चारित्र के पर्यव सदृश जानें। शेष चारित्र और निर्ग्रन्थ को मलिन कहा गया है, जिससे उनके पर्यवों की हीनता है।

५. ए कुण दरब मेंलो कुण उजलों, तिण दरब री करजों तहतीक हो।
यांनें दरब खेतर काल भाव सुं ओलखों, यांरा गुणांरी पिण करजो ठीक हो।।

६. किण ही दोय जणां चारित साथे लीयो, समकालें छोड्या प्रांण हो।
काल सारिखों दोयां रा चारित तणों, पिण चारित गुण में फेर जांण हो।।

७. चारित नें जगन मझम उतकष्टों कह्यों, ते तो चेतन गुण परय्याय हो।
ते चारितावर्णी कर्म दुरा हूआं, निजगुण परगट थाय हो।।

८. ए संजया नें नियठा तों नेश्चेंइ जीव छें, तिण माहे संका म आंण हो।
यांनें काल परूपें कर्म बांधों मती, छोड दो कूडी तांण हो।।

९. संजती असंजती नें संजतासंजती, एहवा बोल घणां छें ताहि हो।
ए सगलां नें जीव जिणेसर भाषीया, ते पन्नवणा भगोती माहि हो।।

१०. चारित आत्मा श्री जिणवर कही, ते सुतर भगोती मझार हो।
ए दसमें उदेशे सतकज बारमें, आत्मा आठां रो विस्तार हो।।

११. चारितावर्णी चारित नें विगाडीयों, ओ बिगड्यो ते निजगुण जांण हो।
परगुण आडो कर्म आवें नही, इणरी पिण करजो पिछांण हो।।

१२. ए चारितावर्णी जेंणावर्णी कर्म कह्यों, तो चारित जेंणा जीव परजाय।
ए नवमें सतक उदेशे इगतीस में, सुतर भगोती माहि हो।।

५. इन पदार्थों में कौनसा मलिन है और कौनसा उज्ज्वल? इनकी सम्यक् पहचान करें। इन्हें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से पहचानें। इनके गुणों को समीचीन रूप से हृदयंगम करें।

६. किन्हीं दो व्यक्तियों ने एकसाथ चारित्र लिया तथा साथ में ही प्राणोत्सर्ग (देह त्याग) किया। उन दोनों का चारित्र-काल समान है किन्तु चारित्र के गुणों में अन्तर जानें।

७. चारित्र को जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट कहा गया है। वह चेतना का गुण और पर्याय है। चारित्र मोहनीय कर्म के विलय से निजगुण (जीव स्वरूप) प्रकट होता है।

८. ये संयत (चारित्र) और निर्ग्रन्थ निश्चय ही जीव हैं। इसमें किंचित् भी आशंका न करें। इन्हें काल निरूपित कर कर्मों को मत बांधो। मिथ्या आग्रह को छोड़ दो।

९. संयमी, असंयमी और संयमासंयमीह्नऐसे अनेक बोल हैं। जिनेश्वर देव ने इन सबको भगवती और प्रज्ञापना सूत्र में जीव बतलाया है।

१०. भगवती सूत्र में जिनेश्वर देव ने चारित्र आत्मा बतलाई है। इस सूत्र के बारहवें शतक के दसवें उद्देशक (सूत्र २०० से) में आठ आत्मा का विस्तार है।

११. चारित्र मोहनीय कर्म चारित्र को बिगाड़ता है। बिगड़ने वाले को निज गुण (आत्मा स्वरूप) जानें। कर्म परगुण (अनात्म स्वरूप) के बाधक नहीं बनते हैं। इसकी भी पहचान करें।

१२. चारित्रावरणीय (चारित्र को रोकने वाला) और यतनावरणीय (शुभ संयम की साधना में किए जाने वाले प्रयत्न को रोकने वाला) कर्म कहे गए हैं अतः चारित्र और यतना जीव के पर्याय हैं। यह भगवती सूत्र के नौवें शतक के इकतीसवें उद्देशक (सूत्र १५ से १८) में बतलाया गया है।

१३. समाइ पचखांण संजम नें संवर, ववेग नें विउसग जांण हो।
ए सगलां नें कही छें जिणेसर आत्मा, तो कांय बूडो कर कर तांण हो।।

१४. ए सुतर भगोती रा पेंहिला सतक में, नवमों उदेशो संभाल हो।
समाइ समता परिणाम गुण जीवरा, त्यांनें भोलेंइ म सरधो काल हो।।

१५. ग्यांन दर्शण चारित गुण कह्या जीवरा, ते अनुयोग दुवार मझार हो।
कोइ जीव रो निजगुण चारित नहीं लेखवें, ते पूरो मुढ गिवार हो।।

१६. दसमें अंग छठा अधेन मांहें कह्यों, प्रथम संवर दया जांण हो।
ते दया नें नियमा निजगुण जिण कही, तिण गुण सुं पोहचें निरवांण हो।।

१७. सुख दुख ग्यांन दर्शण चारित तप, वले वीर्य उपीयोग वखांण हो।
ए आठ लखण कह्या चेतन दरब ना, ते अठावीसमा उतराधेन जांण हो।।

१८. चारित परिणांम कह्या छें जीवरा, दसमेधेन ठांणाअंग माहि हो।
ते जीव परिणांम नें अजीव परूपनें, कोइ मति करो बूडण रो उपाय हो।।

१९. ठांणाअंग चोथे कही छें च्यार परवजा,
धन पुंजीयादिक समांण हो।
ते कर्म न्यारा कीयां परवजा हुवे निरमली,
तिण परवजा नें निजगुण जांण हो।।

२०. वले ठांणाअंग चोथें च्यारि चारित कह्या, भिन्नेझजरीए समांण हो।
छिदर सहित नें रहित चारित कह्या, ते जीवना गुण परमांण हो।।

१३. सामायिक, प्रत्याख्यान, संयम, संवर, विवेक और व्युत्सर्ग-इन सबको जिनेश्वर देव ने आत्मा कहा है। तो फिर आग्रह कर क्यों डूब रहे हैं?

१४. इसे भगवती सूत्र के पहले शतक के नौवें उद्देशक (सूत्र ४२६) में देखें। सामायिक, समता आदि परिणाम जीव के गुण हैं। इन्हें भूल से भी काल न मानें।

१५. अनुयोग द्वार सूत्र में ज्ञान, दर्शन और चारित्र को जीव के गुण बतलाए गए हैं। कोई व्यक्ति चारित्र को जीव का निजगुण नहीं मानता, वह पूरा ही मूढ़ और अज्ञानी है।

१६. दशम अंग (प्रश्न व्याकरण सूत्र) के छठें अध्ययन (सूत्र १०७) में कहा गया है कि प्रथम संवर को दया जानें। उस दया को जिनेश्वर देव ने नियमतः निजगुण कहा है। उस गुण से जीव निर्वाण को प्राप्त होता है।

१७. सुख, दुःख, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोगह्नइन आठों को उत्तराध्ययन सूत्र के अट्ठाईसवें अध्ययन में (श्लोक १०,११) चेतन द्रव्य के लक्षण कहे हैं। इसे जानें।

१८. स्थानांग के दसवें अध्ययन (सूत्र १८) में चारित्र को जीव का परिणाम कहा गया है। उस जीव परिणाम को अजीव प्ररूपित कर कोई डूबने का उपाय नहीं करें।

१९. स्थानांग के चौथे अध्ययन (सूत्र ५७७) में धान्य-पुंज आदि के समान चार प्रकार की प्रव्रज्या बतलाई गई है। कर्म पुद्गलों के दूर होने से प्रव्रज्या निर्मल होती है, उस प्रव्रज्या को निजगुण जानें।

२०. स्थानांग के चौथे अध्ययन (सूत्र ५९५) में भिन्न, जर्जरित, छिद्र सहित (परिश्रावी) और छिद्र रहित (अपरिश्रावी) के समान चार प्रकार के चारित्र बतलाए गए हैं। वे जीव के गुण अनुसार बतलाए गए हैं।

२१. ए ग्यांन रो इंदर केवलग्यान छें, समकत रो खायक समकत इंद हो।
जथाख्यात चारित इंदर चारित तणों, ए तीजें ठाणें कह्यो छें जिणंद हो।।

२२. उतकष्टा चेतन गुण नें इंदर कह्या, तिणमें चारित गुण सु पांमें निर्वांण हो।
तिण चारित गुण नें काल परूपनें, कांय बूडो कर कर तांण हो।।

२३. जगन मझम उतकष्टी आराधना, ते ग्यांन दर्शण चारित री जांण हो।
ते कुण दरब नें जीव आराधीयों, तिण दरब री करजो पिछांण हो।।

२४. जिण जीव कीया निजगुण नें निरमला, तिण मोह कर्म नें टाल हो।
जिण चारित आराध्यो ते निजगुण आपरो, तिणनें मूर्ख सरधें काल हो।।

२५. देस चारित नें सर्व चारित कह्यो, ते त्याग प्रमांणें गुण जोय हो।
काल दरब तो देस न चालीयो, तो काल चारित किम होय हो।।

२६. चारितादिक गुण अनेक असासता, त्यांनें सरधें अग्यांनी काल हो।
उ भावें जीव न मांनें असासतौ, ते तो सुतर सिर दें आल हो।।

२७. दरबे सासतौ नें भावै असासतौ, जीव नें कह्यौ जिणराय हो।
ते सुतर भगोती रे सतकज सातमे, दूजा उदेसा माहि हो।।

२८. दरबे सासतों जीव नै यूं कह्यौ, जीव रौ अजीव न थाय हो।
भावें जीव नें कह्यौ छें असासतौ, ते तो परजाय पलटें जाय हो।।

२१. ज्ञान का इंद्र केवलज्ञान, सम्यक्त्व का इन्द्र क्षायिक सम्यक्त्व और चारित्र का इन्द्र यथाख्यात चारित्र है। यह स्थानांग के तीसरे स्थान (सूत्र २) में जिनेश्वर ने कहा है।

२२. उत्कृष्ट चैतन्य गुणों को इन्द्र कहा गया है। उनमें चारित्र गुण से निर्वाण की प्राप्ति होती है। उस चारित्र गुण को काल निरूपित कर दुराग्रह कर क्यों डूब रहे हैं?

२३. ज्ञान, दर्शन और चारित्र की जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट आराधना बतलाई गई है। जीव किस द्रव्य की आराधना करता है, उस द्रव्य की पहचान करें।

२४. मोह कर्म को दूर करने से जीव के निजगुण निर्मल होते हैं। जिसने चारित्र की आराधना की है वह उसका निज गुण है। अज्ञ जन उसे काल मानते हैं।

२५. चारित्र दो प्रकार का कहा गया हैह्नदेश चारित्र और सर्व चारित्र। किन्तु इनमें त्याग के परिमाण से गुण होता है। काल द्रव्य को देश नहीं कहा गया है तब काल चारित्र कैसे हो सकता है?

२६. चारित्र आदि अनेक गुण अशाश्वत हैं, अज्ञ लोग उन्हें काल मानते हैं। वे भाव जीव को अशाश्वत न मानकर आगम-वाणी पर मिथ्या आरोपण कर रहे हैं।

२७. जिनेश्वर देव ने भगवती सूत्र के सातवें शतक के दूसरे उद्देशक (सूत्र ५८,५९) में जीव को द्रव्यतः शाश्वत और भावतः अशाश्वत कहा है।

२८. जीव को द्रव्यतः शाश्वत कहा गया है क्योंकि जीव का अजीव कभी नहीं होता है तथा भावतः जीव को अशाश्वत कहा गया है क्योंकि पर्याय परिवर्तित हो जाती है।

२९. निजगुण फिरें नें परगुण झरपडें, ते परगुण पुद्‌गल जांण हो।
परगुण झरीयां हुवें निजगुण निरमला, आ सरधा घट में आंण हो।।

३०. असुध निजगुण फिरीयां सुध निजगुण हूवें, ते परगुण करदे दूर हो।
सुध निजगुण फिरीयां असुध निजगुण हुवें, तिणसु परगुण लागें पूर हो।।

३१. जे मेंला निजगुण मोह वसें, त्यां निजगुण सु कर्म बंधाय हो।
मोह रहित निजगुण हुवें निरमला, त्यांसु परगुण दूर पलाय हो।।

३२. सात कर्म उदें सु निजगुण मेंला हुवें, त्यांसु पाप न लागें तांम हो।
ते कर्म झर्‌यां हुवें निजगुण निरमला, त्यांरा गुण निपन छें नांम हो।।

३३. आठ कर्म उदें हूआं नीपजें निजगुण उदें भाव अनेक हो।
आठ कर्म ने खय कीधां नीपना, निजगुण खायक भाव वशेख हो।।

३४. च्यार कर्मां नें खयउपसम कीयां नीपजें, निजगुण खयउपसम भाव हो।
मोह कर्म उपसमीयां परगटें, निजगुण उपसम भाव हो।।

३५. ए च्यारूंइ भाव परणांमीक जीव छें, ते चेतन गुण परजाय हो।
ए भाव फिरें पिण दरब फिरें नही, ते पिण सुणजो न्याय हो।।

३६. तत्व सुध सरध्या हुवें जीव समकती, उंधा सरध्यां मिथ्याती थाय हो।
उहीज ग्यांनी रो अगनांनी हुवें, अग्यांनी रो ग्यांनी हुय जाय हो।।

२९. निजगुण के बदलने से परगुण (कर्म-परमाणु) निर्जीर्ण हो जाते हैं। इन परगुणों को पुद्गल जानें। परगुण के निर्जीर्ण होने से निजगुण निर्मल होते हैं। यह श्रद्धा अन्तःकरण में धारें।

३०. अशुद्ध निजगुण के बदल जाने से शुद्ध निजगुण (संवर और निर्जरा तत्त्व) उत्पन्न होते हैं। वे परगुणों को दूर कर देते हैं। शुद्ध निजगुण के बदल जाने से अशुद्ध निजगुण (आश्रव तत्त्व) उत्पन्न होते हैं, जिनसे प्रचुर परगुणों का बन्धन होता है।

३१. मोह कर्म के उदय से जो निजगुण मलिन बने हुए हैं, उनसे कर्मों का बंधन होता है। मोह रहित निजगुण निर्मल होते हैं, उनसे परगुण दूर हो जाते हैं।

३२. सात कर्मों के उदय से (मोहनीय कर्म को छोड़कर) निजगुण मलिन होते हैं, किन्तु उनसे पाप कर्म का बंध नहीं होता है। इन कर्मों के निर्जरण से निजगुण निर्मल होते हैं। इनके गुण निष्पन्न नाम हैं।

३३. आठ कर्मों के उदय होने से अनेक औदयिक भाव निजगुण निष्पन्न होते हैं। इसी तरह आठ कर्मों के क्षय होने से विशिष्ट क्षायिक भाव निजगुण निष्पन्न होते हैं।

३४. चार कर्मों का क्षयोपशम होने से क्षायोपशमिक भाव निजगुण निष्पन्न होते हैं। इसी तरह मोह कर्म का उपशम होने से औपशमिक भाव निजगुण प्रकट होता है।

३५. ये चारों भाव जीव पारिणामिक हैं। ये चेतना के गुण और पर्याय स्वरूप हैं। ये भाव परिवर्तन शील हैं किन्तु द्रव्य नहीं बदलता। इसका भी आप न्याय सुनें।

३६. तत्त्व की शुद्ध श्रद्धा से जीव सम्यक्त्वी होता है और विपरीत श्रद्धा से मिथ्यात्वी। इस तरह जीव मिथ्यात्वी बनने से ज्ञानी का अज्ञानी हो जाता है और सम्यक्त्वी बनने से अज्ञानी का ज्ञानी हो जाता है।

३७. नारकी ने देवता रो मिनख तिर्यंच हुवें, मिनख तिर्यंच देवता थाय हो।
इत्यादिक जीवरा भाव अनेक हो, ते ओर रो ओर हूय जाय हो।।

३८. सासतों जीव दरब छें अनादरो, तिणरी परजाय अनंती जांण हो।
ते परजाय हांण विरध हुवें कर्म सूं, पिण दरब री नही विरध हांण हो।।

३९. जे भाव फिरें पिण दूर पडें नही, त्यां भावां रा नांव अनेक हो।
इणविध भावें जीव असासतो, ते सरधों आंण ववेक हो।।

४०. उ जीव रा भाव न सरधें असासता, तिण काढ्यों छें मत कूर हो।
यांनें काल कहें ते कुब्द लगाय नें, तिणरी संगत करजो दूर हो।।

४१. वले गोत्म सांमी पूछा करी जीव री, सुतर भगोती माहि हो।
ते तीजा उदेसा छठा सतक में, ते सांभल जो चित ल्याय हो।।

४२. ए आदि नें अंत रहीत ए जीव छें, कें आदि नही अंत सहीत हो।।जिणेसर।।
कें आदि सहित नें अंत रहीत छें, कें आदि नें अंत सहित हो।।जिणेसर।।
ए गोतम सांमी पूछ्यों श्री वीर नें।।

४३. श्री वीर जिणेसर कहें सुण गोयमा, ए च्यारो भांगां छें जीव हो।
त्यांरा भेद विसतार कहूं छूं जूजूआ, ए सरध्यां समकत री नीव हो।।

४४. ए आदि रहित नें अंत रहित छें, ए अभव सिद्धीया जीव जांण हो।
आदि नही पिण अंत सहीत छें, ते भवसिद्धी जीव पिछांण हो।।

३७. नरक और देव गति से निकलकर जीव मनुष्य और तिर्यंच बन जाता है तथा मनुष्य और तिर्यंच के जीव देवता बन जाते हैं। इस तरह जीव के अनेक पर्याय हैं, जिनसे जीव नाना प्रकार के रूप धारण करता है।

३८. जीव द्रव्य अनादिकाल से शाश्वत है। उसकी अनन्त पर्याय जानें। कर्मों के संयोग और वियोग से जीव की पर्यायों में हानि और वृद्धि होती है किन्तु द्रव्य जीव की हानि और वृद्धि नहीं होती।

३९. भाव परिवर्तन शील हैं किन्तु वे जीव से कभी विलग नहीं होते।इन भावों (पर्यायों) के अनेक नाम हैं। इस तरह भाव जीव अशाश्वत होता है। इसे विवेक पूर्वक स्वीकार करें।

४०. जो जीव के भावों को अशाश्वत नहीं मानते हैं, उन्होंने मिथ्या मत का प्रवर्तन किया है। जो कुबुद्धि का प्रयोग कर इन्हें काल कहते हैं, उनकी संगति से दूर रहें।

४१. भगवती सूत्र के छठे शतक के तीसरे उद्देशक (सूत्र ३१,३२) में गणधर गौतम स्वामी ने भगवान से जीव के विषय में पृच्छा की है। उसे आप एकाग्र चित्त होकर सुनें।

४२. गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से पूछा-भगवन्! यह जीव अनादि और अनन्त है या अनादि और सान्त है या सादि और अनन्त है या सादि और सान्त है?

४३. भगवान श्री महावीर ने कहाह्नगौतम! सुनो। ये चारों ही भंग (विकल्प) जीव के हैं। इनके विविध भेद बतला रहा हूं, जिनके श्रद्धान से सम्यक्त्व की नींव लग जाती है।

४४. प्रथम भंग अनादि और अनन्त का है। इसमें अभवसिद्धिक जीव (अभव्य जीव) जानें। द्वितीय भंग अनादि और सान्त का है। इसमें भवसिद्धिक जीव (मोक्षगामी भव्य जीव) पहचानें।

४५. जे कर्म खपाय नें सिद्धि गति में गया, त्यांरी आदि छें पिण अंत रहीत हो।
नारकी तिर्यंच मनख नें देवता, ए आदि नें अंत सहीत हो।।

४६. ए च्यारूंइ जीव जिणेसर भाषीया, त्यांनें जीव न सरधइ मूंढ हो।
ते बूडें छे वीरनां वचन उत्थापनै, कर कर कूड़ी रूढ हो।।

•

४५. जो जीव कर्म क्षय कर मोक्ष गति को प्राप्त हो गए। उन जीवों की आदि है किन्तु अन्त नहीं है। ये तीसरे भंग में समाविष्ट होते हैं। नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवह्नये चार गति के जितने जीव हैं, वे आदि और अंत सहित हैं। ये चौथे भंग में समाविष्ट होते हैं।

४६. जिनेश्वर देव ने ये चार प्रकार के जीव बतलाए हैं। इन्हें जीव न मानने वाले मूढ हैं। वे मिथ्या आग्रह कर भगवान के वचनों को उत्थाप कर डूब रहे हैं।

●

दुहा

१. कालवादी चेतन नही ओळख्यों, तिणमें खोट अनन्त।
तिमहीज पुद्‌गल दरब में, कहितां न आवें अंत।।

२. एक वर्ण एक गंध छें, एक रस फरस छें दोय।
उ मांनें छें पुद्‌गल एहनें, ते पिण सुध न कोय।।

३. पांच वर्ण दोय गंध छें, पांच रस फरस छें च्यार।
उ समचें पुद्‌गल कहें एहनें, ते पिण असुध विचार।।

४. भारी हलकौ सुहालों खरदरो, ए पुद्‌गल दरब साख्यात।
यांनें कालवादी कहें काल छें, ते प्रतक्ष झूठ मिथ्यात।।

५. खंध देस परदेस परमांणूओ, यांनें पुद्‌गल मांनें नांहि।
त्यांनें पिण कहें काल छें, आ उंधी अकल घट मांहि।।

६. ए प्रतक्ष पुदगल दरब नें, कहें छें अग्यांनी काल।
उणरी सरधा नें सरधा रा उतर कहूं, ते सुणजो सुरत संभाल।।

ढाल : ४

(लय : मम करो काया माया कारमी)

कालवादी री सरधा सुणों।।

१. पुद्‌गल रूपी दरब तणा, च्यार भेद कीयां जिणराय रे।
खंद देस परदेस परमाणुओ, छतीसमा उतराधेन माहि रे।

दोहा

१. कालवादी ने चेतन तत्त्व को नहीं पहचाना अतः उसमें अनन्त दोष हैं। इसी प्रकार पुद्गल द्रव्य के बारे में भी बहुत मिथ्या धारणाएं हैं, उनका कथन अंतहीन है।

२. जिसमें एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श पाए जाते हैं, उसे वे पुद्गल मानते हैं। यह मान्यता भी समीचीन नहीं है।

३. जिसमें पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और चार स्पर्श पाए जाते हैं, उसे वे समुच्चय पुद्गल मानते हैं। यह विचार भी सम्यक् नहीं है।

४. लघु, गुरु, मृदु और कर्कश-इन चार स्पर्श वाला पुद्गुल द्रव्य साक्षात् है। कालवादी इन्हें काल कहते हैं यह प्रत्यक्ष ही असत्य और मिथ्यात्व है।

५. स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु-इन्हें भी वे पुद्गल नहीं मानते हैं। इन्हें वे काल कहते हैं, यह उनकी विपरीत बुद्धि है।

६. इस प्रत्यक्ष पुद्गल द्रव्य को ये अज्ञ लोग काल कहते हैं। उनकी श्रद्धा का मैं उत्तर दे रहा हूं, उसे एकाग्र चित्त होकर सुनें।

ढाल : चार

कालवादी की श्रद्धा को सुनें।

१. उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीसवें अध्ययन (श्लोक १०) में जिनेश्वर देव ने पुद्गल को रूपी द्रव्य कहा है और उसके स्कंध, देश, प्रदेश और परमाणुह्नये चार भेद किए हैं।

२. पुद्‌गल रा भेद च्यारूं भणी, यांनें कहें छें अग्यांनी मुंढ काल रे।
ए करमां वस सुध सूझें नहीं, अभिंतर फूटी आया जाल रे।।

३. वीसा मीसा वले पोगसा, ए पुद्‌गल री तीन जात रे।
यां पुद्‌गलां नें काल दरब कहें, तिणरें छें गुढ़ मिथ्यात रे।।

४. अठारें पाप ठांणा चोफरसी कह्या, आठ कर्म चोफरसी कह्या वीर रे।
मन वचन जोग दर्बे लीया, चोफरसी कह्या कारमण शरीर रे।।

५. शब्द अंधारा उद्योत नें, परकास छाया तावरो जांण रे।
इत्यादिक एहवा सूक्ष्म खंद नें, चोफरसी पुद्‌गल नें पिछांण रे।।

६. छ दरब लेस्या च्यार शरीर नें, घणोदधी घणवाय तणवाय रे।
काय जोग नें केइ बादर खंद नें, यांनें अठफरसी कह्या जिणराय रे।।

७. द्वीप समुद्र देवलोक नें, मुगत सिला पिण तेह रे।
नरकावासा जाव वेमाणीया, ए सर्व अठफरसी दरब एह रे।।

८. ए चोफरसी आठफरसी पुद्‌गल कह्या, ते वरण गंध रस सहीत रे।
यांनें काल कहें मूढ मूरख थकों, तिणरी सरधा घणी विपरीत रे।।

९. धर्म अधर्म आकास नें, काल पुद्‌गल जीव वखांण रे।
यांमें पांच दरब नें अरूपी कह्या, रूपी एक पुद्‌गल जांण रे।।

१०. ए भगोती रे सतकज बारमें, पांचमें उदेशें संभाल रे।
ज्यांनें पुद्‌गल दरब श्री जिण कह्या, त्यांनें मूर्ख परूपें छें काल रे।।

२. पुद्‌गल के इन चार भेदों को मूढ और अज्ञानी काल कहते हैं। ये कर्माधीन होने से इन्हें सही सूझ नहीं रहा है। इनका आभ्यन्तर नेत्र फूट चुका है?

३. पुद्‌गल के तीन प्रकार हैंह्नविस्रसा, मिश्र परिणत और प्रयोग परिणत। इन पुद्‌गलों को जो काल द्रव्य कहता है, उसके गूढ मिथ्यात्व है।

४. अठारह पाप स्थानकों को चतुःस्पर्शी कर्म पुद्‌गल कहा गया है। इसी तरह भगवान ने आठ कर्मों को चतुःस्पर्शी कहा है। द्रव्य मन, वचन और काय पौद्‌गलिक हैं। कार्मण शरीर चतुःस्पर्शी है।

५. शब्द, अंधकार, उद्योत, प्रकाश, छाया, आतप आदि सूक्ष्म स्कंधों को चतुःस्पर्शी पुद्‌गल पहचानें।

६. छह द्रव्य लेश्या, चार शरीर, घनोदधि, घनवायु, तनु वायु, काय योग और समस्त बादर स्कंध को जिनेश्वर देव ने अष्टस्पर्शी कहा है।

७. द्वीप, समुद्र, देवलोक, सिद्ध शिला, नरकावासों से लेकर वैमानिक तकह्नये सभी द्रव्य अष्टस्पर्शी हैं।

८. ये चतुःस्पर्शी और अष्टस्पर्शी पुद्‌गल बतलाए गए हैं। ये वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से युक्त होते हैं। मूढ और अविवेकी लोग इन्हें काल कहते हैं। उनकी श्रद्धा अत्यन्त विपरीत है।

९. छः द्रव्य बतलाए गए हैंह्नधर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्‌गल और जीव। इनमें से पांच द्रव्यों को अरूपी कहा हैं। एक पुद्‌गल द्रव्य को रूपी जानें।

१०. भगवती के बारहवें शतक के पांचवें उद्देशक में जिनेश्वर देव ने जिन्हें पुद्‌गल द्रव्य कहा है, उन्हें अज्ञ लोग काल प्ररूपित करते हैं।

११. हाट घर मिंदर मालीया, आसण सेंण जांण विमांण रे।
वस्त्र गहणा आभूषण, हिरण सोवनादिक जांण रे।।

१२. गंध कसबोइ वाजंत्रादिक, असणादिक च्यार आहार रे।
ए उवभोग परिभोग आवें जीव रे, एक वार बहू वार रे।।

१३. त्यांमें शब्द रूप दोय कांमा कह्या, गंध रस फरस तीनू भोग रे।
ए कांम नें भोग रूपी जिण कह्या, ते आय मिलियां जीव रे संजोग रे।।

१४. ए कांम नें भोग रूपी ते पुद्‌गल कह्या, त्यांनें काल परूपे बूडो कांय रे।
ए भगोती रे सतकज सातमें, सातमां उदेसा रे माहि रे।।

१५. घ्रत नें खांड मेदें करी, कोइ नीपजावें विविध पकवांन रे।
ए प्रतक्ष वात सरधें नही, ओ पिण पूरों अगिनांन रे।।

१६. घी खांड मेंदों तो कहें काल था, ए तीनूंइ गया विललाय रे।
यां तीनां सूं पकवांन नही नीपना, ए तो काल परगट हुआ आय रे।।

१७. पकवांन नें काल दरब कहें, यांरा नाम दरब कहें एक रे।
इण विपरीत सरधा रा उतर कहूं, ते सांभलो आण ववेक रे।।

१८. घ्रत नें खांड मेंदें करी, कोइ नीपजावें विवध पकवांन रे।
त्यांरा नांम एक एक रा अनेक छें, सूतरे भाख्यो भगवांन रे।।

१९. ए पकवांन तो पुद्‌गल दरब छें, तिणमें पांच वर्ण दोय गंध रे।
पांच रस आठ फरस छें, ते पुद्‌गल मिलिया छें बंध रे।।

११-१३. दुकान, घर, मंदिर, महल, आसन, शयन, विमान, वस्त्र, आभूषण, स्वर्ण, रजत, सुगंधित पदार्थ, वाद्य, अशन आदि चार प्रकार का आहारह्नये जीव के एक बार या अनेक बार उपभोग-परिभोग में आते हैं। इनमें शब्द और रूप-इन दो को काम कहा गया है तथा गंध, रस और स्पर्श-इन तीन को भोग। जिनेश्वर देव ने काम और भोग को रूपी कहा है। इनका जीव के साथ संयोग बना हुआ है।

१४. ये काम और भोग रूपी हैं अतः इन्हें पुद्‌गल कहा गया है। इन्हें काल प्ररूपित कर क्यों डूब रहे हो? यह विवेचन भगवती सूत्र के सातवें शतक के सातवें उद्देशक (सूत्र १२७) में है।

१५. कोई व्यक्ति घी, चीनी और मैदे के संयोग से विविध प्रकार की मिठाइयां बनाता है। इस प्रत्यक्ष बात को नहीं मानते हैं, यह भी उनका पूरा अज्ञान है।

१६. वे कहते हैं कि घी, चीनी और मैदाह्नये तीनों ही काल थे। मिठाई बनने पर ये तीनों विलय को प्राप्त हो गए। इन तीनों के संयोग से पकवान निष्पन्न नहीं हुआ, बल्कि काल ही प्रकट हुआ है।

१७. ये पकवान को काल द्रव्य कहते हैं। इनके नाम और द्रव्य को एक (काल) कहते हैं। इस विपरीत श्रद्धा को मैं उत्तरित कर रहा हूं, उसे आप विवेक पूर्वक सुनें।

१८. कोई व्यक्ति घी, चीनी और मैदा के संयोग से विविध प्रकार की मिठाइयां बनाता है। उन एक-एक मिठाई के अनेक नाम हैं। भगवान ने सूत्र में ऐसा कहा है।

१९. ये पकवान पुद्‌गल द्रव्य हैं जिनमें पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श हैं। इन पुद्‌गलों का मिलन बंध है।

२०. त्यांरा नांम तो ओलखवा भणी, ते नांम छें सुरत गिनांन रे।
ते नांम नें दरब छें जूजूआ, ए वीर वचन सत मांन रे।।

२१. ए नांम दरब जूदो सरधायवा, ओळखो दरब आकास रे।
ते दरब छें लोक अलोक में, इणरो नांम छें जीव रें पास रे।।

२२. इण परें दरब अनेक छें, ते दरब छें दरब रे ठांम रे।
त्यां दरबां रा नांम जांणें जठें, जीव कनें सर्व नांम रे।।

•

२०. उन (मिठाइयों) के नाम तो पहचान मात्र के लिए हैं। ये नाम श्रुत ज्ञान है। ये नाम और पुद्‌गल द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं। भगवान की इस वाणी को सत्य मानें।

२१. ये नाम और पुद्‌गल द्रव्यों को भिन्न-भिन्न स्वीकार करने के लिए आकाश द्रव्य को पहचानें। यह आकाश द्रव्य लोक-अलोक व्यापी है किन्तु इसका नाम जीव के पास है।

२२. इस तरह अनेकविध द्रव्य हैं। वे द्रव्य द्रव्य के स्थान में है। उन द्रव्यों के सारे नाम जानने वाले जीव के पास अवस्थित है।

●

दुहा

१. चंदरमां नें सूर्य नी चाल सूं, नीपजें समयादिक काल।
तिणरी उतपत छें परवाह ज्यूं, निरन्तर दगचाल।।

२. ते अढाइ द्वीप दोय समुद में, सेख दीप समुद सर्वटाल।
पेंतालीस लाख जोजन लगें, तिरछो वरतें काल।।

३. उंचो जोतक चकर लगें, ते नवसों जोजन प्रमांण।
सहंस जोजन नीचो कह्यों, दोय विजें उंडी तांइ जांण।।

४. मेरू विचें उंची दिस तिहां, प्रतिबंब सूं वरतें काल।
अठा बारें काल कठें नहीं, तिणरो सूतर मांहे निकाल।।

५. कालवादी कहें लोक अलोक में, सगले वरतें काल।
ते सुतर अर्थ विनां बकें, वले देवें सुतर सिर आल।।

६. उंधा अर्थ करें अकल विनां, वले बोलें आल पंपाल।
हिवें काल दरब रो निरणो कहूं, ते सुणजो सुरत संभाल।।

ढाल : ५

(लय : म्हारो सेणां रों साथी रे वीछीयो)

काल वर्ते अढ़ाई दीप में।।

१. चाल सासती ले जोतष्यां तणी, जीव पुद्गल रो जघन व्यापार जी।
तिणनें समों कह्यों तीर्थंकरे, तिणरो सांभलजो विसतार जी।

दोहा

१. सूर्य और चन्द्र की गति से समय आदि काल निष्पन्न होता है। उसकी प्रवाह रूप में निरन्तर (अनादि-अनंत) उत्पत्ति बनी रहती है।

२. वह काल तिर्यक् लोक के मध्यवर्ती पैंतालीस लाख योजन क्षेत्र में अन्य द्वीप-समुद्रों को छोड़कर अढाई द्वीप और दो समुद्रों में वर्तन करता है।

३. वह काल ऊंचाई में नौ सौ योजन परिमाण ज्योतिष्क चक्र तक तथा हजार योजन नीचे महाविदेह क्षेत्र की दो विजय तक जानें।

४. मेरू पर्वत के मध्य में ऊंची दिशा में प्रतिबिम्ब से काल का वर्तन होता है। इस सीमा से बाहर कहीं व्यावहारिक काल नहीं है। सूत्र में उसका विवेचन है।

५. कालवादी कहते हैं कि लोक और अलोक में सर्वत्र काल का वर्तन होता है। वे सूत्र और अर्थ से अनभिज्ञ होकर बोल रहे हैं तथा सूत्र-वाणी पर मिथ्या आरोपण कर रहे हैं।

६. बुद्धि-प्रयोग के बिना वे विपरीत अर्थ करते हैं तथा अनर्गल बोलते हैं। अब मैं काल द्रव्य का निर्णय कहता हूँ। उसे कान लगाकर सुनें।

ढाल : पांच

काल का प्रवर्तन अढाई द्वीप (मनुष्य क्षेत्र) में होता है।

१. ज्योतिष्क देवों के विमानों की शाश्वत चाल के आधार पर और जीव-पुद्गल के जघन्य व्यापार के आधार पर तीर्थंकर देव ने समय (काल की सूक्ष्मतम इकाई) कहा है। इसका विस्तार सुनें।

२. असंख्याता समां री आवलका हुवें, जाव पुद्‌गल परावर्तन जांण जी।
अतीत अनागत वर्त्तमांन नें, काल दरब री करजो पिछांण जी।।

३. जिण क्षेत्र में समों वरतें नही, तठे आवलकादिक पिण नाहि जी।
आवलकादिक तो समां सुं हुवें, अधा समों सगलां रे मांहि जी।।

४. उतराधेन में छ दरबां तणा, चाल्या दरब क्षेत्र काल भाव जी।
काल वरतें समय खेत्र मझे, तठें कह्यों उघाड़ो न्याव जी।।

५. समय क्षेत्र कहें सर्व क्षेत्र नें, कालवादी सूतर रो अजांण जी।
समय क्षेत्र चाल्यो सिद्धंत में, तिणरा पाठ री करजों पिछांण जी।।

६. अढ़ाइ दीप दोय समुद नें, समय खेतर कह्यों जिणराय जी।
भगोती रे सतकज दुसरें, जोवो नवमां उदेसा माहि जी।।

७. सीमंत नामा नरका वासो कह्यों, समय क्षेत्र नें उडू विमाण जी।
वले मुगत सिला चोथी कही, ए तो च्यारूं बराबर जांण जी।।

८. च्यारूं पेंतालीस लाख जोजन तणा, ठांणाअंग चोथा ठांणा मांहि जी।
समय क्षेत्र समय सहीत छें, गुण निपन नांम छें ताहि जी।।

९. परमाण आहाउनिव्वत काल छें, वले मरण नें आधाकाल जी।
च्यारूं भेद छें अधाकाल नां, ठांणाअंग चोथो ठांणो संभाल जी।।

१०. अधाकाल छें मनख लोक में, ते तो समयादिक जांणों एह जी।
आतो सूर्यादिक री चाल छें, अढी द्वीप बारें नही तेह जी।।

२. असंख्य समय की एक आवलिका होती है। उससे लेकर पुद्गल परावर्तन तक काल की गणना समझनी चाहिए। अतीत, अनागत और वर्तमान की अपेक्षा से काल-द्रव्य को पहचानें।

३. जिस क्षेत्र में 'समय' का वर्तन नहीं होता है, वहां आवलिका आदि भी नहीं होते हैं। समय के संयोग से ही आवलिका आदि होते हैं। आवलिका आदि सब में अद्धा समय समाविष्ट रहता है।

४. उत्तराध्ययन सूत्र में छह द्रव्यों के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का विवेचन किया गया है। काल द्रव्य का वर्तन 'समय-क्षेत्र' में होता हैह्नऐसा वहां स्पष्ट न्याय बतलाया गया है।

५. सभी क्षेत्रों को समय क्षेत्र कहने वाले कालवादी आगम के अनभिज्ञ हैं। सूत्र में समय-क्षेत्र का विवेचन उपलब्ध है। उस आगम-पाठ को सम्यक् पहचानें।

६. भगवती के दूसरे शतक के नौवें उद्देशक (सूत्र १२२) में जिनेश्वर देव ने अढाई द्वीप और दो समुद्र पर्यन्त समय क्षेत्र कहा है।

७-८. सीमन्तक नामक नरकावास (पहले नरक का एक नरकावास), समय क्षेत्र, उडु विमान (सौधर्म कल्प के प्रथम प्रस्तर का एक विमान) और ईषद् प्राग्भरा पृथ्वी (सिद्ध शिला)ह्नये चारों क्षेत्र अवगाहन की दृष्टि से समान हैं। इन सबकी अवगाहना पैंतालीस लाख योजन परिमाण है। यह विशद विवेचन स्थानांग के चौथे स्थान (सूत्र ४८२) में समुपलब्ध है। समय क्षेत्र समय (काल) सहित है। यह उसका गुण निष्पन्न नाम है।

९. स्थानांग के चौथे स्थान (सूत्र १३४) में अद्धा-काल के चार भेद बतलाए गए हैंह्नप्रमाण काल, यथायुः निवृत्ति काल, मरण काल और अद्धा काल।

१०. अद्धा काल केवल मनुष्य लोक में है, वह समय आदि से जाना जाता है। यह सूर्य आदि की गति है, जो अढाई द्वीप के बाहर नहीं है।

११. इंदा अगी जमा नें नेरइ, वारुणी वायवा दिस जांण जी।
सोमा इसाणीया विमला दिस, दसमीं दिस तमा पिछांण जी।।

१२. नव दिस में अजीव अरूपी तणा, सात भेद तिहां वरतें काल जी।
छ भेद नीची तमा दिस मझे, अधा समो दीयो जिण टाल जी।।

१३. ए भगोती दसमा सतक में, पहलें उदेसें जोय संभाल जी।
तो ही कालवादी झूठो थको, लोक अलोक में कहें काल जी।।

१४. नीचा तिरछा खेतर लोक में, अजीव अरूपी रा भेद सात जी।
छ भेद कह्या ऊंचा लोक में, अधाकाल टाल्यो साख्यात जी।।

१५. ए भगोती रे सतक इग्यार में, लेजो दसमें उदेसें संभाल जी।
उंचा लोक में काल नषेधीयो, तो अलोक में किहां थी काल जी।।

१६. छहूं दिस लोक नें अंत छेहड़ें, नही वरते समयादिक काल जी।
अजीव अरूपी रा छ भेद छें, अधासमो दीयो जिण टाल जी।।

१७. धर्म अधर्म नें आकाश नां, देस प्रदेस कह्या जिणराय जी।
कालवादी कहें तिहां काल छें, तो तूं सातमों भेद वताय जी।।

१८. छ भेद अरूपी रा कह्या, रूपी रा कह्या छें भेद च्यार जी।
काल परूपें लोक रें छेहड़ें, तो तूं काढ बताय इग्यार जी।।

१९. इग्यारें भेद तो काढ सकें नही, लोक अलोक में कहें काल जी।
उंधी परूपें सुध बुध बाहिरा, दे दे सुतर रे सिर आल जी।।

११. ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या, नैर्ऋती, वारूणी, वायव्य, सौम्या, ईशान, विमला और तमाह्वये दस दिशाएं पहचानें।

१२-१३. नौ दिशाओं में अरूपी अजीव के सात भेद पाए जाते हैं, जहां काल का वर्तन होता है। अधो दिशा तमा में अरूपी अजीव के छह भेद पाए जाते है, जिनेश्वर देव ने यहां अद्धा काल को टाल दिया है। यह सारा विवेचन भगवती सूत्र के दसवें शतक के पहले उद्देशक (सूत्र ७) में द्रष्टव्य है। इतना होने पर भी कालवादी झूठ बोलते हुए लोक-अलोक में काल की प्ररूपणा करते हैं।

१४. अधो लोक और तिर्यक् लोक में अरूपी अजीव के सात भेद पाए जाते हैं। ऊर्ध्व लोक में अरूपी अजीव के छह भेद कहे गए हैं, वहां अद्धा काल को स्पष्टतः टाल दिया गया है।

१५. यह विवेचन भगवती के ग्यारहवें शतक के दसवें उद्देशक (सूत्र १०५) में उपलब्ध है। वहां ऊर्ध्व लोक में काल का निषेध किया गया है, तब अलोक में काल कहां से होगा?

१६. लोकान्त तक स्थित छहों दिशाओं में समय आदि काल नहीं वर्तता है। इनमें अरूपी अजीव के छह भेद पाए जाते हैं। जिनेश्वर देव ने वहां अद्धा काल को टाल दिया है।

१७. जिनेश्वर देव ने वहां धर्म, अधर्म और आकाश के देश और प्रदेश बतलाए हैं। कालवादी वहां काल बतलाते हैं तो फिर वे सातवां भेद बतलाएं?

१८. वहां अरूपी अजीव के छः भेद और रूपी अजीव के चार भेद कहे गए हैं। कालवादी लोक के अन्त तक काल की प्ररूपणा करते हैं तो फिर वे ग्यारहवां भेद बतलाएं?

१९. एक ओर वे ग्यारह भेद बताने में समर्थ नहीं हैं और दूसरी ओर वे लोक और अलोक में काल बतलाते हैं। इस तरह वे विवेक शून्य बनकर विपरीत प्ररूपणा करते हैं तथा आगम-वाणी पर मिथ्या आरोपण करते हैं।

२०. रूपी अरूपी विण वसतू नही, जीव अजीव विण नही काय जी।
त्यांरो लेखो तो मूंढ करें नही, यूंही कूड़ी करें बकवाय जी।।

२१. रूपी अरूपी जीव अजीव रो, रूडी रीत काढ्यों नीकाल जी।
भगोती रे सतक सोलमें, आठमें उदेसे संभाल जी।।

२२. कालवादी कहें काल अलोक में, ते बोलें नही वचन विमास जी।
अजीव दरब रो देस अलोक में, अनंत भाग उणो छें आकास जी।।

२३. दसमें उदेसें दूजा सतक में, भगोती में काढ्यो नीकाल जी।
पिण कालवादी झूठ आदस्यो, अलोक में कहि कहि काल जी।।

२४. रात दिन अनंता नीपजें, ते तो लोक असंखेज माहि जी।
अढी द्वीप में दरब अनंत छें, इण लेखे अनंता थाय जी।।

२५. एक एक दरब उपर गिण्यां, एक एक रात दिन जांण जी।
इम अनंता दरब उपर गिण्यां अनंता रात दिन पिछांण जी।।

२६. वले तीनोइ काल तणा गिण्यां, तो पिण अनंत हुवें दिन रात जी।
ए भगोती सतक पांचमें, नवमें उदेसें कह्या साख्यात जी।।

२७. काल फरसें पांचूं दरबां तणा, छ दिस ना परदेस चकवाल जी।
पिण परदेस पांचूं दरब ना, केइ फरसे न फरसे काल जी।।

२८. समय खेत्र परदेस आगलो, तठा बारें न फरसें काल जी।
माहे परदेस पांचूं दरब ना, अधा समो फरसे दगचाल जी।।

२०. रूपी-अरूपी के सिवाय कोई वस्तु नहीं है, जीव-अजीव के सिवाय कुछ भी नहीं है। मूढ लोग उसका अस्तित्वमूलक चिन्तन नहीं करते हैं और यों ही मिथ्या प्रलाप करते हैं।

२१. भगवान ने रूपी-अरूपी और जीव-अजीव का अच्छे ढंग से निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। जिसे भगवती के सोलहवें शतक के आठवें उद्देशक (सूत्र १११) में देखें।

२२. कालवादी कहते हैं कि अलोक में काल है। वे विचारपूर्वक नहीं बोलते। अलोक में अजीव द्रव्य का देश है। वह अनंत भाग न्यून आकाश-द्रव्य है।

२३. भगवती के दूसरे शतक के दसवें उद्देशक (सूत्र १३८ से १४०) में भगवान ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है किन्तु कालवादियों ने अलोक में काल कहकर असत्य को स्वीकार किया है।

२४. असंख्य प्रदेशात्मक लोक में अनन्त रात-दिन निष्पन्न होते हैं। अढाई द्वीप-समय क्षेत्र में अनन्त द्रव्य विद्यमान हैं, इस दृष्टि से अनन्त रात-दिन हो जाते हैं।

२५. एक-एक द्रव्य पर एक-एक दिन-रात की गणना करने पर अनन्त द्रव्य होने से अनन्त दिन-रात हो जाते हैं।

२६. तीनों ही काल के दिन-रात गिने जाएं तो अनन्त दिन-रात हो जाते हैं। यह भगवती के पांचवें शतक के नौवें उद्देशक (सूत्र २५४ से २५७) में भगवान ने स्पष्ट कहा है।

२७. काल पांच द्रव्यों और छः दिशाओं के प्रदेशों का निरन्तर स्पर्श करता है। किन्तु पांच द्रव्यों के जो प्रदेश हैंह्नउनमें कुछ प्रदेशों का काल स्पर्श करता है और कुछ का नहीं।

२८. समय क्षेत्र के बाहर के पांच द्रव्यों के प्रदेशों का काल स्पर्श नहीं करता। समय-क्षेत्र के भीतर के पांच द्रव्यों के प्रदेशों का अद्धा काल अनवरत स्पर्श करता है।

२९. जो काल हुवें लोक अलोक में, तो सगला परदेस फरसे काल जी।
फरसे न फरसे जिण क्यांनें कहें, कोइ समझो सुरत संभाल जी।।

३०. भगोती रें सतक तेरमें, चोथें उदेसे ए विसतार जी।
फरसे नहीं फरसे ते विवरो कह्यो, छ ही दरबां तणो निस्तार जी।।

३१. नीची दिस थी उंची दिस मझे, दरब अनंत गुणा तिण माहि जी।
छ दरबां री अल्पाबोहत में, तिणरो अर्थ सुणो चित ल्याय जी।।

३२. नीची दिस में काल वरते नही, उंची दिस काल वरतें ताहि जी।
ते काल दरब माहे भिल्यां, अनंत गुणां उंची दिस माहि जी।।

३३. फिटकरत्नकरंड मेरु तणो, तिहां उंची दिस वरतें काल जी।
चंद सूर्य नीं प्रभा पड़ें तठें, समा नीपजें दगचाल जी।।

३४. उंचा लोक थी नीचा लोक में, दरब अनंत गुणां छें ताहि जी।
तठे समा अनंता नीपजें, दोय विजें उंडी तिण माहि जी।।

३५. उंचा लोक थी नीचा लोक में, पुदगल जीव इधक विसेख जी।
अनंत गुणां कह्या ते काल सूं, छ दरब री अल्पा बहुत देख जी।।

३६. उंचा लोक में काल वरतें नहीं, नीची दिस में न वरतें काल जी।
काल वरतें कहें सर्व खेत में, ते करें मूंढ झूठी झखाल जी।।

३७. पन्नवणा रा तीजा पद मझे, तठें, कह्यों घणो विसतार जी।
तिणरो निरणो करे घट भिंतरे, कालवादी री संग निवार जी।।

२९. यदि काल लोक और अलोक में सर्वत्र हो तो वह समस्त प्रदेशों का स्पर्श करेगा। तो फिर भगवान सूत्र में काल स्पर्श करता है और स्पर्श नहीं करता है ऐसा क्यों कहते? इस तथ्य को एकाग्रतापूर्वक समझें।

३०. भगवती के तेरहवें शतक के चौथे उद्देशक (सू. ६१ से ७३) में छह द्रव्यों के विषय में स्पर्श करते हैं और नहीं करते हैंह्नइसका विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।

३१. नीची दिशा की अपेक्षा ऊंची दिशा में अनन्त गुणा द्रव्यों की विद्यमानता है। छः द्रव्यों की अल्प-बहुत्व में उसका अर्थ एकाग्रचित्त होकर सुनें।

३२. नीची दिशा में काल का वर्तन नहीं होता है। काल का वर्तन ऊंची दिशा में होता है। ऊंची दिशा में काल द्रव्य होने से उसमें अनन्त गुणा द्रव्यों की अवस्थिति है।

३३. मेरू पर्वत के स्फटिक रत्न करण्ड से ऊंची दिशा में काल का वर्तन होता है। वहां सूर्य और चन्द्र की प्रभा से अनवरत समय आदि काल उत्पन्न होता है।

३४. ऊंचे लोक की अपेक्षा नीचे लोक में अनन्त गुणा द्रव्यों की विद्यमानता है। वहां अनन्त समय निष्पन्न हो रहे हैं क्योंकि महाविदेह की दो विजय नीचे लोक में गयी है।

३५. ऊंचे लोक की अपेक्षा नीचे लोक में पुद्गल और जीव अधिक हैं। वे काल की अपेक्षा से अनन्त गुना कहे गए हैं। यह छः द्रव्यों की अल्प-बहुत्व में देखें।

३६. ऊंचे लोक में काल का वर्तन नहीं होता है और नीची दिशा में भी काल का वर्तन नहीं होता है। जो लोग कहते हैं कि काल सभी क्षेत्रों में वर्तन करता है वे मूढतावश मिथ्या प्रलाप कर रहे हैं।

३७. प्रज्ञापना के तीसरे पद (सूत्र २७० से २७३) में बहुत विस्तार पूर्वक यह षड् द्रव्यात्मक विवेचन प्रस्तुत है। अन्तः करण में इसका निर्णय कर कालवादियों की संगति का परिहार करना चाहिए।

३८. लोक आकासती सर्व लोक में, तिणरा देस नें फरसे काल जी।
तिमहीज फरसें देश लोक नो, ए तो अधा समो दगचाल जी।।

३९. आकासती रा देस प्रदेश सूं, अलोक नें फरस्यो जांण जी।
ओर दरब नही अलोक में, ए श्री जिण वचन प्रमांण जी।।

४०. अढाइ द्वीप दोय समुद नें, अधासमों फरसें दगचाल जी।
सेष द्वीप समुदर तेहनें, अधासमो न फरसें काल जी।।

४१. समय खेतर बारे छें नही, आतो जोतषीयां री चाल जी।
जठे समयादिक नीपजें नही, तठें किहां थी फरसें काल जी।।

४२. पन्नवणा सूतर रे पद पनरमें, कोइ बुधवंत लेजो संभाल जी।
पिण कालवादी करमां वसें, लोक अलोक में कहें काल जी।।

४३. नीपनें सूर्यादिक चालीयां, समयादिक काल अनंत जी।
ते भगोती रे सतक बारमें, छठें उदेसे कह्यो भगवंत जी।।

४४. नरकादिक गति में वरतें नही, समों आवलिकादिक जांण जी।
त्यांरा आउखादिक नें मापवा, मिनख खेतर में मांण परमांण जी।।

४५. आखा लोक में काल वरतें नही, तो अलोक में किहांथी होय जी।
भगोती रे सतक पांच में, लेजो नवमों उदेसो जोय जी।।

४६. खेत्र उजाड़ में धांन नीपनो, कोइ कहें मण सो दोय च्यार जी।
तिणरा मापा तोला छें गांम में, उण उनमांन कह्यों विचार जी।।

३८. लोकाकाश संपूर्ण लोक में है किन्तु काल द्रव्य उसके देश का ही स्पर्श करता है। इस तरह लोकाकाश के देश में अनवरत अद्धा काल प्रवर्तित हो रहा है।

३९. अलोक में केवल आकाशास्तिकाय के देश और प्रदेश हैं, इनसे अलोक अवगाहित है। इनके अलावा अलोक में कोई द्रव्य नहीं है। यह जिन वचन प्रमाण हैं।

४०. अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों में अद्धा समय अनवरत स्पर्श कर रहा है। इनके अलावा सभी द्वीप और समुद्रों का अद्धा समय काल स्पर्श नहीं करता।

४१. समय क्षेत्र के बाहर ज्योतिषी देवों के विमान-सूर्य और चन्द्रमा की गति नहीं है। जहां समय आदि निष्पन्न नहीं होते हैं वहां काल का स्पर्श कैसे हो सकता है?

४२. कालवादी लोग कर्म वशवर्ती होकर लोक और अलोक में काल की प्ररूपणा कर रहे हैं। किन्तु बुद्धिमान लोग प्रज्ञापना सूत्र के पन्द्रहवें पद (उ. १ सूत्र ५३ से ५७) को देखें।

४३. सूर्य आदि की गति से समय आदि अनन्त काल निष्पन्न होता है। ऐसा भगवान ने भगवती के बारहवें शतक के छठे उद्देशक (सूत्र १२७) में कहा है।

४४. नरक आदि गति में समय, आवलिका आदि अद्धा काल का वर्तन नहीं होता है। उनके आयुष्य आदि को मापने के लिए मनुष्य क्षेत्र के कालमान को काम में लिया जाता है।

४५. जब संपूर्ण लोक में काल का वर्तन नहीं होता है तब अलोक में काल कहां से होगा ? इसके लिए भगवती के पांचवे शतक के नौवें उद्देशक (सूत्र २४९) को देखें।

४६. जैसे खेत, जंगल में धान उत्पन्न हुआ है और कोई व्यक्ति कहता है कि यह दो सौ-चार सौ मन है। उसके माप-तौल तो गांव में है। यह उसने अनुमान से कहा है।

४७. ज्यूं नरकादिक जीवां कनें, आउखादिक पुद्गल पाय जी।
ते तो समे समे पुद्गल खिरें, त्यांरो मापो समय खेतर मांहि जी।।

४८. कपड़ो छें बजाज रा हाट में, गज दरजी रे घर ताहि जी।
ज्यूं आउखादिक जीवां कनें, मापो छें समय खेत्र माहि जी।।

४९. गाय भेंस उहाडै हांचलें, कोइ कहें दूध सेर विच्यार जी।
पिण तोला पड्या घर हाट में, इणरे उनमांन कह्यौ विचार जी।।

५०. ज्यूं संसारी जीवां तणा, आउखादिक सगलां तीर जी।
त्यांरा आउखादिक नें मापवा, समों खेत्र में कह्यों काल वीर जी।।

५१. जीव अजीव अवगाहे रह्या, तिणरो मापो छें खेत्र आकास जी।
केइ उपजें विणसें केइ सासता, काल सूं माप लेजो विमास जी।।

५२. संचिठण गति च्यार में, तिणरा अर्थ री कीजो पिछांण जी।
सुन असुन मिश्रपणें रह्यों, तिणनें काल सूं गिणीयो जांण जी।।

५३. जीव नरक सुं गयो गति ओरमें, फेर पाछो आयो नरक माहि जी।
जद नेरइया मेल गयो हुंतो, ते तो एक रह्यों नही ताहि जी।।

४७. वैसे नरक आदि जीवों में आयुष्य आदि कर्म पुद्गल पाए जाते हैं और वे पुद्गल प्रति समय निर्जरण कर रहे हैं। उनका मापन समय-क्षेत्र के अनुसार किया जाता है।

४८. जैसे कपड़ा व्यापारी की दुकान में है और गज आदि माप दर्जी के घर में। वैसे ही आयुष्य आदि कर्म पुद्गल जीवों के पास में होते हैं और उनका मापन समय-क्षेत्र में।

४९. जब गाय-भैंस के स्तनों में दूध आता है, तब कोई कहता है इनका दूध दो-चार सेर है। किन्तु उसका माप-तोल तो घर-हाट में अवस्थित है। यह तो अनुमान से कहा गया है।

५०. वैसे ही संसारी जीवों के आयुष्य आदि कर्म पुद्गल उनके पास हैं। उनके आयुष्य आदि को मापने के लिए भगवान ने समय क्षेत्र के काल को आधार बताया है।

५१. जीव और अजीव जिसका अवगाहन करते हैं। उसका मापक क्षेत्र आकाश है। उसमें कुछ द्रव्य उत्पन्न होते हैं, कुछ विनष्ट होते हैं और कुछ शाश्वत रहते हैं। इस पर काल के माप से विमर्श करें।

५२. चार गति में संस्थान काल (अवस्थान काल) होता है, उसके तात्पर्य की पहचान करें। शून्य, अशून्य और मिश्र-तीन प्रकार का संस्थान काल कहा गया है, उसे काल से गिना गया है, ऐसा जानें।

५३-५४. जीव नरक गति से निकलकर अन्य गति में गया और वह पुनः नरक में आया, जब (नरक गति से अन्य गति में जाने के समय) जितने जीव नरक में थे, उनमें से एक भी शेष नहीं रहा। यह शून्य संस्थान काल कहलाता है। भगवान उसकी

५४. ते तो सुन संचिठण में रह्यों, ते तो काल सूं गिणीयो वीर जी।
हिवें असुन संचिठण नें कहूं, तिणरो सुणजो अर्थ सधीर जी।।

५५. जीव नरक सूं गयो गति ओर में, फेर पाछो आयो नरक ताहि जी।
जद नेरइया मेल गयों हूं तो, ते तो सगलाइ हुवें नरक माहि जी।।

५६. ते तो असुन संचिठण में रह्यों, ते तो काल सूं गिणीयो एम जी।
हिवें मिश्र संचिठण नें कहूं, तिणरो अरथ सुणो धर पेम जी।।

५७. जीव नरक सूं गयो गति ओर में, फेर पाछो आयो नरक माहि जी।
जद नेरइया मेल गया हूंतों, केइ उवेहीज केइ ओर आय जी।।

५८. ते तो मिश्र संचिठण में रह्यों, तिणनें काल सूं गिण्यो भगवंत जी।
पिण काल न वरतें नरक में, तिणरो न्याय सुणो बुधवंत जी।।

५९. सुन असुन मिश्र काल नरक में, ते काल कह्या ओर न्याय जी।
तिणरो दिष्टन्त दे निरणो कहूं ते सांभल जो चित ल्यायजी।।

६०. एक चाडो भरयों तेल तहनें, कोइ कहें तेल सेर छ सात जी।
पिण सेर नही चाडा मझे, ज्यूं नरक में नही काल विख्यात जी।।

६१. कालवादी कूड़ो मत थापवा, नरक माहे परूपें काल जी।
सुन असुन मिश्र कालरो, भेद जांण्यां विण करें झखाल जी।।

६२. कालवादी रा मत तणी, एक इचर्य वाली वात जी।
समझायो समझे नही, तिणरा घट माहे गूढ़ मिथ्यात जी।।

गणना काल से की है। अब अशून्य संस्थान काल कह रहा हूं, उसका तात्पर्य धैर्य पूर्वक सुनें।

५५-५६. जीव नरक गति से निकलकर अन्य गति में गया और वह पुनः नरक में आया, जब (नरक गति से अन्य गति में जाने के समय) जितने जीव नरक में थे, वे सारे ही नरक में विद्यमान हैं। यह अशून्य संस्थान काल कहलाता है। भगवान ने उसकी गणना काल से की है। अब मिश्र संस्थान काल कह रहा हूं, उसका तात्पर्य प्रीति पूर्वक सुनें।

५७-५८. जीव नरक गति से निकलकर अन्य गति में गया और वह पुनः नरक में आया, जब (नरक गति से अन्य गति में जाने के समय) जितने जीव नरक में थे, उनमें से कुछ वे ही और कुछ अन्य आयातित होते हैं। यह मिश्र संस्थान काल कहलाता है। भगवान ने उसे काल से गिना है। किन्तु नरक में काल का वर्तन नहीं होता है। बुद्धिमान लोग इसका न्याय सुनें।

५९. नरक में (नैरयिकों का संसार संस्थान काल) शून्य, अशून्य और मिश्र काल अन्य न्याय से बताए गए हैं। मैं उसका दृष्टान्त पूर्वक निर्णय कह रहा हूं। उसे एकाग्र चित्त होकर सुनें।

६०. एक घड़ा तेल से भरा हुआ है और कोई व्यक्ति कहता है कि यह तेल छह-सात सेर परिमाण है। किन्तु घड़े में सेर नहीं है, वैसे ही नरक में समय आदि काल नहीं है।

६१. कालवादी मिथ्या मत की स्थापना करने के लिए नरक में काल की प्ररूपणा करते हैं। शून्य, अशून्य और मिश्र काल के भेद को जाने बिना वे मिथ्या प्रलाप करते हैं।

६२. कालवादियों के मत का यह आश्चर्य है कि वे समझाने पर भी नहीं समझते हैं। उनके अन्तःकरण में घोर मिथ्यात्व है।

६३. हूं कहि कहि नें कितरो कहू, कालवादी रा मत रो कुड़ जी।
इम सांभल नें नरनारीयां, कालवादी सूं रहजो दूर जी।।

६४. काल दरब ओलखायवा, जोड़ कीधीं खेंरवा मझार जी।
संवत अठारें बतीसें समें, आसाढ सुदि एकम सोमवार जी।।

●

६३. कालवादियों के मत के मिथ्या अभिनिवेश को मैं कह-कह कर कितना कहूं। नर-नारियों! ऐसा सुनकर कालवादियों से दूर रहें।

६४. काल द्रव्य को समझाने के लिए मैंने विक्रम संवत् १८३२ आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा, सोमवार को खैरवा शहर में यह रचना की है।

●

दुहा

१. कालवादी रे कर्म उदें हुआ, तिणसूं हूवों घणों विपरीत।
तिणनें छेडवीयां उलटों पडें, नही न्याय मेलण री नीत।।

२. अरिहंत देव ने आयरीया, वले उवझाय सगला साध।
त्यांनें अजीव कहें मूर्ख थकों, वले झूठों करें विषवाद।।

३. इण कालवादी पाखंडी तणों, करडों घणों छें मिथ्यात।
केई भारीकरमा जीवड़ा, ते मांनें इणरी वात।।

४. केई धेषी छें सुध साधां तणा, त्यारें घोर रूद्र मिथ्यात।
त्यांनें समझ पड़ें नही सर्वथा, तोही करें इणरी पखपात।।

५. तिरण तारण उत्म पुरषां भणी, अजीव कहतों नांणें मूंढ लाज।
हिवे साध करें परूपणा, यांनें जीव सरधावण काज।।

ढाल : ६

(लय : धन्या श्री आज नगर में बाई में जोगी ए दीठों ए)

देखो रे आंधा चेते नांहीं।।

१. अरिहंत देव जिण सासण रा नायक, ते निश्चेंई उत्म जीवो रे लो।
त्यांनें अजीव कहें कोई मूंढ मिथ्याती, तिण दीधी नरक री नींवो रे लो।।

२. अरिहंत देव अरी कर्मा नें हणीयां, त्यां कीधी धर्म री आदो रे लो।
त्यांनें अजीव सरधें कांय बूडों, कर कर कूडी विषवादो रे लो।।

दोहा

१. कर्मोदय से कालवादी (सत्य से) अत्यन्त विपरीत होता है। उसे बतलाने पर वह अनर्गल बोलता है। उसकी न्यायपूर्वक चर्चा करने की नीयत नहीं है।

२. अर्हत् देव, आचार्य, उपाध्याय और समस्त साधुओं को अज्ञानवश अजीव कहता है और वह मिथ्या प्रलाप करता है।

३. इस धूर्त कालवादी का मिथ्यात्व बहुत गहरा है। कुछ भारीकर्मा जीव इसकी बातों को स्वीकार कर लेते हैं।

४. घोर और रौद्र मिथ्यात्व वाले कुछ लोग शुद्ध साधुओं के द्वेषी होते हैं। उन्हें कुछ भी समझ नहीं पड़ता, फिर भी वे इसकी पक्षपात करते हैं।

५. तीर्ण-तारक उत्तम पुरूषों को भी अजीव कहता हुआ मूढ़ लज्जा का अनुभव नहीं करता। अब मैं उन्हें समझाने के लिए प्ररूपणा करता हूं।

ढाल : छह

देखो! ये अविवेकी लोग चेत नहीं रहे हैं।

१. अर्हत् देव जिन शासन के नायक हैं। वे निश्चय ही उत्तम जीव हैं। कोई मूढ़-मिथ्यात्वी उन्हें अजीव कहता है, उसने नरक की नींव लगा दी है।

२. अर्हत् देव ने कर्म रूपी शत्रुओं का हनन किया है और उन्होंने धर्म का प्रवर्तन किया है। उन्हें अजीव मानकर, विसंवाद कर क्यों डूब रहे हो ?

३. अरिहंत आप तिरे ओरां तारें, तिरण तारण उघाडों छें पाठो रे लो।
यांनें अजीव सरधें उसभ उदें सूं, त्यांरो भाग उगडीयों माठो रे लो।।

४. अरिहंत देव मुगत जावारा कांमी, त्यां दीधी संसार नें पूठो रे लो।
त्यां अरिहंतां नें जीव न सरधें, ते मत निश्चेंइ झूठो रे लो।।

५. सगला मुनीसरां रा टोला मांहें, तीर्थंकर देव मोटा रे लो।
ते मुनीसरां ने तीर्थंकर देवां नें, अजीव सरधें तिण खाधा खोटा रे लो।।

६. साधां रा गण अधिपती गणधर, ते अनेक गुणां कर सहीतो रे लो।
त्यांनें अजीव कहें केई भारीकरमां, ते होसी चिहूंगति में फजीतो रे लो।।

७. आचार्य पिण मोटां मुनीसर, ते छतीस गुणां सहीतो रे लो।
त्यांने अजीव कहे केई मत हीण मांनव, त्यांरी विकल करें परतीतो रे लो।।

८. उवझाय पिण मोटां मुनीवर, ते पचीस गुणां सहीतो रे लो।
त्यांनें अजीव कहें केई अकल विहूंणा, ते नरभव खोय जासी रीतो रे लो।

९. साध रषीसर मोटा मुनीसर, ते सतावीस गुणां करे पूरा रे लो।
त्यांनें अजीव कहें बाल अग्यांनी, तिणरी वात मांनें ते कूडा रे लो।।

१०. अरिहंत आचार्य उवझाय नें साधू, अें सगलाई मोटा अणगारो रे लो।
त्यांनें अजीव सरधें उसभ उदें सूं, ते बूड गया काली धारो रे लो।।

११. यां मोटां पुरषां नें अजीव सरधसी, तिणरें बंधसी पाप रा पूरो रे लो।
ते उदें आसी जद दुखीयो होसी, तिणमें म जांणो कूड़ो रे लो।।

३. अर्हत् देव संसार-समुद्र से स्वयं तरते हैं और दूसरों को तारते हैं। वे तीर्ण-तारक हैंह्नऐसा आगम में स्पष्ट उल्लेख है। वे इन्हें अशुभ कर्मोदय से अजीव मानते हैं। यह उनका दुर्भाग्य है।

४. अर्हत् देव मोक्ष जाने के इच्छुक हैं। उन्होंने संसार को पीठ दिखलाई है। ऐसे अर्हतों को जीव नहीं मानते हैं। वह मत निश्चय ही मिथ्या है।

५. साधु-समुदाय में तीर्थंकर देव प्रधान हैं-बड़े हैं-अग्रणी हैं। ऐसे मुनीश्वर तीर्थंकर देव को अजीव मानने वालों ने असत्य-संभाषण किया है।

६. साधुओं के गण अधिपति-गणधर देव, जो अनेक विशिष्ट गुणों से सुशोभित हैं, कई भारीकर्मा जीव उन्हें अजीव कहते हैं। उनकी चार गतियों में दुर्दशा होगी।

७. आचार्य भी महामुनि होते हैं और वे छत्तीस गुणों से युक्त होते हैं। कई मतिहीन मानव उन्हें अजीव कहते हैं। बुद्धि-विकल लोग ही इनकी प्रतीति करते हैं।

८. उपाध्याय भी महामुनि होते हैं और वे पच्चीस गुणों से युक्त होते हैं। कई बुद्धिहीन मनुष्य उन्हें अजीव कहते हैं। वे इस मनुष्य जीवन को खोकर खाली हाथ चले जाएंगे।

९. साधु ऋषि-श्रेष्ठ और मुनि-श्रेष्ठ होते हैं तथा वे सत्ताईस गुणों से युक्त होते हैं। बाल और अज्ञ लोग उन्हें अजीव कहते हैं। इनकी बात मानने वाले झूठे हैं।

१०. अर्हत्, आचार्य, उपाध्याय और साधुह्नये सब महामुनि हैं। अशुभ कर्म के उदय से जो उन्हें अजीव मानते हैं, वे सचमुच काली धार डूब गए हैं।

११. जो व्यक्ति ऐसे उत्तम पुरूषों को अजीव मानेगा, उसके प्रचुर पाप कर्मों का बंध होगा। जब वे कर्म उदय में आएंगे, तब वे अत्यन्त दुःखी होंगे। इसमें किंचित् भी असत्य न जानें।

१२. जो इणहीज भव में पाप उदें हुवें, तो पडें बालां रो विजोगो रे लो।
वले रिध संपत सगली विललावें, वले मिलें दुसमण रो जोगो रे लो।

१३. कदा इण भव माहे उदें पाप न होवें, तों परभव में संका मत आंणो रे लो।
उत्म पुरषां नें अजीव सरधें त्यांनें, भव भव में दुखीयों जांणो रे लो।।

१४. उत्म पुरषां नें अजीव सरधीयां, आसातणा लागे भारी रे लो।
उसभ कर्म लागें इण सरधा थी, तिण सूं भव भव में होसी खुवारी रे लो।।

१५. अरिहंत आचार्य उवझाय नें साध, त्यांरो भजन करो दिन रातो रे लो।
त्यांनें अजीव कहें छें कुपातर, तिणरी मूर्ख मांनसी वातो रे लो।।

१६. अरिहंत आचार्य उवझाय नें साध, यां सगलां नें ई जीव जांणों रे लो।
आगम संभालो नें जिणमत जोवों, इणमें संका मत आंणों रे लो।।

१७. कालवादी री सरधा पुर में परगट कीधी, भव जीवां रो करण उधारो रे लो।
संवत अठारें बरस अड़तीसें, वैसाख सुदि पांचम बुधवारो रे लो।।

●

१२. यदि वे पाप कर्म इसी भव में उदय में आ जाए तो प्रिय जनों का वियोग हो जाता है और धन-संपदा नष्ट हो जाती है। इतना ही नहीं, उन्हें दुश्मन का संयोग भी मिल जाता है।

१३. कदाचित् इस भव में संचित पाप कर्म उदय में न आए तो परभव में उदय में आने की शंका न लाएं, निश्चित ही उदय में आएंगे। जो लोग उत्तम पुरुषों को अजीव मानते हैं, उन्हें भव-भव में दुःखित जानें।

१४. उत्तम पुरुषों को अजीव मानने से भारी आशातना लगती है। इस मिथ्या श्रद्धा से अशुभ कर्म लगते हैं और उससे भव-भव में अनिष्ट होगा।

१५. अर्हत्, आचार्य, उपाध्याय और साधुह्नइन उत्तम पुरुषों की स्तुति अहर्निश करो। इन्हें अजीव कहने वाला कुपात्र है। मूर्ख व्यक्ति ही उसकी बात को मानेगा।

१६. अर्हत्, आचार्य, उपाध्याय और साधुह्नइन सभी उत्तम पुरूषों को जीव जानें। आगम में जिनमत को खोजकर देखें। इसमें शंका न लाएं।

१७. भव्य जीवों के उद्धार के लिए मैंने कालवादी की श्रद्धा को पुर शहर में प्रकट किया है। इस गीत की रचना मैंने विक्रम संवत् १८३८ वैशाख शुक्ला पंचमी, बुधवार को की है।

●

दुहा

१. अरिहंत आचार्य उवझाय नें, वले साध मोटा मुनीराय।
त्यांनें कालवादी कहें काल छें, कूडा कुहेत लगाय।।

२. अरिहंत नें अरिहंतपणों, इम दोय दोय बोल लगाय।
भोलां नें पाड्या भर्म में, त्यांनें अजीव दीया सरधाय।।

३. अरिहंतपणों छूटे गयो, साधपणों पिण छूट जाय।
जीव हुवों सिध तिण समें, जबें अें क्यूं गया विललाय।।

४. जीव नें जीव रा गुण सासता, ते कदे नहीं विललाय।
जे विललाय पूरों हुवें, ते काल दरब छें ताहि।।

५. इम कहि कहि भोला लोक नें, नांख्या भरम जाल माहि।
पिण अरिहंत साधु रो सिध हूवो ते जाबक खबर न कांय।।

६. अरिहंत साध रो सिध हुवें, ते सूतर में जाब अनेक।
हिवें थोडा सा परगट करूं, ते सुणजो आंण ववेक।।

ढाल : ७

(लय : चुतर विचार करें नें देखो)

चुतर विचार करे नें देखो।।

१. नमोथुणं अरिहंत सिद्धां नें कीधों, ते अरिहंत थी हुआ सिधो रे।
ठांम ठांम नमोथूणं संभालो, ओ चोडें पाठ प्रसिधो रे।

दोहा

१. कालवादी लोग अर्हत्, आचार्य, उपाध्याय और महामुनि साधुओं को झूठे-झूठे कुहेतु लगाकर काल कहते हैं।

२. अर्हत् और अर्हत्पनह्वइस तरह भेद स्थापित कर उन्होंने भोले लोगों को भ्रमित किया है तथा उनके मनों में अजीव की श्रद्धा बिठा दी है।

३. जीव जब सिद्ध होता है तब अर्हत्पन छूट जाता है, साधुपन छूट जाता है। सिद्ध होने पर ये क्यों छूट जाते हैं?

४. जीव और जीव के गुण शाश्वत होते हैं। वे कभी नष्ट नहीं होते हैं। जो नष्ट हो जाते हैं वे काल द्रव्य में समाविष्ट हो जाते हैं।

५. यों कह-कह कर उन्होंने भोले लोगों को भ्रम जाल में डाल दिया है। पर अर्हत् और साधु ही सिद्ध बनते हैं, इसकी उन्हें किंचित् भी खबर नहीं है।

६. अर्हत् और साधु सिद्ध होते हैं। सूत्र में ऐसे अनेक प्रसंग उपलब्ध हैं। उनमें से कुछ प्रसंग मैं प्रकट कर रहा हूं। उन्हें आप विवेक पूर्वक सुनें।

ढाल : ३

चतुर व्यक्ति विचार करके देखें।

१. णमोत्थुणं अरिहन्त और सिद्धों को किया गया है। वे अरिहन्त से सिद्ध बनते हैं। इसके लिए स्थान-स्थान पर णमोत्थुणं (शक्र स्तुति) को देखें। यह पाठ बहुत प्रसिद्ध है।

२. जे अरिहंत जेंवंता विचरें, ते मुगत जावा रा कांमी रे।
आगे अरिहंत हुवा अनंता, त्यां सगलाई सिध गति पांमी रे।।

३. पहिलो नमोंथूणं कीयो अरिहंत सिधां नें, बीजों नमोथूणं अरिहंता ने रे।।
त्यां अरिहंतां नें अजीव परूपें, तिणरी वात अग्यांनी मांनें रे।।

४. चोवीसां री असतूत लोगस गुणतां, ते अरिहंत सिध हुआ चोइसोई रे।
त्यां अरिहंता नें अजीव सरधें, ते गया जमारो खोई रे।।

५. अरिहंतां रा गुणां करें अरिहंत वाजें, साधां रा गुणां सुं साध वाजे रे।
त्यां मोटां पुरषां नें अजीव कहतां, मूरख मूल न लाजें रे।।

६. ज्यां पुरषां रा नांम लीयां थी, कटें पाप अदभूतो रे।
त्यां पुरषां नें अजीव परूपें, तिण दीधा नरक रा सूतो रे।।

७. कालवादी कहें साध जीव हुवें तो, सिधां में साध वतावो रे।
साध तो काल दरब पूरो हुवो, जब उणनें साध वतावे छें न्यावो रे।।

८. रूइ रों सूत करे कपडों कीयो, पिण उतपत रूई री जांणो रे।
ज्यूं साध अरिहंत थई नें सिध हूआ, पिण यांरी उतपत साध पिछांणो रे।।

९. तिण कपड़ा नें रूई कहें त्यांनें, मतहीण मांनव जांणो रे।
ज्यूं सिधां नें साध परूपें, ते मूढ मिथ्याती अयांणो रे।।

१०. रूइ रा गुण तो कपड़ा में समाया, ज्यूं साध रा गुण सिधां में समावें रे।
पिण वरतमांन काले हुवें जिम कहणों, ते समझ विरलां नें आवें रे।।

२. जो जयवंत अर्हत् विचरण कर रहे हैं, वे सब मोक्षार्थी हैं। अतीत काल में अनन्त अर्हत् हुए हैं, उन सबने मोक्ष गति को प्राप्त किया है।

३. पहला णमोत्थुणं समस्त कर्मों का क्षय करने वाले सिद्धों को किया गया है तथा दूसरा णमोत्थुणं अर्हतों को। उन अर्हतों को अजीव प्ररूपित करने वालों की बात अज्ञानी लोग ही मानते हैं।

४. लोगस्स का पाठ करते समय चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति होती है। वे चौबीस ही अर्हत् सिद्ध हो गए। मूर्ख अर्हतों को अजीव मानने वालों ने अपना मनुष्य जीवन खो दिया है।

५. अर्हतों के गुणों से अर्हत् कहलाते हैं और साधुओं के गुणों से साधु। उन महापुरुषों को अजीव कहते हुए मूर्ख किंचित् भी लज्जा का अनुभव नहीं करते।

६. जिन पुरुषों का नाम लेने से अद्भुत पाप कर्म क्षय होते हैं। उन महापुरुषों को अजीव निरूपित करने वालों ने नरक-गमन की नींव लगा दी है।

७. कालवादी कहते हैं कि साधु जीव हो तो सिद्धों में साधु बतलाएं। साधु का काल द्रव्य तो पूरा हो गया है। उसका मैं न्याय पूर्वक उत्तर बताता हूं।

८. रूई का धागा बनाकर कपड़ा किया गया, किन्तु उसे रूई का ही उत्पाद (Product) मानें। वैसे ही साधु अर्हत् बनकर सिद्ध हुए, किन्तु इनकी उत्पत्ति साधु से ही जानें।

९. जो व्यक्ति उस कपड़े को रूई कहता है, उसे बुद्धिहीन मनुष्य जानें। वैसे ही कोई सिद्धों को साधु प्ररूपित करता है, वह मूढ, मिथ्यात्वी और अज्ञ है।

१०. रूई के गुण कपड़े में समाविष्ट हो जाते हैं, वैसे ही साधु के गुण सिद्धों में समाविष्ट हो जाते हैं। किन्तु वर्तमान काल में जैसा हो वैसा कहना चाहिए। यह तथ्य विरल व्यक्ति ही समझ सकते हैं।

११. रूई रो गराग आयां कपड़ो जोवें, पिण रूई कठा सूं पावें रे।
ज्यूं कोई साध सिधां मांहें पूछें, सिधां में साध किहां थी वतावे रे।।

१२. खांड रो बूरो करें कीधी मिश्री, पिण स्वाद न पडीयों जूओ रे।
ज्यूं वधता वधता जीव रा गुण वधीया, जब ओं साध तणो सिध हुवो रे।।

१३. मांखण ताएनें घ्रत कीधो, ते घ्रत हूओ छें चोखो रे।
ज्यूं साधां रो सिध हूआ करणी करे, त्यां सकल कर्म कीया सोखो रे।।

१४. आखा लोक में धर्मास्तीकाय रा, खंध परदेस दोय भेद पावे रे।
आखा लोक में पूछें धर्मास्ती रो देस, तिणनें देस किहां थी वतावे रे।।

१५. खंध हुवें तिहां देस न हूवें, देस हुवें तिहां खंध न पावे रे।
आखो ते खंध नें उणो ते देस, दोनूं भेला किहां थी वतावे रे।।

१६. ज्यूं आत्मीक सुख पूरा सिधां में, देस सुख साधां माहे पिछांणो रे।
संपूर्ण सुख नें सिध कहीजें, देस सुख ते साध नें जांणो रे।।

१७. संपूर्ण सुख तिहां नही अधूरा, अधूरा तिहां संपूर्ण नांही रे।
पूरा सुख सिधां में उणा सुख साधां में, दोनूं सुख नही एकण माही रे।।

१८. जिण समें साध तिण समें देस सुख, सिध तिण समें देस सुख नांही रे।
जब साध मरे नें सिध हूवो जद, देस सुख आयो सर्व सुख माही रे।।

११. रूई को चाहने वाला ग्राहक कपड़े को देखता है, किन्तु वह रूई कहां से पाएगा? वैसे ही कोई सिद्धों में साधु पूछता है किन्तु सिद्धों में साधु कहां से बतलाए?

१२. खांड को पीसकर मिश्री बनाई गई है किन्तु उसका स्वाद नहीं बदला। वैसे ही जब बढ़ते-बढ़ते जीव के गुणों की पूर्णतया वृद्धि होती हैं, तब साधु सिद्ध बन जाते हैं।

१३. मक्खन को तपाकर घृत बनाया गया है। वह घृत उत्तम हो गया। वैसे ही साधु क्रिया के द्वारा सारे कर्म क्षीण कर सिद्ध बनते हैं।

१४. संपूर्ण लोक में धर्मास्तिकाय के स्कंध और प्रदेशह्नये दो भेद पाए जाते हैं। कोई व्यक्ति संपूर्ण लोक में धर्मास्तिकाय का देश पूछता है तो उसे देश कहां से बतलाए?

१५. जहां धर्मास्तिकाय का स्कंध होता है वहां देश नहीं होता है और जहां देश होता है वहां स्कंध नहीं होता है। संपूर्ण धर्मास्तिकाय को स्कंध कहा जाता है और उससे न्यून को देश। किन्तु ये दोनों साथ कैसे हो सकते हैं?

१६. जैसे संपूर्ण आत्मिक सुख सिद्धों में पाए जाते हैं वैसे ही आंशिक आत्मिक सुख साधुओं में पहचानें। संपूर्ण सुखों के अधिकारी को सिद्ध कहते हैं तथा आंशिक सुखों के अधिकारी को साधु जानें।

१७. जहां संपूर्ण सुख है वहां आंशिक सुख नहीं है और जहां आंशिक सुख है वहां संपूर्ण सुख नहीं है। संपूर्ण सुख सिद्धों में होते हैं तथा आंशिक सुख साधुओं में। किन्तु ये दोनों प्रकार के सुख एक ही व्यक्ति में नहीं हो सकते।

१८. जब वे साधु होते हैं तब उनमें देश सुख पाया जाता है। जब वे सिद्ध बन जाते हैं तब उनमें देश सुख नहीं पाया जाता है। जब साधु मरकर सिद्ध हो जाता है तब देश सुख सर्व सुख में विलीन हो जाता है।

१९. धर्मास्तीकाय रो खंध हुवे तिहां, देस रो खय नही हूवो रे।
ज्यूं साध रो सिध हूओ जब, साध न पडीयों जूओ रे।।

२०. मोख री साधन करतों साध कहिवांणो, साधन कर चूका नें सिध जांणों रे।
उणहीज साध रो सिध हुवो छें, तिण मांहे संका मत आंणो रे।।

२१. तिण साधु नें अजीव कहें छें अग्यांनी, ते बूड गयो काली धारो रे।
इण सरधां नें कोई साची जांणे, ते पिण जासी जन्म विगाडो रे।।

२२. साध रो सिध भगवंत हूवो छें, तिणरी खबर न कायो रे।
तिण साध नें अजीव कहें कालवादी, तिण गालां रो गोलो चलायो रे।।

२३. कोरा धांन नें कोरो धांन कह्यो छें, सीझता नें कहें सीझें धांनो रे।
सीझ गया नें कह्यौ सीझ्यौ धांन, ए तीनूं धांन जांणौ बुधवांनो रे।।

२४. कोरा धांन ज्यूं अविरती समदिष्टी, सीझें ज्यूं साध श्रावक पिछांणो रे।
सीझ्या धांन ज्यूं सिध भगवांन, ए तीनूं उत्म जीव जांणों रे।।

२५. कोरा धांन री खप कीयां सीझ्यों, ज्यूं समदिष्टी रो श्रावक हूवो जांणो रे।
पछें श्रावक रो साध अरिहंत हूवों, अरिहंत रो हूवो सिध निरवांणो रे।।

२६. कोरो धांन अगन करे सीझ्यों, तिणमें कोरो किहां थी पावें रे।
ज्यूं तप संजम करें साध रो सिध हुओ, त्यां में साध कठा थी वतावें रे।।

१९. जहां धर्मास्तिकाय का स्कन्ध है, वहां धर्मास्तिकाय के देश का क्षय नहीं होता है। वैसे ही जब साधु का सिद्ध हो जाता है तब साधु उससे पृथक् नहीं हो जाता।

२०. मोक्ष की साधना करता हुआ साधु कहलाता है तथा साधना संपूर्ण कर लेने वाले को सिद्ध जानें। वही साधु सिद्ध बना है, इसमें किंचित् भी शंका नहीं करें।

२१. उस साधु को अज्ञानी लोग अजीव कहते हैं, वे सचमुच काली धार डूब गए हैं। इस श्रद्धा को सच्ची मानने वाले भी अपना जन्म बिगाड़ देंगे।

२२. साधु ही सिद्ध भगवान हुए हैं। इसका उन्हें अवबोध नहीं है। कालवादी उस साधु को अजीव कहते हैं, उन्होंने सचमुच ही मिथ्या प्रवाद चलाया है।

२३. कच्चे (अपक्व) धान को कोरा धान कहा है, पकते हुए धान को पकता हुआ धान कहते हैं तथा पके हुए (सिद्ध) धान को पका हुआ धान कहा जाता है। बुद्धिमान लोग इन तीनों को धान समझते हैं।

२४. कोरे धान की तरह अविरत सम्यक् दृष्टि जीव होते हैं। पकते हुए धान की तरह श्रावक और साधु होते हैं तथा पके हुए धान की तरह सिद्ध भगवान होते हैं। इन तीनों को उत्तम जीव जानें।

२५. कोरा धान प्रयत्न करने से पक्व बना, वैसे ही सम्यक् दृष्टि का श्रावक बना जानें। फिर श्रावक से साधु और अर्हत् होता हैं। तदनन्तर अर्हत् सिद्ध बनकर निर्वाण प्राप्त करते हैं।

२६. कोरे धान को अग्नि से पकाने के बाद उसमें कोरा धान कहां से पाया जाएगा? वैसे ही तप और संयम के द्वारा साधु के सिद्ध होने पर इसमें साधु कहां से बताए।

२७. कालवादी कहें समाई कीधीं होवें, वले साधपणो कीधो होवें रे।
कीधी वसत ते जीव नही छें, इम कहि कहि भोलां नें विगोवें रे।।

२८. जो उ कीधी वसत नें जीव न मांनें, तो उ सिधां नें जीव क्यूं मांने रे।
सिध पिण करणी सूं कीधा हुआ छें, आ पिण वात नही छें छानें रे।।

२९. भावे जीव ते भला भूंडा भाव होवें, ते तो कीधाईज होवें रे।
तिण सूं भावें जीव नें कह्यों असासतो, तिण सूतर सांहमों न जोवें रे।।

३०. भावे न मांनें असासतो जीव नें, घणा सूतर रा पाठ उथापी रे।
असासता जीव रा भाव न सरधें, दूसरों छें मूरख पापी रे।।

३१. द्रवे जीव असंख प्रदेसी, ते तो कीधों होवें नांह्यो रे।
जीवरा भाव तो सर्व कीधां हुवें, जोवों सिधांत रे मांह्यों रे।।

३२. ठांम ठांम सूतर माहे जोवों, साध पोहता निरवांणो रे।
त्यां साधां नें उत्म जीव सरधो, छोड दों कूड़ी तांणों रे।।

३३. सवत अठारें वरस अड़तीसें, वेंसाख सुदि आठमि रिववारो रे।
जोड़ कीधीं पुर सहर रे माही, भव जीवां रो करण उधारो रे।।

●

२७. कालवादी कहते हैं कि सामायिक कृत होती है और साधुपन भी कृत होता है। कृत वस्तु कभी जीव नहीं होती हैह्नयों कहकर वे भोले लोगों को भ्रमित करते हैं।

२८. यदि वे कृत वस्तु को जीव नहीं मानते हैं तो वे सिद्धों को जीव क्यों मानते हैं? सिद्ध भी क्रिया के द्वारा ही बने हैं। यह बात किसी से प्रच्छन्न नहीं है।

२९. भाव जीव तो अच्छे-बुरे भाव (पर्यायों को) होते हैं। वे कृत ही होते हैं। इस दृष्टि से भाव जीव को अशाश्वत कहा है। वे सूत्र को नहीं देख रहे हैं।

३०. अनेक सूत्रों के पाठ का उत्थापन कर वे भाव जीव को अशाश्वत नहीं मानते हैं। वे अशाश्वत जीव के भाव नहीं मानते हैं। यह इन पापी जीवों की दोहरी मूर्खता है।

३१. द्रव्य जीव असंख्य प्रदेशी है। वह अकृत है-करने से नहीं होता है। जीव के सारे भाव (पर्याय) कृत होते हैं-करने से होते हैं। इसके लिए सिद्धान्त द्रष्टव्य है।

३२. सूत्र में स्थान-स्थान पर देखो कि साधुओं ने निर्वाण को प्राप्त किया। उन साधुओं को उत्तम जीव मानें। मिथ्या आग्रह को छोड़ दें।

३३. भव्य जीवों का उद्धार करने के लिए मैंने विक्रम संवत् १८३८ वैशाख शुक्ला अष्टमी रविवार को पुर शहर में यह जोड़ (रचना) की है।

●

आमुख

इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव हैं और इनका समावेश केवल दर्शन में होता है। इस चिरन्तन सत्य को बौद्धिक स्फुरणा के साथ बड़े ही मार्मिक ढंग से इस कृति में निरुपित किया गया है। इन्द्रिय-स्वरुप को समझने के लिए यह कृति अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इन्द्रियां शब्द, रूप आदि विषयों को ग्रहण करती है। श्रोत्र आदि पांचों इन्द्रियां तथा शब्द आदि पांचों विषय सावद्य नहीं हैंह्नउनसे किंचित् भी पाप नहीं लगता है। पाप केवल इन्द्रियों की अविरति और अशुभ प्रवृति से लगता है। वस्तुतः पाप विषय, विकार और कषाय से लगते हैं तथा वे ही सावद्य हैं। राग-द्वेष से ही विषय और विकार की उत्पत्ति होती है तथा इसी दृष्टि से आगम में इन्द्रियों को शत्रु कहा गया है। वास्तव में इन्द्रियां शत्रु नहीं हैं, वे दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से निष्पन्न होने के कारण आत्म-उज्ज्वलता की दृष्टि से निरवद्य हैं।

शब्द आदि विषयों का ग्रहण क्षायोपशमिक भाव है तथा राग-द्वेष की प्रवृत्ति औदयिक भाव है। इस तात्त्विक तथ्य को भली भांति समझकर इन्द्रियों के विषय में यथार्थ धारणा का निर्माण किया जा सकता है। श्रोत्रेन्द्रिय पारमार्थिक शब्दों को ग्रहण करती है तथा सहज संप्राप्त शब्दों का भी श्रवण करती है। किन्तु इनसे पाप नहीं लगता है। पाप का बंध तभी होता है जब मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दों के प्रति राग और द्वेष का भाव उत्पन्न होता है। जहां राग-द्वेष नहीं है वहां पाप का बंध भी नहीं है। श्रोत्र इन्द्रिय की तरह ऐसा सभी इन्द्रियों के विषय में ज्ञातव्य है। भगवान ने सूत्र में जो इन्द्रिय-निग्रह का निर्देश दिया है उसका तात्पर्य इतना ही है कि शब्दादि विषयों के प्रति राग-द्वेष न किया जाए।

साधु के विषय-सेवन का यावज्जीवन त्याग होता है। साधु के अतिरिक्त अन्यान्य प्राणियों के इन्द्रियों की अविरति का पाप निरन्तर लगता रहता है तथा

जब-जब शब्दादि विषयों के प्रति राग-द्वेष की प्रवृत्ति होती है तब-तब पाप लगता रहता है। अविरति निरन्तर होती है जबकि अशुभ योग निरन्तर नहीं होता।

चार घाती कर्म आत्मोदय में बाधक हैं किन्तु पाप का बंध केवल मोहनीय कर्म से होता है। सात कर्मों से किंचित् भी पाप कर्म का बंध नहीं होता है। पाप बंध के हेतु हैंह्नमिथ्यात्व, अविरति, प्रकार, कषाय और अशुभ योग। मिथ्यात्व दर्शन मोहनीय कर्म का उदय है तथा अविरति आदि चारित्र मोहनीय कर्म का उदय। अठारह पाप की प्रवृत्ति अशुभ योग के अन्तर्गत है। यह सूक्ष्म तथ्य है कि अठारह पाप की अविरति निरन्तर रहती है जबकि प्रवृत्ति निरन्तर नहीं होती।

प्रस्तुत कृति में अनेक तात्त्विक तथ्यों का विमर्श उपलब्ध है -

● सतरह पाप स्थान चारित्र मोहनीय कर्म का उदय तथा मिथ्या दर्शन शल्य पाप स्थान दर्शन मोहनीय कर्म का उदय है।

● अठारह पाप को अविरति और प्रवृत्ति की दृष्टि से अठारह आश्रव द्वार कहे जा सकते हैं।

● साकार और अनाकार उपयोग दोनों साथ नहीं होते हैं, पर व्रत और अव्रत दोनों साथ हो सकते हैं।

● ज्ञान और सम्यक्त्व भिन्न-भिन्न हैं। ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म का क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है जबकि सम्यक्त्व दर्शन मोहनीय कर्म का क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक भाव। ज्ञान से जीव जानता है जबकि सम्यक्त्व से श्रद्धान करता है। ज्ञान केवल उज्ज्वलता की दृष्टि से निरवद्य है जबकि पांचवें आदि गुणस्थान का सम्यक्त्व उज्ज्वलता और करणी दोनों दृष्टियों से निरवद्य है।

● ध्यान से निर्जरा होती है, संवर नहीं। धर्म और शुक्ल ध्यान निर्जरा की करनी है।

● चार ज्ञान और तीन अज्ञान केवलज्ञान के निदर्शन है तथा तीन दर्शन केवलदर्शन के निदर्शन है।

● काम-भोग पुद्गल है। दो इन्द्रियां कामी तथा तीन इंद्रियां भोगी कहलाती हैं। पर इनसे जरा भी पाप नहीं लगता।

● बुद्धि क्षायोपशमिक भाव है अतः निरवद्य है। बुद्धि का व्यापार सावद्य और निरवद्य दोनों प्रकार का होता है।

● आहार सावद्य नहीं होता। आहार की प्रवृत्ति सावद्य और निरवद्य दोनों प्रकार की होती है।

● दान और दान लब्धि भिन्न-भिन्न हैं। दान सावद्य और निरवद्य दोनों प्रकार का होता है जबकि दान लब्धि एकान्त निरवद्य होती है।

● चार घाती कर्मों का क्षयोपशम होता है और उनसे संप्राप्त बत्तीस बोल एकान्त निरवद्य होते हैं।

● बल, वीर्य, पराक्रम और शक्ति सशरीरी जीवों में पाई जाती है, अशरीरी जीवों में नहीं।

● ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में केवल पांच योग पाए जाते हैंह्नसत्य मन, व्यवहार मन, सत्य भाषा, व्यवहार भाषा और औदारिक काय योग। सातवें से दसवें गुणस्थान में भी ये ही पांच योग पाए जाते हैं।

इस तरह इन्द्रियवादी की चौपई तात्त्विक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। इसमें पन्द्रह ढालें हैं जिनमें कुल ९२ दोहे और ६९७ गाथाएं हैं।

इन्द्रियवादी री चौपई

दुहा

१. केइ कहें इग्यारमें नें बारमें, दोय गुण ठांणा नव नव जोग।
च्यार च्यार जोग मन वचन रा, नवमों उदारीक रों छें प्रयोग।।

२. इम कहें ते वीतराग नें, झूठाबोला कहें छें तांम।
ते ववेक विकल सुध बुध विना, झूठ बोले वेफांम।।

३. त्यांरो झूठों मन वरतें नही, मिश्र मन वरतें नांहि।
वले झूठ न बोलें सर्वथा, मिश्र भाषा नही त्यांरें मांहि।।

४. इग्यारमा गुणठांणा सूं आदि दे, चवदमा गुणठांणां लग जांण।
जथाख्यात चारित छें निरमलो, जथातथ गुण रत्नांरी खांण।।

५. ए च्यारां गुण ठांणां वीतराग छें, त्यांनें पाप न लागें अंस मात।
कषायादिक जोग माठा नही, त्यांरी मूल न विगटें वात।।

६. इग्यारमें बारमें नें तेरमें, तीन गुणठांणां पुन बंधाय।
ते पिण निरवद जोग सूं, इरिया वही कर्म लागें आय।।

दोहा

१. कुछ लोग कहते हैं कि ग्यारहवें और बारहवें-इन दो गुणस्थानों में नौ योग पाए जाते हैं। ये नौ योग हैंह्नचार मन के, चार वचन के और एक काया का औदारिक।

२. जो ऐसी प्ररूपणा करते हैं वे वीतराग पुरूषों को मिथ्या भाषी (मृषा बोलने वाले) कहते हैं। वे विवेकशून्य और सुमतिरहित पुरूष बिना विचारे मिथ्या बोलते हैं।

३. वीतराग पुरूषों के असत्य मन की प्रवृत्ति नहीं होती और न मिश्र मन की प्रवृत्ति होती है। वे सर्वथा असत्य नहीं बोलते हैं और न उनकी भाषा मिश्र होती है।

४. ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान में निर्मल यथाख्यात चारित्र होता है। वह यथाख्यात चारित्र गुणरत्नों की खान है।

५. वीतराग पुरूष उक्त चार गुणस्थान-ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान में स्थित होते हैं। उन्हें किंचित् भी पाप नहीं लगता। उनके कषाय आदि और अशुभ योग नहीं होते। अतः उनकी भाषा कभी भी वितथ नहीं होती।

६. ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें-इन तीन गुणस्थानों में केवल पुण्य का बंध होता है। वह भी निरवद्य योग से होता है और उससे ईर्यापथिक कर्म लगते हैं।

ढाल : १

(लय : आ अणुकम्पा जिण आगन्या में)

वीतराग भाव अंतकरण ओलखजौ ।।

१. जथतथ चालें वीतराग हूआ ते, त्यांनें झूठ लागतो मूल म जांणो।
झूठ सूं पाप निकेवल लागें छें, ते अभिंतर जोय करों पिछांणों।।

२. झूठो मन मिश्र मन त्यांरो न वर्तै, झूठी नें मिश्र भाषा मूल न बोलें।
निरदोष अखंड चारित छें त्यांरो, करलें कांम पस्यां पिण मूल न डोलें।।

३. भेखधारी कहें त्यांनें झूठ लागें छें, ते उठी जठा थी निकेवल झूठी।
वले तांणा तांण करें छें अग्यांनी, त्यांरी अभिंतर आंख हीया री फूटी।।

४. झूठा जोग सूं पाप निकेवल लागें छें, ते पाप न लागें च्यारूं गुणठांणें।
झूठा जोग वरत्यां सूं पुन पिण न लागें, ते न्याय निरणा विण अग्यांनी तांणें।।

५. कदा कहिवा नें कहें पाप न लागें, जथाख्यात च्यारूं गुणठाणें।
वले झूठाबोला त्यांनें कहिता न संकें, पोतारा बोल्या नें पोतें नही पिछांणें।।

६. झूठ लागों कहें जथाख्यात चारित नें, त्यांनें जाब पूछ्यां बोलें आल पंपालो।
ते भारीकर्मा जीव मूढ मिथ्याती, तीन काल रा अरिहंत नें दीयो आलो।।

ढाल : एक

अंतः करण में वीतराग भाव को समझें।

१. जो वीतराग पुरूष हो जाते हैं उनके यथाख्यात चारित्र होता है। उनके किंचित् भी असत्य भाषण का दोष नहीं जानें। असत्य भाषण के दोष से तो एकान्त पाप का बंध होता है। विवेक चक्षुओं से देखकर इस तथ्य को पहचानें।

२. वीतराग पुरुषों के असत्य मन और मिश्र मन-इन दोनों का ही वर्तन नहीं होता। वे किंचित् भी असत्य भाषा और मिश्र भाषा नहीं बोलते। उनके निर्दोष और अखण्ड यथाख्यात चारित्र होता है। कठिन परिस्थिति उत्पन्न होने पर भी वे किंचित् मात्र भी विचलित नहीं होते।

३. पाखण्डी कहते हैं कि उनके असत्य भाषण का पाप लगता है। ऐसी प्ररूपणा जड़-मूल से ही एकान्त मिथ्या है। अज्ञानी इस विषय में खींचतान करते हैं। उनके आभ्यन्तर नेत्रह्नज्ञान चक्षु लुप्त हो चुके हैं।

४. असत्य योग से तो एकान्ततः पाप कर्म का बंध होता है, किन्तु वह पाप इन चार (११-१४) गुणस्थानों में किंचित् भी नहीं लगता। असत्य योग का वर्तन होने पर पुण्य कर्म का बंध नहीं हो सकता। अज्ञानी लोग बिना न्याय और निर्णय के मिथ्या खींचतान करते हैं।

५. कदाचित् कहने भर के लिए कह देते हैं कि यथाख्यात चारित्र के इन चार गुणस्थानों में पाप का बंध नहीं होता। और वीतराग पुरुषों को असत्य भाषी कहते हुए उन्हें जरा भी संकोच नहीं होता। वे अपनी कही हुई बात का अर्थ स्वयं ही नहीं जानते।

६. यथाख्यात चारित्र वालों के असत्य मन और वचन की प्रवृत्ति होती हैह्नऐसा वे कहते हैं तथा जब उनसे प्रश्न का उत्तर देने के लिए कहा जाता है तो वे अनर्गल बोलने लग जाते हैं। वे भारीकर्मा मूढ-मिथ्यात्वी जीव तीनों काल के अरिहन्तों पर मिथ्या आरोपण करते हैं।

७. अठारें पाप ठांणा मोह कर्म री प्रकृत, त्यांरा उदा सूं सेवें छें किरतब अठारो।
ज्यारें मोह कर्म उदें जाबक नांही, ते सावद्य किरतब न करें लिगारो।।

८. पाप रा किरतब छें संसार में सगला, हिंसा झूठ आदि दे सेवें अठारों।
ते जथाख्यात चारितीयों न सेवें, त्यारें निरवद जोग तणो व्यापारो।।

९. त्यांनें निरवद जोग सूं पुन लागें छें, झूठ नें मिश्र जोग हूआं लागें पापो।
जब उ पण कहें त्यांनें पाप न लागें, पिण झूठ बोलण री करें मूढ थापो।।

१०. कदा विण उपीयोगे कह्यों हुवें तिणनें, समझतों देखे तो समझाय दीजें।
जो उ समझायों समझें नही मूर्ख, तिणनें न्याय करे नें झूठो घालीजें।।

११. वीतराग नें झूठ लागों कहें तिणरें, घट मांहें घणो छें घोर अंधारो।
कदा तांण करंतां टांको जलेतो, उतकष्टो भमें तो अनंत संसारो।।

●

७. अठारह पाप स्थान मोह कर्म की प्रकृति रूप हैं। उनके उदय से मनुष्य अठारह पापों का सेवन करता है। जिनके मोह कर्म का जरा भी उदय नहीं होता, वे किंचित् भी सावद्य प्रवृत्ति नहीं करते।

८. संसार में हिंसा, मृषा आदि जो अठारह पाप की प्रवृत्ति है, यथाख्यात चारित्र वाले उनका सेवन नहीं करते। उनके केवल निरवद्य योगों की ही प्रवृत्ति होती है।

९. यथाख्यात चारित्र वालों के निरवद्य योग से पुण्य का बंध होता है। यदि उनके असत्य और मिश्र योग होते तो पाप का बंध होता। ऐसा कहने पर वे भी कहते हैं कि उनके पाप नहीं लगता। किन्तु वे मूढ यह स्थापना करते हैं कि यथाख्यात चारित्र वाले भी असत्य बोलते हैं।

१०. यदि किसी ने बिना उपयोग ऐसा कहा हो और समझाने पर समझता हो तो उसे यथार्थ समझाना चाहिए। यदि अज्ञ समझाने पर भी न समझता हो तो न्यायपूर्वक उसे मिथ्या सिद्ध करना चाहिए।

११. जो वीतराग पुरुषों के असत्य का पाप लगना बतलाता है, उसके घट में अति घोर मिथ्यात्व का अंधकार है। व्यर्थ खींचतान करते हुए यदि कोई ऐसा संयोग आ मिले तो उसके ऐसा पाप बंध हो जाता है कि उत्कृष्टतः अनन्त संसार भ्रमण का भागी हो जाता है।

●

दुहा

१. आठ कर्म जिणेसर भाखीया, तिणमें घणघातीया कर्म च्यार।
ए च्यारूं पाप कर्म उदें हूआं, जीवरे हूवें बोहत विगाड।।

२. अें च्यारूं कर्म खयउपसम हुआं, जब जीव उजल हुवें ताहि।
जिम जिम च्यारूं कर्म पातला पडें, तिम तिम गुण परगट थाय।।

३. ए च्यारूं कर्म खयउपसम हूआं, जीव पावें बोल बत्तीस।
ते बतीसोई खायक भाव माहिला, चोंखा उजल विसवावीस।।

४. उजला हूवां करमां सूं निवरतें, ते उजलां लेखें निरवद एह।
वले बीजों निरवद किरतब कह्यों, तिणसूं कर्म रुकें तूटे तेह।।

५. कर्म रोकें आत्मा वस करें, ते संवर निरवद जांण।
वले कर्म काटण करणी करें, ए बीजों निरवद वखांण।।

६. खयउपसम भाव छें निरमलों, तिणनें कहें अग्यांनी आंम।
त्यांरा केयक बोल निरवद्य कहें, केई सावद्य निरवद कहें तांम।।

७. खयउपसम भाव नें सावद्य कहें, तिणरी प्रतख झूठी वात।
तिण सावद्य निरवद्य नही ओलख्यों, तिणरा घट माहे घोर मिथ्यात।।

दोहा

१. जिनेश्वर देव ने आठ कर्म कहे हैं, उनमें चार कर्म घनघाती हैं। इन चार पाप कर्मों के उदय से जीव का बहुत अनिष्ट होता है।

२. इन चार कर्मों का क्षयोपशम होता है, तब जीव उज्ज्वल होता है। ये कर्म जैसे-जैसे क्षीण होते हैं, वैसे-वैसे जीव के गुण प्रकट होते हैं।

३. इन चार कर्मों के क्षयोपशम होने पर जीव बत्तीस बोल प्राप्त करता है। ये बत्तीस ही बोल क्षायिक भाव के निदर्शन हैं। ये सब बोल अच्छे, उज्ज्वल और परिपूर्ण हैं।

४. उज्ज्वल होने से जीव कर्मों से निवृत्त होता है। इस उज्ज्वलता की अपेक्षा क्षयोपशम भाव निरवद्य है। तथा दूसरा निरवद्य कर्तव्य कहा गया है, उससे कर्म रुकते और टूटते हैं।

५. आत्मा को वश कर कर्मों को रोकना संवर है। उसे निरवद्य जानें। कर्मों को क्षीण करने के लिए जो प्रवृत्ति की जाती है, उसे (करणी की अपेक्षा) दूसरा निरवद्य समझें।

६. क्षायोपशमिक भाव निर्मल है, किन्तु अज्ञानी उसके कुछ बोलों को निरवद्य और कुछ बोलों को सावद्य-निरवद्य दोनों कहते हैं।

७. जो क्षायोपशमिक भाव को सावद्य कहते हैं, उनका कथन प्रत्यक्ष ही मिथ्या है। उसने सावद्य और निरवद्य को पहचाना नहीं है, उसके हृदय में घोर मिथ्यात्व है।

ढाल : २

(लय : पुन नीपजें शुभ जोग सूं रे लाल)

खयउपसम भाव निरवद जांणजों रे लाल।।

१. हिवें खयउपसम भाव ओलखो रे लाल, आंख हीयारी उघाड हो। भवकजण।
निरणों करों घट भिंतरे रे लाल, ते सावद्य नही छें लिगार हो।।भवकजण।।

२. जों खयउपसम भाव सावद्य हुवे रे लाल, तो खायक भाव सावद्य वशेष हो।
खयउपसम खायकभाव माहिलो रे लाल, यां दोयांरों छें निजगुण एक हो।।

३. ग्यांनावर्णी दर्शनावर्णी मोहणी रे लाल, चोथों घणघातीयो अंतराय हो।
ए च्यारूं कर्म घनघातीया रे लाल, ते धर्म आवा न दे ताय हो।।

४. आभपडल ज्यूं घणघातीया रे लाल, देस थकी खय थाय हो।
जब जीव उजल हुवे देस थी रे लाल, ते सावद्य कठी थी आयो ताहि हो।।

५. च्यारू कर्म देस थी अलगा हूआ रे लाल,मांसूं सावद्य नीकलीयो कहें मूढ़ हो।
तिण सावद्यावर्णी कर्म थापियो रे लाल, तिणरे गाढी मिथ्यात री रूढ हो।।

६. सावद्यावर्णी कर्म चाल्यों नही रे लाल, सावद्य आडा च्यारूं कर्म नांहि हो।
तिणसूं खयउपसम भाव नें रे लाल, सावद्य सरधे मत पडजों फंद मांहि हो।।

७. मोहणी कर्म जीव रे उदे हूआं रे लाल, जब तों सावद्य किरतब होय जात हो।
बाकी तीन कर्म उदें हूआं रे लाल, सावद्य नही नीपजें तिलमात हो।।

ढाल : दो

क्षायोपशमिक भाव को निरवद्य जानें।

१. अंतश्चक्षु को उद्घाटित कर अब क्षायोपशमिक भाव को पहचानो। यह किंचित् भी सावद्य नहीं हैह्नयह निर्णय अपने अन्तः करण में करो।

२. यदि क्षायोपशमिक भाव सावद्य हो तो क्षायिक भाव विशेष रूप से सावद्य होगा क्योंकि क्षयोपशम भाव क्षायिक भाव में समाहित है। इन दोनों का निजगुण एक है।

३. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायह्नये चार कर्म घनघाती हैं, आत्मिक गुणों की घात करने वाले हैं। ये जीव के स्वाभविक गुणों को प्रकट नहीं होने देते।

४. ये घनघाती कर्म बादलों की परत की तरह होते हैं। ये आंशिक रूप से क्षय होते हैं तब जीव आंशिक रूप से उज्ज्वल होता है। फिर वह सावद्य कहां से उत्पन्न हुआ?

५. मूढ लोग कहते हैं कि चारों कर्म देशतः दूर होने पर उसमें से सावद्य निकलता है। इस तरह उन्होंने सावद्यावरणीय कर्म की स्थापना की है। उनके प्रगाढ मिथ्यात्व की जड़ें और गहरी हो गई है।

६. सावद्यावरणीय कर्म का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। उक्त चारों ही कर्म सावद्य को आच्छादित किए हुए नहीं है। अतः क्षायोपशमिक भाव को सावद्य मानकर फन्द में मत पड़ना।

७. मोहनीय कर्म जीव के उदय होने पर सावद्य कर्त्तव्य होते हैं। अवशेष तीन कर्मों के उदय होने पर किंचित् भी सावद्य निष्पन्न नहीं होता।

८. उदे हूआंई सावद्य न नीपजें रे लाल, तो कटीयां नही सावद्य अंसमात हो।
कर्म कटीयां सावद्य नीपनों कहें रे लाल,आ विकलां री इचर्यवाली वात हो।।

९. जीव उजला हूआं नें सावद्य कहें रे लाल,
तो मेला हूआं सावद्य मिट जाय हो।
सावद्य घटीयो कहें उसभ उदें हूआं रे लाल,
उणरी सरधा मिलसी इण न्याय हो।।

१०. उणरी सरधा रे लेखे सावद्य यूं मिटें रे लाल, च्यारूं कर्म उदें आयां पूर हो।
सावद्य सेवे च्यारूं कर्म बांध नें रे लाल, उदें आंणे सावद्य करणों दूर हो।।

११. घणघातीया देस थी अलगा हूआं रे लाल, सावद्य भूंडो नीपनों कहें तांम हो।
कर्म कटीयां सावद्य वधीयों कहे रे लाल, ते तो बूडें अग्यांनी वेफांम हो।।

१२. ए च्यांरूइ कर्म पातला पस्यां रे लाल, कद सावद्य नीपनों मत जांण हो।
कर्म पातला पस्यां सावद्य नीपजें रे लाल, आतो पाखंडीयांरी छें वांण हो।

१३. कर्म अलगा हूआं निरवद नीपजें रे लाल, आतो जिणजी रा मुख री बात हो।
तिण निरवद नें सावद्य कहें रे लाल, तिण रे उदें आयो छे मिथ्यात हो।।

१४. आठ करमां मांहे छै अति बुरा रे लाल, घणघातीया च्यारूंई कर्म हो।
ते पतला पस्यां जीव रे ओंगुण कहें रे लाल, ते भूला अग्यांनी भर्म हो।।

१५. जिण में अविनादिक ओंगुण घणा रे लाल, तिणरी सरधा रहे नहीं सुध हो।
सिष्ट गुण जीवरा नें सावद्य कहे रे लाल, तिणरी भिष्ट हुई छै बुध हो।।

●

८. जब (तीन घाती) कर्मों के उदय होने पर भी सावद्य भाव निष्पन्न नहीं होते तब उनके कटने पर अंश मात्र भी सावद्य भाव नहीं होंगे। कर्म कटने पर सावद्य भाव उत्पन्न हुआ कहते हैं, यह बुद्धि विकल लोगों की आश्चर्यकारी बात है।

९. जीवों के उज्ज्वल होने को यदि वह सावद्य कहता है तो उनके मलिन होने पर सावद्य मिट जाना चाहिए। वे अशुभ कर्मों के उदय से सावद्य घटना कहेंगे तभी उनकी श्रद्धा न्यायतः घट सकती है।

१०. उनकी श्रद्धा के अनुसार चारों घाती कर्म पूरे उदय में आने पर सावद्य भाव मिटते हैं। तब तो सावद्य सेवन कर चारों कर्मों को बांध उन्हें उदय में ला सावद्य दूर करना चाहिए।

११. वे घनघाती कर्मों के देशतः दूर होने पर बुरे सावद्य भावों का निष्पन्न होना बतलाते हैं। इस तरह जो कर्म कटने पर सावद्य भाव की वृद्धि कहता है, वह अज्ञानी व्यर्थ ही डूबता है।

१२. इन चारों ही कर्मों के कृश होने मर कभी भी सावद्य की उत्पत्ति न जानें। कर्म कृश होने पर सावद्य निष्पन्न होता हैह्नयह पाखण्डियों की वाणी है।

१३. कर्म विलग (विलय) होने पर निरवद्य भाव निष्पन्न होते हैं, यह तो जिनेश्वर देव के श्रीमुख की वाणी है। जो इस निरवद्य भाव को सावद्य कहता है, उसके मिथ्यात्व उदय में आया हैह्नऐसा मानें।

१४. आठ कर्मों में चार घनघाती कर्म अत्यन्त अशुभ हैं। उनके कृश होने पर जो जीव के अवगुणों की उत्पत्ति कहते हैं, वे अज्ञानी भ्रम में भूले हुए हैं।

१५. जिसमें अविनय आदि अनेक अवगुण हैं, उसकी श्रद्धा शुद्ध नहीं रहती। जीव के शिष्ट गुणों को जो सावद्य कहता है, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी हैह्नऐसा मानें।

●

दुहा

१. कांयक घणघातीया कर्म खय हुआं, वले उदे हुआं ते खय जाय।
बाकी दबीया छेंू ते उपसम्या, खयउपसम कर्म हुआं इण न्याय।।

२. च्यारूं कर्म खयउपसम हूआं, थोंरोंसों जीव उजल थाय।
ते उजलों खयउपसम भाव छें, ते चेतन गुण परजाय।।

३. ग्यांनावर्णी खयउपसम हूआं, आठ गुण परगट थाय।
च्यार ग्यांन नें तीन अगिनांन कह्या, सूत्रादिक नों भणवो ताहि।।

४. ए आठ गुण छें केवल ग्यांन मांहिला, त्यांमें सावद्य नही छें एक।
जों यां मांहिंलो कोई सावद्य हुवें, तो केवल ग्यांन सावद्य वशेष।।

५. ग्यांनावर्णी खयउपसम हूआं, ग्यांन आयो कहे ते तो न्याय।
पिण अग्यांन कठा थी आवीया, कोई एहवी पूछा करें आय।।

६. परमार्थ ग्यानं अग्यांन रो, एक कह्यों जिणराय।
ते पिण आवें छें ग्यांनावर्णी घट्यां, तिणरों न्याय सुणों चित्त ल्याय।।

दोहा

१. घनघाती कर्म कुछ क्षय को प्राप्त हो गए हैं तथा जो उदय में आ गए हैं अर्थात् उदयावलिका में प्रविष्ट हो गए हैं वे क्षय हो रहे हैं तथा उदय में आए हुए कर्म विपाक में नहीं आते हैं इस तरह से दब जाना उपशम कहलाता है। इस प्रकार से चार घाती कर्मों का क्षयोपशम होता है।

२. चारों ही कर्मों के क्षयोपशम होने से जीव थोड़ा सा उज्ज्वल होता है। वह जीव की उज्ज्वलता क्षयोपशम भाव है। वह क्षयोपशम भाव जीव का गुण और पर्याय है।

३. ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने पर आठ गुण प्रकट होते हैं-चार ज्ञान, तीन अज्ञान और सूत्रादिक का स्वाध्याय।

४. ये आठ गुण केवल ज्ञान के निदर्शन हैं, इनमें एक भी सावद्य नहीं है। यदि इनमें कोई सावद्य हो तो केवल ज्ञान विशेष रूप से सावद्य होगा।

५. ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने पर ज्ञान आता है यह कहना तो न्यायसंगत है पर अज्ञान कहां से आया, कोई आकर ऐसा पूछते हैं।

६. जिनेश्वर देव ने ज्ञान और अज्ञान का एक ही परमार्थ कहा है। अज्ञान भी ज्ञानावरणीय कर्म के घटने से ही आता है। चित्त लगाकर इसका न्याय सुनो।

ढाल : ३

(लय : जीव मोह अनुकम्पा न आणीये)

निरवद खयउपसम भाव छै।।

१. गिनांन नें अगिनांन दोयां तणों, खयउपसम भणवों तो एक जांण रे।
ते तो समदिष्टी रो ग्यांन जिण कह्यों, मिथ्याती रो कह्यों अनांण रे।

२. समदिष्टी भणें आगम गिनांन नें, तेहिज भणें मिथ्याती गिनांन रे।
उणरों ग्यांन छें उणरो अग्यांन छें, तिणरो निरणों कीजों बुधवांन रे।।

३. भारतादिक सास्त्र पर समें, त्यांनें भणें मिथ्याती जांणें रे।
तेहिज भणें समदिष्टी जांणनें, उणरें अनांण उणरें नांण रे।।

४. केइ निरवद कहें गिनांन नें, पछें सरधा वतावें विरूध रे।
सावद्य निरवद कहें छें अग्यांन नें, आतों प्रतख वात विरूध रे।।

५. अगिनांन नें सावद्य कहें, तिणरा धडा लगावै आंम रे।
खोटा सास्त्र भणें जांण जांण नें उघाडे मुख धोखें तांम रे।।

६. अग्यांन सावद्य हुवें इण विधे भण्यां, तो ग्यांन पिण सावद्य होय रे।
एहीज भणें समदिष्टी इण विधें, अें दोनूं बरोबर सोय रे।।

७. समदिष्टी खेती करें जांण नें, ग्यांन सूं जांणें होसी धांन रे।
नहीं जांणें तो खेत वावें नहीं, तो ही सावद्य नही छें ग्यांन रे।।

ढाल : तीन

क्षयोपशम भाव निरवद्य है।

१. ज्ञानी और अज्ञानी दोनों का पढ़ना क्षयोपशम भाव है, ऐसा जानें। जिन भगवान ने सम्यग्दृष्टि के ज्ञान को ज्ञान और मिथ्या दृष्टि के ज्ञान को अज्ञान कहा है।

२. जिस आगम ज्ञान को सम्यग्द्दष्टि पढ़ता है उसी आगम ज्ञान को मिथ्यात्वी पढ़ता है। सम्यग्दृष्टि का आगम-ज्ञान ज्ञान है तथा मिथ्यादृष्टि का आगम-ज्ञान अज्ञान। बुद्धिमान लोग उसका निर्णय करें।

३. महाभारत आदि शास्त्र पर समय है, उन्हें मिथ्यात्वी पढ़ता और जानता है। सम्यग्दृष्टि भी उन्हें पढ़ता और जानता है। मिथ्यात्वी का वह जानना अज्ञान है और सम्यक्त्वी का जानना ज्ञान ।

४. कई ज्ञान को पहले तो निरवद्य कह देते हैं, पर बाद में इससे विरूद्ध श्रद्धान की प्ररूपणा करते हैं। वे अज्ञान को सावद्य-निरवद्य कहते हैं, यह तो प्रत्यक्षतः ही विरूद्ध बात है।

५. वे अज्ञान को सावद्य कहते हैं और इस विषय में इस प्रकार दलीलें देते हैंह्नमिथ्यात्वी जान बूझकर खोटे शास्त्र पढ़ता है तथा खुले मुंह आवृत्ति करता है, इसलिए उसका ज्ञान सावद्य है।

६. यदि इस तरह पढ़ने से अज्ञान सावद्य होता हो तो सम्यग्दृष्टि भी यदि इन्हें इसी प्रकार पढ़ता है तो उसका ज्ञान भी सावद्य हो जाना चाहिए। उनके अनुसार ये दोनों सावद्य होने चाहिए।

७. सम्यग्दृष्टि ज्ञान से जानता है कि धान उत्पन्न होगा। इस तरह जानकर वह खेती करता है। यदि वह यह बात न जानता होता तो खेत नहीं बोता। ऐसा होने पर भी ज्ञान सावद्य नहीं है।

८. समदिष्टी जांणें ग्यांन सूं, पुत्र होसी परणीज्यां नार रे।
पछे जांण परणीजे नार नें, पिण ग्यांन नही सावद्य लिगार रे।।

९. समदिष्टी रे कोई बेंरी हुवे, तिणनें मारण रो लग रह्यों ध्यांन रे।
ते पिण मारे छें ग्यांन सूं जाणं नें, ते पिण सावद्य नही छें ग्यांन रे।।

१०. इत्यादिक अनेक सावद्य करें, समदिष्टी ग्यांन सूं जांण रे।
तो पिण ग्यांन सावद्य मत जांणजों, सावद्य किरतब लेजों पिछांण रे।।

११. एहीज किरतब मिथ्याती करे, अग्यांन सूं जांण पिछांण रे।
जो ग्यांन निरवद छें निरमलो, तो अग्यांन पिण निरवद जांण रे।।

१२. ग्यांन अग्यांन दोनूं छें उजला, त्यांरी धारणा निरवद जांण रे।
धारणा दोनूं री छें सारिखी, तिणमें संका मूल म आंण रे।।

१३. ग्यांन नें अगिनांन तेहनें, जांणपणा तणो गुण जांण रे।
ओर गुण ओगुण नही एह में, तिणरी बुधवंत करजों पिछांण रे।।

१४. जे जे करे राखी छें धारणा, ते तो धारणा निरवद जांण रे।
ते धारणा उंध्री सरधीयां, मिथ्यात उदें भाव पिछांण रे।।

१५. शास्त्र भणवारो उदम करे, तेतो जोग तणों व्यापार रे।
सावद्य जोग उदें भाव मोह सूं, निरवद जोगांरी करणी सार रे।।

१६. ग्यांन अग्यांन छता रूप जीव रे, तिणसूं जांण रह्यों छें ताहि रे।
जे जे कोई सावद्य नीपजें, मोह उदा तणी परजाय रे।।

८. सम्यग्दृष्टि ज्ञान से जानता है कि स्त्री से विवाह करने पर पुत्र होगा। ऐसा जानकर वह स्त्री से पाणिग्रहण करता है, पर इससे भी ज्ञान जरा भी सावद्य नहीं होता।

९. सम्यग्दृष्टि का अपने किसी वैरी को मारने का ध्यान हो गया। वह अपने वैरी को ज्ञान से जानकर मारता है, तब भी उसका ज्ञान सावद्य नहीं है।

१०. इत्यादि अनेक सावद्य कार्य सम्यग्दृष्टि ज्ञान से जानकर करता है। ऐसा होने पर भी ज्ञान को सावद्य न जानें। इसे सावद्य कर्त्तव्य (कार्य) समझें।

११. ये ही कार्य मिथ्यात्वी अज्ञान से जानबूझ कर करता है। यदि ज्ञान निरवद्य और निर्मल है तो अज्ञान को भी निरवद्य जानें।

१२. ज्ञान और अज्ञान दोनों ही उज्ज्वल हैं। उनकी धारणा निरवद्य जानें। ज्ञान और अज्ञान दोनों की धारणा समान है, इसमें जरा भी शंका न लाएं।

१३. ज्ञान और अज्ञान दोनों में जानने का गुण जानें। इनमें अन्य गुण और अवगुण नहीं हैं। बुद्धिमान उसकी पहचान करें।

१४. ज्ञान और अज्ञान के द्वारा जो-जो धारणाएं कर रखी हैं, उन्हें निरवद्य समझें। उस धारणा के संबंध में विपरीत श्रद्धान से मिथ्यात्व उत्पन्न होता है। मिथ्यात्व उदय भावह्वयह समझें।

१५. शास्त्र-अध्ययन का उद्यम करनाह्वयह योग के अन्तर्गत है। सावद्य योग उदय-भाव है। वह मोहनीय कर्म के उदय से होता है। निरवद्य योगों की प्रवृत्ति ही सारयुक्त है।

१६. ज्ञान और अज्ञान की विद्यमानता से जीव पदार्थों को जानता है। जो जो सावद्य कार्य उत्पन्न होते हैं, वे मोहनीय कर्म के उदय के पर्याय हैं।

१७. बोलवा चालवादिक अति घणी, जीवरी परजाय अनेक रे।
जांण पणा विण ग्यान अग्यांन री, परजाय नहीं छें एक रे।।

१८. कोई अग्यांन ने सावद्य कहें, तिणरी प्रतख झूठी वात रे।
तिणरें उसभ उदें रा जोर सूं, चोरें पडिवजीयों मिथ्यात रे।।

●

१७. बोलना, चलना आदि जीव के अनेक पर्याय हैं। जानने के अतिरिक्त ज्ञान और अज्ञान की एक भी पर्याय नहीं है।

१८. कोई व्यक्ति अज्ञान को सावद्य कहता है। उसका कथन प्रत्यक्षतः मिथ्या है। उसने प्रबल अशुभ कर्मह्रमोहनीय कर्म के उदय से स्पष्टतः मिथ्यात्व को स्वीकार किया है।

●

दुहा

१. दरसणावर्णी घणघातीयों, खयउपसम होय पड्यो खीन।
जब आठ गुण परगट हुवें, पांच इंन्द्री नें दर्शन तीन।।

२. ए आठूं गुण निरदोष छें, उजला लेखें निरवद जांण।
ते केवल दर्शण मांहिला, गुण रतनां री खांण।।

३. केई अग्यांनी इम कहें, आठोंई गुण निरवद नांहि।
यांनें सावद्य निरवद दोनूं कहें, भोला नें न्हांखें फंद मांहि।।

४. यां आठां गुणां में सावद्य हुवें, तो केवल दर्शण सावद्य विशेष।
अें तो केवल दर्शण मांहिला, यां सगला रो गुण एक।।

५. पांच इंद्री नें तीन दर्शण मझे, सावद्य नहीं छें एक।
ते जथातथ परगट करूं, ते सुणजों आंण ववेक।।

ढाल : ४

(लय : जोयजो रे समकत नो रस परगट मोहे रे)

खयउपसम भाव छें निरवद जिण कह्यों रे।।

१. चखू दर्शण में चखू इंद्री अछें रे, अचखू दर्शण में आइ इंद्री च्यार रे।
यां विना देखें कोई मरजाद सूं रे, ते अविध दर्शण छे यांसूं न्यार रे।।

दोहा

१. जब घनघाती कर्म दर्शनावरणीय क्षयोपशम होकर क्षीण हो जाता है, तब आठ गुण प्रकट होते हैंह्नपांच इंद्रियां और तीन दर्शन।

२. ये आठों गुण निर्दोष एवं उज्ज्वल हैं। इन्हें उज्ज्वलता की अपेक्षा से निरवद्य जानें। ये आठों गुण केवल दर्शन की बानगी-निदर्शन हैं तथा गुण रूपी रत्नों की खान है।

३. कई अज्ञ लोग ऐसा कहते हैंह्नये आठों ही गुण निरवद्य नहीं हैं। वे इनको सावद्य-निरवद्य दोनों कहकर भोले लोगों को फंदे में डालते हैं।

४. यदि इन आठ गुणों में कोई सावद्य हो तो केवल दर्शन विशेष रूप से सावद्य होगा। ये सभी केवल दर्शन के निदर्शन हैं। इन सबका एक ही गुण है।

५. पांच इन्द्रिय और तीन दर्शन में एक भी सावद्य नहीं है। उसे मैं यथातथ्य प्रकट करता हूं। उसे आप विवेकपूर्वक सुनें।

ढाल : चार

जिनेश्वर देव ने क्षयोपशम भाव को निरवद्य कहा है।

१. चक्षु दर्शन में चक्षुइन्द्रिय का उपयोग होता है तथा अचक्षु दर्शन में शेष चार इंद्रियों का। इन इंद्रियों की सहायता के बिना कोई मर्यादित दूरी तक देखता है, वह अवधि दर्शन है, जो इनसे भिन्न है।

२. सुरतइंद्री सुणें छें तीन शब्द नें रे, पांच वर्ण चखू इंद्री देखें ताहि रे।
यांरो तो ओहीज गुण सभाव छें रे, गुण अवगुण ओर नही त्यां माहि रे।।

३. घणइंद्री वेदें दोय गंध नें रे, रस इंद्री रस वेदें पांच सवाद रे।
फरसइंद्री वेदें आठ फरस नें रे, यांसूं नही विषें तणो विवाद रे।।

४. अें तेवीस प्रकारें पूद्गल जूजूआ रे, वेदे देखें ते दर्शण जांण रे।
यांमें राग नें धेष सेव्यां विषें हुवें रे, तिणसूं तो पाप लागे छै आंण रे।।

५. सुरतइंद्री में पुद्गल आए पडें रे, ते सुरतइंद्री रे नावें भोग रे।
चखूइंद्री देखें छें पुद्गल दूर थी रे, ते पिण नांवे छें तिणरे भोग प्रजोग रे।।

६. बाकी तीन इंद्री में पुद्गल आए परें रे, ते पुद्गल आवें छें त्यारे भोग रे।
गंध रस नें फरस भोगवें रे, त्यां पुदगल नो आय मिलें संजोग रे।।

७. सुरतइंद्री नें चखूइंद्रीयां रे, यारें तो पुदगल आवें कांम रे।
भोग नही छें यारें सर्वथा रे, तिणसूं यांरो कांमी इंद्री नांम रे।।

८. घणइंद्री रसइंद्री नें फरसइंद्रीयां रे, यारें तो पुदगल आवें भोग रे।
तिणसूं तीनूं इंद्री भोगी कही रे, त्यांनें पुदगल रों आय मिल्यां संजोग रे।।

९. कांमी नें भोगी तो इंदर्यां कही रे, कांमभोग नें पुदगल जांण रे।
त्यांसूं तो पाप न लागें सर्वथा रे, पाप लागें छें राग धेष सूं आंण रे।।

१०. कांमभोग सूं सुमता नही हुवे रे, असुमता पिण तिणसूं नही लिगार रे।
कह्यों छें उतराधेन बतीस में रे, सो नें पहिली गाथा मझार रे।।

२. श्रोत्रेन्द्रिय तीन प्रकार के शब्दों को सुनती है तथा चक्षु इन्द्रिय पांच वर्णों को देखती है। इनका यही गुण-स्वभाव है। उनमें अन्य गुण-अवगुण नहीं हैं।

३. घ्राणेन्द्रिय दो प्रकार के गंध का अनुभव करती है। रसनेन्द्रिय पांच प्रकार के रस-स्वाद का अनुभव करती है। स्पर्शनेन्द्रिय आठ प्रकार के स्पर्शों का अनुभव करती है। इंद्रियों से विषय संबंधी कोई विवाद नहीं है।

४. ये तेईस प्रकार के पुद्गल भिन्न-भिन्न हैं।। इनका वेदन करना और इन्हें देखना दर्शन (सामान्य बोध) जानें। इन काम भोगों को राग-द्वेष पूर्वक सेवन करना विषय है। उससे पाप कर्म आकर लगते हैं।

५. श्रोत्रन्द्रिय में पुद्गल आकर गिरते हैं, वे श्रोत्रेन्द्रिय के भोग में नहीं आते हैं। चक्षु इन्द्रिय भी दूर से पुद्गलों को देखती है, वे भी उसके भोग-प्रयोग में नहीं आते।

६. अवशेष तीन इंन्द्रियों में जो पुद्गल आते हैं, वे उनके भोग में आते हैं। जब उन पुद्गलों का संयोग होता है, तब ये इन्द्रियां गंध, रस और स्पर्श का भोग करती हैं।

७. श्रोत्रेन्द्रिय और चक्षु इन्द्रिय इनके पुद्गल काम में आते हैं परन्तु उनके भोग सर्वथा नहीं होता। उससे इनका कामी इन्द्रिय नाम है।

८. घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय इनके पुद्गलों का संयोग होने पर वे इनके भोग में आते हैं। उससे इन तीनों इंन्द्रियों को भोगी इन्द्रिय कहा गया है।

९. इन्द्रियों को कामी और भोगी कहा है। काम-भोगों को पुद्गल जानें। उनसे पाप कर्म सर्वथा नहीं लगते। पाप राग-द्वेष से ही लगते हैं।

१०. काम-भोगों से समता नहीं होती। असमता भी उनसे बिल्कुल नहीं होती। यह उत्तराध्ययन सूत्र के बत्तीसवें अध्ययन की एक सौ एक वीं गाथा में कहा है।

११. संजम निरवाहण राखण शरीर ने रे, पुदगल रो करे छें साधु आहार रे।
ते निरवद जोग तणों व्यापार छें रे, इंदरयां रो नहीं छें विषें विकार रे।।

१२. त्यारें निरवद जोगां सूं निरजरा हुवें रे,
जब पुन्य पिण सेंहजें नीपजें छें ताहि रे।
त्यां साधां रे सावद्य नही राख्यों सर्वंथा रे,
त्यांनें आज्ञा दीधी छें श्री जिणराय रे।।

१३. ग्रहस्थ उदीरे पुदगल भोगवे रे, ते सावद्य जोग तणों व्यापार रे।
तिण शरीर प्रग्रहा नों कीयो जाबतो रे, वलें इंद्र्यां री सेवा विषें विकार रे।।

१४. वले छ काय रो सस्त्र नें तीखों कीयो रे,
इत्यादिक अवगुण छें तिण माहि रे।
तिणसूं पुदगल नें भोगववा तणी रे,
सुध साधां विण श्री जिण आग्या नांहिं रे।।

१५. सेंहजे इंदर्यां में पुद्गल आए पड़ें रे, त्यांनें कोई वेदें देखें छे ताहि रे।
जब पाप रो अंस न लागें तेहनें रे, राग धेष सूं पाप लागें छें आय रे।।

१६. पुद्गल नें भोगवें देखें उदीर नें रे,
ते तों छें जोग तणों व्यापार रे।
तिणरो सावद्य निरवद किरतब ओलखों रे,
जिण आग्या अणआग्या रो करों विचार रे।।

१७. जिण आग्या सहीत पुद्गल नें भोगवे रे, ते निरवद जोग तणों व्यापार रे।
कर्म कटे छें तिणसूं आगला रे, वले नवों न लागें पाप लिगार रे।।

१८. जिण आगना विण कोई पुद्गल भोगवें रे, ते सावध जोग तणों व्यापार रे।
तिणसूं पाप कर्म लागे छें तेहनें रे, ते जीव नें दुखना आपणहार रे।।

११. साधु संयम के निर्वाहार्थ तथा शरीर की रक्षा के लिए पुद्गल का आहार करता है। यह निरवद्य योगों का व्यापार है। इन्द्रियों का विषय-विकार नहीं है।

१२. साधु के निरवद्य-योगों से निर्जरा होती है तब पुण्य भी सहज रूप से आकर उत्पन्न होते हैं। उन साधुओं के आहार को जिन भगवान ने किचित् भी सावद्य में नहीं रखा है। उन्हें आहार करने की जिनेश्वर देव ने आज्ञा प्रदान की है।

१३,१४. गृहस्थ उदीर कर-प्रयत्न कर पुद्गल भोगता है। यह सावद्य योग का व्यापार है। उसने इन्द्रियों से विषय-विकार सेवन करने के लिए शरीर रूपी परिग्रह की रक्षा की है। और छह काय के शस्त्र (शरीर) को तीक्ष्ण किया-इत्यादिक अनेक अवगुण गृहस्थों के आहार करने में है। इसी कारण शुद्ध साधुओं के अतिरिक्त किसी को पुद्गल भोगने की जिनेश्वर देव की आज्ञा नहीं है।

१५. सहज ही इंद्रियों में पुद्गल आते हैं, उन्हें कोई वेदता-देखता है, तब उसको किंचित् मात्र पाप नहीं लगता। पाप केवल राग-द्वेष से आकर लगता है।

१६. पुद्गलों को प्रयत्नपूर्वक भोगना और देखना-यह योग का व्यापार है। उसके सावद्य और निवरद्य करतब को पहचानें तथा जिनेश्वर देव की आज्ञा और अनाज्ञा का चिन्तन करें।

१७. जिनेश्वर की आज्ञा सहित पुद्गल का भोग करना निरवद्य योग का व्यापार है। उससे पूर्व बद्ध कर्म कटते हैं तथा नया पाप किंचित् भी नहीं लगता।

१८. जिन आज्ञा के बिना कोई पुद्गल का भोग करता है, वह सावद्य योग की प्रवृत्ति है। उनसे जीव के पाप कर्म लगते हैं। वे जीव को दुःख देने वाले होते हैं।

१९. आंख्यां सूं देखें कागादिक जीवनें रे, जब करें सिकारी तिणरी घात रे।
तिणसूं चखूइंद्री नें सावद्य कहें रे, ते प्रतख झूठी तिणरी वात रे।।

२०. चखूइंद्री सूं रूप देखें नारी तणो रे, जब करे अकारज तिणसूं तेह रे।
तिणसूं चखू इंद्री नें सावद्य कहें रे, तिण पिण झूठ बोल्यो छें एह रे।।

२१. इत्यादिक रूप अनेक देखनें रे, केई जीवां रे उठें विषें विकार रे।
तिणसूं चखूइंद्री ने सावद्य कहें रे, ते निरणों न जांणें मूंढ गिंवार रे।।

२२. च्यारां इंदरयां में पुद्गल आए पडें रे, ते इंदरयां वेद लेवे छें ताहि रे।
जब केयक जीवां रे अवगुण नीपजें रे, ते अवगुण बतावे इंदरयां माहि रे।।

२३. चखूइंद्री पुद्गल देखे दूर थी रे, ते देखणरो गुण छें तिणमें तांम रे।
जब केयक जीवां रे आंगुण नीपजें रे, खोटा वरत्या तिणरा परिणांम रे।।

२४. सावध कहे पांचूं इंदरयां भणी रे, तिणरें उदें छें मोह मिथ्यात रे।
ते इंदरयां नें निश्चें निरवद जिण कही रे, तिण में संका नहीं तिलमात रे।।

२५. जो देख्यां वेद्यां इंदरयां सावद्य हुवे रे,तो जांण्यां सूं ग्यांन सावद्य होय जाय रे।
ग्यांन दर्शण रा गुण दोईज छें रे, सावद्य निरवद छे ओर परजाय रे।।

२६. दर्शण रो सभाव छें देखण तणों रे, ओर गुण ओगुण नही तिणरो एक रे।
ओर गुण ओगुण नीपजें जीव रें रे ते परजा छें जीव तणी अनेक रे।।

●

१९. शिकारी काग आदि जीवों को आंखों से देखता है, तब उनकी घात करता है। उससे जो चक्षु इन्द्रिय को सावद्य कहते हैं, उनकी बात प्रत्यक्षतः मिथ्या है।

२०. चक्षु इन्द्रिय से जीव नारी का रूप देखता है, तब वह उससे दुष्कर्म करता है। उससे जो चक्षु को सावद्य कहता है, उसने भी यह मिथ्या कहा है।

२१. इत्यादिक ऐसे अनेक रूपों को देखकर कई जीवों के विषय विकार उत्पन्न होते हैं। उससे जो चक्षु इन्द्रिय को सावद्य कहते हैं, वे अज्ञ और मूढ जन तत्त्व-निर्णय नहीं जानते।

२२. चार इंद्रियों में पुद्गल आकर गिरते हैं। इन्द्रियां उन्हें वेदती-भोगती हैं। उस समय कई जीवों के दोष उत्पन्न होते हैं। उन अवगुणों-दोषों को वे इन्द्रियों के सिर मढते हैं।

२३. चक्षु इन्द्रिय दूर से ही पुद्गलों को देखती है। उसमें देखने का गुण है। इससे कई जीवों के अवगुण उत्पन्न होते हैं क्योंकि उनके अशुभ परिणाम वर्ते हैं।

२४. जो पांचों इंद्रियों को सावद्य कहते हैं उनके मोह और मिथ्यात्व उदय में हैं। जिन भगवान ने इंद्रियों को निश्चय ही निरवद्य कहा है। इसमें जरा भी शंका नहीं है।

२५. यदि देखने और अनुभव करने के कारण इन्द्रियां सावद्य हों तो जानने से ज्ञान भी सावद्य होगा। ज्ञान और दर्शन के गुण क्रमशः जानना और देखनाह्नये दो ही हैं। सावद्य-निरवद्य भिन्न पर्याय है।

२६. दर्शन का स्वभाव देखने का है। उसमें अन्य गुण और अवगुण जो एक भी नहीं है। अन्य गुण-अवगुण जीव में उत्पन्न होते हैं वे जीव के अनेकविध पर्याय हैं।

●

दुहा

१. च्यार कर्म घणघातीया, तिण में मोंटों मोहणी कर्म।
तिणरा उदा सूं जीव पांमें नही, समकत चारित धर्म।।

२. तिणमें दर्शण मोहणी उदें हुवां, पड़े उंधी सरधा मांहें आंण।
साची सरधा मूल सूझें नहीं, बूडें कूडी कर कर तांण।।

३. चारित्र मोंहणी रा जोग सूं, करें सावद्य किरतब अनेक।
खोटा खोटा काम सर्व आवीया, बाकी सावद्य रह्यों नहीं एक।।

४. ते मोहणी खयउपसम हूआं, जब आठ गुण परगटें आय।
च्यार चारित्र देसविरत पांचमों, तीन दिष्ट खयउपसम थाय।।

५. ए आठोंई बोल छें उजला, त्यांनें निरवद कह्या जिणराय।
ते आठोंई खायक भाव माहिला, त्यांसूं कर्म न लागें आय।।

६. खयउपसम भाव मिथ्यादिष्ट नें, सावद्य कहें अग्यांनी तांम।
तिणरी जथातथ ओलखणा कहूं, ते सुणजो राखे चित ठांम।।

ढाल : ५

(लय : दुलहो मानव भव कांय तूरे हारे)

खयउपसम भाव छे निरमलो।।

१. उंधो सरधें ते मिथ्यादिष्ट छे, ते दसविध कह्यों मिथ्यात हो।।भवकजन।
ते आश्व उपाय छें पाप रो, ते उदें भाव कह्यों जगनाथ हो।।भवकजन।।

दोहा

१. चार घनघाती कर्मों में मोहनीय कर्म सबसे बलवान है। उसके उदय से जीव सम्यक्त्व और चारित्र धर्म की प्राप्ति नहीं कर पाता।

२. उसमें दर्शन मोहनीय के उदय होने से जीव विपरीत श्रद्धा में आकर गिरता है। उसे सच्ची श्रद्धा बिल्कुल दिखाई नहीं देती और जीव मिथ्या खींचातान कर डूबता है।

३. चारित्र मोहनीय के योग (उदय) से जीव अनेक सावद्य कार्य करता है। बुरे-बुरे सारे काम सावद्य में समाविष्ट होते हैं। बुरे कामों के उपरान्त एक भी सावद्य कार्य नहीं रहता।

४. उस मोहनीय कर्म का जब क्षयोपशम होता है, तब आठ गुण प्रकट होते हैं-चार चारित्र, पांचवां देश विरति और तीन क्षयोपशम दृष्टि।

५. ये आठों ही बोल उज्ज्वल हैं। इन्हें जिनेश्वर देव ने निरवद्य कहा है। ये आठों ही बोल क्षायिक भाव के निदर्शन हैं, इनसे कर्म आकर नहीं लगते।

६. अज्ञानी लोग क्षयोपशम भाव मिथ्यादृष्टि को सावद्य कहते हैं। उसकी यथातथ्य पहचान करवाता हूं। उसे चित्त को स्थिर रखकर सुनें।

ढाल : पांच

क्षायोपशमिक भाव निर्मल है।

१. विपरीत श्रद्धा करना मिथ्यादृष्टि है। उस मिथ्यात्व को दस प्रकार का कहा गया है। वह आश्रव हैह्नपाप का हेतु है। उसे त्रिभुवन-नाथ ने औदयिक भाव कहा है।

२. दसोई उंधा बोल मांहिलो, कोइ सूधों सरधें बोल एक हो।
ते निरदोष खयउपसम भाव छे, पाछें सावद्य रह्या बोल शेष हो।।

३. जिम जिम घटे छें उंधो सरधवों, तिम तिम घटें छें मिथ्यात हो।
उंधो घट्यां वधें सुधो सरधवों, ते खयउपसम भाव साख्यात हो।।

४. ते खयउपसम भाव निरवद कह्यों, श्री जिणमुख सूं आप हो।
ते उजला लेखें निरवद कह्यों, वले रूकीया छें तिणसूं पाप हो।।

५. इम घटता घटता सगला घटया, उंधा दसोई बोल जांण हो।
जब हूवो मिथ्याती रो समकती, एहवों खयउपसम भाव पिछांण हो।।

६. कोई खयउपसम निरवद भाव नें, सावद्य कहें छें कर कर तांण हो।
ते यूंही बूडे छें बापड़ा, ते जिण मारग रा अजांण हो।।

७. मिथ्यात मोहणी कर्म उदे हुआं, जब उदें भाव सावद्य मिथ्यात हो।
ते घटीयां सावद्य वधीयों कहें, ते विकलां वाली छें वात हो।।

८. उदे भाव कही मिथ्यादिष्ट नें, ते मिथ्यात मोहणी सु जांण हो।
वले खयउपसम कही मिथ्यादिष्ट नें, ते मोह कर्म पस्त्यां हांण हो।।

९. मोह कर्म उदे सावद्य नीपजें, खयउपसम हूआं सावद्य नांहि हो।
खयउपसम हूआं निरवद्य नीपजें, बुधवंत समझों मन मांहि हो।।

१०. मिथ्यादिष्ट खयउपसम भाव छें, समामिथ्या दिष्ट तिमहीज जांण हो।
खयउपसम भाव निरवद कह्यों, तिण मांहें संका मत आंण हो।।

२. दस विपरीत श्रद्धा के बोलों में से यदि कोई एक भी बोल को शुद्ध श्रद्धता है तो वह निर्दोष क्षायोपशमिक भाव है। शेष बोल रहे, वे सावद्य हैं।

३. जैसे-जैसे विपरीत श्रद्धान घटता है, वैसे-वैसे मिथ्यात्व घटता है। मिथ्या श्रद्धान घटने से सम्यक् श्रद्धान बढता है। यह साक्षात् क्षायोपशमिक भाव है।

४. श्री जिनेश्वर देव ने स्वयं अपने मुँह से इस क्षायोपशमिक भाव को निरवद्य कहा है। उसे उज्ज्वलता की अपेक्षा से निरवद्य कहा है और उससे पाप कर्म भी रुकते हैं।

५. इस तरह घटते-घटते दसों ही विपरीत बोल घट जाते हैं, तब जीव मिथ्यात्वी का सम्यक्त्वी हो जाता है। क्षायोपशमिक भाव ऐसा है, उसे पहचानें।

६. कोई निरवद्य क्षायोपशमिक भाव को खींचतान कर सावद्य कहता है। वे जिन मार्ग के अज्ञ हैं और बेचारे व्यर्थ ही डूबते हैं।

७. मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय होने पर औदयिक भाव मिथ्यात्व होता है, जो सावद्य है। उसके घटने से सावद्य की वृद्धि कहना विकलों की-सी बात है।

८. मिथ्यादृष्टि को औदयिक भाव कहा है। वह मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जानें। तथा मिथ्या दृष्टि को क्षायोपशमिक भाव भी कहा है। वह मोहनीय कर्म के विलय होने पर होता है।

९. मोहनीय कर्म के उदय से सावद्य भाव उत्पन्न होते हैं किन्तु क्षयोपशम होने पर सावद्य भाव उत्पन्न नहीं होते हैं। क्षयोपशम होने पर निरवद्य भाव ही अत्यन्त होते हैं- बुद्धिमान इसे मन में समझें।

१०. मिथ्यादृष्टि क्षायोपशमिक भाव है। सममिथ्यादृष्टिह्मिश्रदृष्टि को भी वैसा ही जानें। क्षायोपशमिक भाव को निरवद्य कहा गया है। इसमें शंका मत लाओ।

११. जो खयउपसम भाव सावद्य हुवे, तो खायक भाव सावद्य वशेख हो।
खयउपसम खायक भाव मांहिलो, यां दोयां रो छें निजगुण एक हो।।

१२. खयउपसम भाव सावद्य हुवे, तो उदे भाव सूं मिट जाय हो।
उणरी सरधा रो ओहीज न्याय छे, उदे भाव रो करणो उपाय हो।।

१३. तो मिथ्यात मोहणी कर्म बांधणों, तिण सूं खयउपसम मिट जात हो।
साची सरधा नें उंधी सरध नें, पाछों पडिवजणों मिथ्यात हो।।

•

११. यदि क्षायोपशमिक भाव सावद्य हो तो क्षायिक भाव विशेष रूप से सावद्य होगा। क्षायोपशमिक भाव क्षायिक भाव में समाहित है। इन दोनों का निजगुण एक है।

१२. यदि क्षयोपशमिक भाव सावद्य हो तो फिर औदयिक भाव से मिट जाएगा। उनकी श्रद्धा का यही न्याय है। अतः औदयिक भाव का उपाय करना चाहिए।

१३. उनके अनुसार फिर मिथ्यात्व मोहनीय कर्म को बांधना चाहिए, जिससे क्षयोपशम मिट जाए। सम्यक् श्रद्धा को विपरीत श्रद्धा में परिणत कर पुनः मिथ्यात्व को स्वीकार करना चाहिए।

●

दुहा

१. चोथो कर्म घणघातीयों, भारी कर्म अंतराय।
जिण जिण वसतुरी छे चावना, तिण आडो होय रह्यों ताहि।।

२. अंतराय कर्म तणा, पांच भेद कह्या जिणराय।
प्रथम दांना अंतराय छें, बीजों भेद लाभा अंतराय।।

३. भोग उवभोग आडी होय रही, ते भोगा उवभोगा अंतराय।
वीर्य अंतराय कर्म थकी, सकत दबे रही ताहि।।

४. खयउपसम हुवें अंतराय जब, आठ गुण परगटें आय।
पांच लबद नें तीन वीर्य हुवें, ते निरमल गुण परजाय।।

५. ए आठोंई गुण निरवद उजला, त्यांनें सावद्य कहें केई मूंढ।
तिण ऊंध मती री सरधा सुंणों, छोड हीया री रूढ।।

ढाल : ६

(लय : विनारा भाव सुण सुण गूंज)

१. धूर सूं तो दांना अंतराय, तिणरो खयउपसम थाय।
दांन आडी नहीं छे ताहि, दांन लब्द परगट हुवें आय।।

२. तिण लब्द नें निरवद जांणों, तिण मांहे संका मत आंणों।
तिणनें सावद्य कहे तांण तांण, ते तो जिण मारग रा अजांण।।

दोहा

१. अन्तराय कर्म चौथा घनघाती कर्म है। यह भी बड़ा कर्म है। जिस-जिस वस्तु की चाह होती है, यह कर्म उसकी प्राप्ति में बाधक होता है।

२. जिनेश्वर देव ने अन्तराय कर्म के पांच भेद कहे हैं। उनमें पहला भेद दानान्तराय और दूसरा भेद लाभान्तराय है।

३. जो भोग और उपभोग में बाधक होते हैं, वे क्रमशः भोगान्तराय और उपभोगान्तराय हैं। वीर्यान्तराय कर्म से जीव की शक्ति दबी रहती है।

४. जब अन्तराय कर्म क्षयोपशम को प्राप्त होता है तब आठ गुण प्रकट होते हैंह्नपांच लब्धि और तीन वीर्य। वे गुण निर्मल हैं और जीव के पर्याय हैं।

५. ये आठों ही गुण उज्ज्वल और निरवद्य हैं। किन्तु कई मूढ लोग इन्हें सावद्य कहते हैं। उन विपरीत मति वाले लोगों की श्रद्धा को सुनें तथा हृदय में व्याप्त रूढि को छोड़ें।

ढाल : छह

१. पहला भेद दानान्तराय है। उसके क्षयोपशम से दान देने में बाधा नहीं रहती। दान लब्धि प्रकट होती है।

२. उस दान लब्धि को निरवद्य जानें। उसमें जरा भी शंका मत लाओ। जो बार-बार खींचातान कर उसे सावद्य कहते हैं, वे जिन-मार्ग के अजानकार हैं।

३. इण लबद में आंगुण नांही, लबद तों जिण आगना मांही।
गुण अवगुण दांन में जांणों, सावद्य निर्वद्य भेद पिछांणों।।

४. इविरत में दान देवें जांणों, ते तों सावद्य जोग पिछांणों।
विरत में दान देवे छें कोय, तिणरा निरवद जोग छें सोय।।

५. दांन नें सावद्य निर्वद्य जांणों, त्यांनें रूडी रीत पिछांणों।
सावद्य दांन तों प्रतख खोटों, लबद गुण छें निरंतर मोटो।।

६. दांन लबद नें दांन छें न्यारो, तिणरों बुधवंत जाणें विचारो।
दांन लब्द रा जतनज कीजें, सावद्य दांन जाबक त्याग दीजें।।

७. दांन लब्द छें निरवद भावों, तिण मांहे संका मत ल्यावों।
दान लब्द सावद्य कहें कोय, उणरे लेखे निरवद किम होय।।

८. कर्म बांधे दांना अंतराय, सताब सूं उदें अणाय।
खयउपसम नें देणों घटाय, उणरें लेखें निरवद इम थाय।।

९. दांना अंतराय कर्म घटीयों, जीव उजल हूवों कर्म मिटीयो।
तिण उजल नें सावद्य कहे ते झूठों, मोह कर्म उदे हीयो फूटो।।

१०. सावद्य वधीयों कहें घटियां कर्म, ते भूला अग्यांनी भर्म।
ते सावद्यावर्णी कर्म थाप, यूं ही बांधें अग्यांनी पाप।।

११. दूजी लाभा अंतराय, तिणरो खयउपसम थाय।
लाभ आडी नही छें ताहि, लाभ लब्द परगट हुवें आय।।

३. इस लब्धि में कोई अवगुण-दोष नहीं है। यह तो जिन आज्ञा में है। गुण-अवगुण दान में होता है। दान के सावद्य और निरवद्य के भेद को पहचानें।

४. जो दान अविरति में (असंयति को) दिया जाता है उसे सावद्य योग जानें। जो विरति में (संयति को) दान देता है, उसके योग निरवद्य होते हैं।

५. दान को ही सावद्य और निरवद्य जानें। दान के भेदों को अच्छी तरह पहचानें। सावद्य दान प्रत्यक्षतः बुरा है। दान लब्धि निरन्तर महान गुण होता है।

६. दान लब्धि और दान अलग-अलग हैं। बुद्धिमान उस विचार को जानता है। दान लब्धि की सुरक्षा करनी चाहिए। सावद्य दान को बिल्कुल त्याग देना चाहिए।

७. दान लब्धि निरवद्य भाव है, इसमें शंका मत लाओ। जो दान लब्धि को सावद्य कहता है, उसके मत से वह निरवद्य कैसे हो?

८. दानान्तराय कर्म को बांधकर तथा उसे शीघ्र उदय में लाकर क्षयोपशम को घटा देना चाहिए। जो दान लब्धि को सावद्य कहता है, उसके अनुसार इसी तरह निरवद्य भाव होता है।

९. दानान्तराय कर्म के घटाने पर कर्म मिटते हैं और जीव उज्ज्वल होता है। जो उस उज्ज्वलता को सावद्य कहता है, वह झूठा है। मोह कर्म के उदय से उसका मति भ्रंश हो गया है।

१०. जो कर्म घटने पर सावद्य की वृद्धि बतलाते हैं, वे अज्ञानी लोग भ्रम में भूले हुए हैं। वे सावद्यावरणीय कर्म की स्थापना कर व्यर्थ ही पाप का बंधन करते हैं।

११. दूसरा भेद लाभान्तराय है। जब उसका क्षयोपशम होता है तो लाभ में बाधा नहीं रहती। लाभ लब्धि प्रकट होती है।

१२. तिण लब्द नें निरवद जांणों, तिण माहे संका मत आंणों।
तिणनें सावद्य कहें तांण तांण, ते तो जिणमारग रा अजांण।।

१३. इण लबद में आंगुण नांही, लबद तो जिण आगना माही।
गुण आंगुण लाभ लेंण में जांणो, सावद्य निरवद भेद पिछांणो।।

१४. पुद्गलादिक री छें चाहि, इविरत में लेंण रों उपाय।
तिणनें मेल्या मिलें छें आय, तिणरा सावद्य जोग छें ताहि।।

१५. पुद्गलादिक री छें चाहि, जिण आग्या सूं मेलण रों उपाय।
तिणनें मेल्यां मिलें छें आय, तिणरा निरवद जोग छें ताहि।।

१६. सावद्य जोग सूं पाप बंधाय, निरवद जोग सूं निरजरा थाय।
नही तूटें बंधें लबद सूं कर्म, लबद छें निरजरा धर्म।।

१७. इत्यादिक अनेक भेद जांण, दांन लब्द ज्यूं लेजों पिछांण।
लाभ लब्द में आंगुण नांही, गुण अवगुण पुद्गल मेल्यां मांही।।

१८. तीजी भोगा अंतराय, तिणरों खयउपसम थाय।
भोग आडी नही छें ताहि, भोग लबद परगट हुवें आय।।

१९. तिण लबद नें निरवद जांणों, तिण माहे संका मत आंणों।
तिणनें सावद्य कहें तांण तांण, ते तों जिण मारग रा अजांण।।

२०. इण लबद में आंगुण नांही, लबद तो जिण आगना मांही।
गुण ओगुण भोगवण में जांणों, सावद्य निरवद भेद पिछांणो।।

१२. इस लाभ लब्धि को निरवद्य जानें। इसमें शंका मत लाओ। बार-बार खींचातान कर जो इसे सावद्य कहते हैं, वे जिन मार्ग के अनभिज्ञ हैं।

१३. इस लब्धि में कोई अवगुण नहीं है। वह जिन आज्ञा में है। गुण और अवगुण लाभ लेने में जानें। लाभ लेने की प्रवृत्ति सावद्य और निरवद्य दो प्रकार की होती है। उन्हें सम्यक् प्रकार से पहचानो।

१४. जिसके पुद्गल आदि की चाह होती है और जो अविरति में प्राप्त करने का उपाय करता है। उसे चेष्टा करने पर वस्तुएं मिलती हैं। उसका योग सावद्य होता है।

१५. जिसके पुद्गल आदि की चाह होती है और जो जिन आज्ञा से पाने का उपाय करता है। उसे चेष्टा करने पर वस्तुएं मिलती हैं। उसका योग निरवद्य होता है।

१६. सावद्य योग से पाप का बंध होता है तथा निरवद्य योग से निर्जरा होती है। लब्धि से कर्म न टूटते हैं और न बंधते हैं। लब्धि निर्जरा धर्म (उज्ज्वलता की अपेक्षा से) है।

१७. इत्यादि अनेक भेद दान लब्धि की तरह जानें। लाभ लब्धि में अवगुण नहीं है। गुण और अवगुण पुद्गल की प्राप्ति में है।

१८. तीसरा भेद भोगान्तराय है। जब उसका क्षयोपशम होता है तो भोग में बाधा नहीं रहती। भोग लब्धि प्रकट होती है।

१९. इस भोग लब्धि को निरवद्य जानें। इसमें शंका मत लाओ। जो भोग लब्धि को बार-बार खींचातान कर सावद्य कहते हैं, वे जिन मार्ग के अनभिज्ञ हैं।

२०. इस भोग लब्धि में अवगुण नहीं है। लब्धि तो जिन-आज्ञा में है। गुण और अवगुण भोगने में जानें। उसके सावद्य और निरवद्य भेदों को पहचानें।

२१. पुदगल भोगवण री छें चाहि, इविरत में भोगवें छें ताहि।
पुदगल भोगवले एक वार, ते तों सावद्य जोग व्यापार।।

२२. पुदगल भोगवण री छें चाहि, जिण आग्या सूं भोगवें ताहि।
पुदगल भोगवलें एक वार, ते तो निरवद जोग व्यापार।।

२३. सावद्य जोग सूं पाप बंधाय, निरवद जोग सूं निरजरा थाय।
नही तूटें बंधे लबद सूं कर्म, लबद छें निरजरा धर्म।।

२४. इत्यादिक अनेक भेद जांणों, दांन लबद ज्यूं लेजों पिछांणों।
भोग लबद में ओगुण नांही, गुण ओगुण भोगवण रें मांही।।

२५. असणादिक च्यारूं आहार, ते भोग आवें एक वार।
ते उवभोग कह्यों जिणराय, तिण आडी नही छें ताहि।।

२६. वस्त्र गेंहणादिक अनेक प्रकार, ते तो भोग आवें वारूंवार।
ते परिभोग कह्यो जिणराय, तिण आड़ी नही छें ताहि।।

२७. उवभोग लब्द ज्यूं जांणों, परिभोग लबद पिछांणों।
सगलोई कहणों विसतार, लबद सावद्य नहीं छें लिगार।।

२८. पांचमी वीर्य अंतराय, तिणरो खयउपसम थाय।
वीर्य आडी नही छें ताहि, वीर्य लबद परगट हुवें आय।।

२९. तिण लबद नें निरवद जांण, तिण माहे संका मत आंणों।
तिणनें सावद्य कहें तांण तांण, ते तो जिण मारग रा अजांण।।

२१. पुद्गल भोग की इच्छा है। वह अविरति में उसे भोगता है। एक बार भोग योग्य पुद्गल भोगता है, वह सावद्य योग व्यापार है।

२२. पुद्गल भोग की इच्छा है। वह जिन आज्ञा से उसे भोगता है। एक बार भोग-योग्य पुद्गल भोगता है, वह निरवद्य योग व्यापार है।

२३. सावद्य योग से पाप कर्म का बंध होता है तथा निरवद्य योग से निर्जरा होती है। लब्धि से कर्म टूटते या बंधते नहीं हैं। लब्धि निर्जरा धर्म है।

२४. इत्यादि अनेक भेद दान लब्धि की तरह जानें। भोग लब्धि में अवगुण नहीं है। गुण और अवगुण भोगने में हैं।

२५. अशन आदि चार आहार एक बार भोग में आते हैं, उन्हें जिनेश्वर देव ने उपभोग कहा है। उपभोग अन्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर उपभोग की बाधा नहीं रहती।

२६. वस्त्र, गहने आदि अनेक प्रकार की वस्तुएं बार-बार भोग में आती हैं, उन्हें जिनेश्वर देव ने परिभोग कहा है। परिभोगान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर परिभोग की बाधा नहीं रहती।

२७. परिभोग लब्धि को उपभोग लब्धि की तरह जानें। इसका सारा विस्तार उसी की तरह कहें। लब्धि बिल्कुल सावद्य नहीं है।

२८. पांचवां भेद वीर्यान्तराय है। उसका क्षयोपशम होने पर वीर्य की बाधक अन्तराय नहीं रहती। वीर्य लब्धि प्रकट होती है।

२९. इस वीर्य लब्धि को निरवद्य जानें। इसमें जरा भी शंका मत लाओ। जो वीर्य लब्धि को बार-बार खींचातान कर सावद्य कहते हैं। वे जिन मार्ग के अनभिज्ञ हैं।

३०. इण लब्द में ओगुण नांही, लबद तो जिण आगना मांही।
गुण ओगुण किरतब में जांणों, सावद्य निरवद भेद पिछांणो।।

३१. संसार रो किरतब करें जांणों, ते तों सावद्य जोग पिछांणों।
निरवद किरतब करें कोय, तिणरा निरवद जोग छें सोय।।

३२. किरतब नें सावद्य निरवद जाणो, त्यांनें रूड़ी रीत पिछांणो।
सावद्य किरतब प्रतख खोटो, लब्द गुण छे निरंतर मोटो।।

३३. वीर्य लब्द नें किरतब न्यारो, तिणरो बुधवंत जांणें विचारो।
वीर्य लबद रा जतन कीजें, सावद्य किरतब नें त्याग दीजें।।

३४. इत्यादिक अनेक भेद जांणों, दांन लब्द ज्यूं लीज्यो पिछांणो।
वीर्य लबद में ओगुण म जांणों, गुण अवगुण किरतब में पिछांणों।।

३५. कोई कहे बल प्राकम नही हुवें ताय, तो खोटा किरतब केम कराय।
तिणसूं बल प्राकम सावद्य छे भूंडो, इण सूं कर्म बांधे जीव बूडो।।

३६. उसभ उदें एहवी चरचा आंणे, ते बल प्राकम नें सावद्य जांणें।
एहवी उंधी करे बकवाय, इणरों न्याय सुणों चित ल्याय।।

३७. अंतराय रो खयउपसम थाय, बल वीर्य सक्त हुवें ताहि।
ते उजला लेखे निरवद रूडा, त्यांनें सावद्य कहें ते कूडा।।

३८. यां सूं किरतब करें भला भूंडा, भला सूं तिरे भूंडां सूं बूडा।
किरतब नें जोग व्यापार जांणों, सावद्य निरवद री करो पिछांणों।।

३०. इस वीर्य लब्धि में अवगुण नहीं है। लब्धि जिनेश्वर देव की आज्ञा में है। गुण-अवगुण प्रवृत्ति में है। उसके सावद्य-निरवद्य भेदों को पहचानें।

३१. जो सांसारिक प्रवृत्ति करता है, उसकी प्रवृत्ति को सावद्य योग समझें। जो निरवद्य प्रवृत्ति करता है, उसके योग निरवद्य होते हैं।

३२. प्रवृत्ति को ही सावद्य-निरवद्य जानें। उनको अच्छी तरह पहचानें। सावद्य प्रवृत्ति प्रत्यक्षतः बुरी है। लब्धि गुण निरन्तर महान होता है।

३३. वीर्य लब्धि और प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न हैं। बुद्धिमान इसका विचार जानता है। वीर्य लब्धि की रक्षा करें और सावद्य प्रवृत्ति को त्याग दें।

३४. इत्यादि अनेक भेद दान लब्धि की तरह जानें। वीर्य लब्धि में अवगुण न जानें। गुण और अवगुण प्रवृत्ति में पहचानें।

३५. कुछ कहते हैंह्नयदि बल और पराक्रम न हो तो बुरे कार्य कैसे किए जाएं, अतः बल और पराक्रम सावद्य हैं, बुरे हैं। इससे जीव कर्म बांध कर डूबता है।

३६. अशुभ कर्म के उदय से वे ऐसी चर्चा-वार्ता करते हैं तथा बल और पराक्रम को सावद्य जानते हैं। वे ऐसी विपरीत बकवास करते हैं। चित्त लगाकर इसका न्याय सुनें।

३७. जब अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होता है, तब बल, वीर्य और शक्ति निष्पन्न होती है। वे उज्ज्वलता की अपेक्षा से निरवद्य हैं, अच्छे हैं। इन्हें सावद्य कहने वाले मिथ्याभाषी हैं।

३८. जीव बल, वीर्य आदि से अच्छी और बुरी प्रवृत्ति करता है। अच्छी प्रवृत्ति से जीव तरता है तथा बुरी प्रवृत्ति से डूबता है। प्रवृत्ति को योग व्यापार जानें। उसके सावद्य-निरवद्य को पहचानें।

३९. बल वीर्य सकत प्राकम ताह्यों, वीर्य लब्द में सर्व समायो।
अें छता रूप जीव रे मांहि, तिणसूं कर्म तूटें बंधें नांहि।।

४०. धर्मी पुरष छें बलवंत रूडा, करणी करे कर्म करे दूरा।
अधर्मी तो निरबल हुआं रूडों, नही बांधे पाप रा पूरो।।

४१. ते तो बल छें किरतब रूप ताह्यों, सावद्य निरवद जोग में आयों।
जोवों सुतर भगोती रे माह्यों, जेयवंती नें वीर वतायों।।

४२. सावद्य जोग उदें भाव भूंडा, तिणसूं जीव अनंता बूडा।
लबद खयउपसम भाव छें रूडी, ते पांमें छें कर्म हूवां दूरी।।

४३. खयउपसम नें उदे भाव, त्यांरों छें जूदो जूदो सभाव।
खयउपसम नें सावद्य जांणें, ते अग्यांनी थका उंधी तांणें।।

४४. वले वीर्य सकत पिछांणो, ते जीवरा उजल गुण जांणों।
ते गुण जीव सूं नही छें जूआ, पिण शरीर रें प्रजोगें हूआ।।

४५. जेहवा सरीर पुदगल बंधाय, तेहवो बल प्राकम थाय।
बल प्राकम हीणों इधिको होय, ते शरीर काचें पाकें सोय।।

४६. शरीर गाढों हुवे अतंत, जब जीव में बल अनंत।
शरीर पुदगल घट जावें, जब प्राकम हीणों थावें।।

४७. जीव शरीर सूं हूवों न्यारों, जब नही बल प्राकम लिगारो।
जब गयों जीव मुगत रें मांही, तठें बल प्राकम नही कांई।।

३९. बल, वीर्य, शक्ति और पराक्रमह्नये सभी वीर्य लब्धि मे समाहित हो जाते हैं। ये जीव में सत्ता रूप में रहते हैं। उससे कर्म टूटते या बंधते नहीं हैं।

४०. धर्मी पुरुष बलवान होते हैं, अच्छे होते हैं। वे शुभ करणी कर कर्मों को दूर करते हैं। अधर्मी पुरुषों का निर्बल होना अच्छा है, जिससे वे अधर्म कर पाप-समूह का बंध नहीं करते।

४१. यहां जिस बल की बात है, वह करणी रूप बल है। वह सावद्य-निरवद्य योग में आता है। वीर ने श्राविका जयन्ती को यह बात बतलाई है। इसे भगवती सूत्र (श. १२, उ. ३, सू. ५५,५६) में देखें।

४२. सावद्य योग अशुभ औदयिक भाव है, उससे अनन्त जीव डूबे हैं। लब्धि शुभ क्षायोपशमिक भाव है, जो कर्म दूर होने से प्राप्त होती है।

४३. क्षायोपशमिक और औदयिक भाव के स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। जो क्षायोपशमिक भाव को सावद्य जानते हैं, वे अज्ञानतावश उलटी खींचतान करते हैं।

४४. वीर्य और शक्ति को जीव के उज्ज्वल गुण जानें। वे गुण जीव से पृथक् नहीं हैं, किन्तु उनका अस्तित्व शरीर सापेक्ष है।

४५. जैसे शरीर-पुद्गलों का बंध होता है, वैसा ही बल-पराक्रम होता है। बल-पराक्रम हीन अथवा अधिक होता है, वह शरीर के कच्चे-पक्के होने पर निर्भर है।

४६. जब शरीर अत्यन्त मजबूत होता है, तब जीव में अनन्त बल होता है। जब शरीर के पुद्गल घट जाते हैं, तब बल-पराक्रम हीन हो जाता है।

४७. जब जीव शरीर से अलग हो जाता है तब बल-पराक्रम जरा भी नहीं रहता। जब जीव मुक्ति में चला जाता है, तब वहां उसके बल-पराक्रम कुछ नहीं होता।

४८. बल शरीर रें परसंग, जोवो रायप्रसेणी उपंग।
तिणरों कह्यों घणों विसतारों, केसीकुमर मोटा अणगारों।।

४९. भार ले जावें बूढ़ो नें तुरणो, कावर दिष्टंत दे कीयों निरणों।
तुरणा ज्यूं बालक तीर चलायों, तीर कबांण रों मेल्यों न्यायों।।

५०. आहार सिज्जा उपधादिक ज्यांनें, सावद्य निरवद कह्या वीर त्यांनें।
ते किरतब लेखें कह्यां जांणों, तिणनें रूड़ी रीत पिछांणों।।

५१. आहार सिज्जा उपधादिक जेह, ते तो पुदगल दरब छें एह।
ते तों सावद्य निरवद नांही, ते विचार करों मन मांही।।

५२. ज्यूं बल प्राकम वीर्य पिछाणों, सावद्य जोग किरतब सूं जांणों।
माठी बुध मत कही छें ताहि, ते पिण कही छे किरतब रें न्याय।।

५३. बुध मत सूं करें विचारो, ते पिण मन जोग रो व्यापारो।
माठो विचार्‍यो माठो जोग पूरो, आछो विचार्‍यों निरवद जोग रूड़ो।

५४. इत्यादिक बोल अनेक पिछांणो, त्यांनें किरतब लेखें सावद्य जांणों।
पिण खयउपसम भाव छे चोखों, ते निश्चे निरवद निरदोखो।।

४८. बल शरीर के निमित्त से प्रकट होता है। इसके लिए राजप्रश्नीय उपांग द्रष्टव्य है। वहां महान अनगार केशी कुमार ने इस बात को बहुत विस्तार से कहा है।

४९. वृद्ध होने पर वही मनुष्य इतना भार नहीं ढो सकता जितना वह तरुणावस्था में ढो सकता था। कावड़ के दृष्टान्त से केशी कुमार ने बताया है कि यह शरीर रूपी उपकरण का ही अन्तर है। मनुष्य तरुणावस्था में एक साथ जितने बाण छोड़ सकता है उतने वह बाल्यावस्था में नहीं छोड़ सकता। धनुष्य, प्रत्यंचा आदि का दृष्टान्त देकर केशी कुमार ने बताया है कि यह भी शरीर रूपी उपकरण का ही अन्तर है। इस तरह इस दृष्टान्तद्वय से यह दिखाया है कि एक ही जीव की शक्ति शरीर के निमित्त से न्यूनाधिक हो जाती है।

५०. आहार, शय्या, उपाधि आदि को भगवान महावीर ने सावद्य-निरवद्य कहा है। उसे प्रवृत्ति की अपेक्षा से जानें। उसे अच्छी तरह पहचानें।

५१. आहार, शय्या, उपधि आदि पुद्‌गल द्रव्य हैं। वे सावद्य और निरवद्य दोनों नहीं होते। यह चिन्तन अन्तः करण में करें।

५२. इसी तरह बल, पराक्रम और वीर्य को पहचानें। ये प्रवृत्ति से सावद्य योग बनते हैं। अशुभ बुद्धि और मति कही गई है, वह भी प्रवृत्ति की अपेक्षा से कही गई है।

५३. बुद्धि और मति से जीव चिन्तन करता है। वह भी मन योग का व्यापार है। बुरा चिन्तन किया, वह अशुभ योग है तथा अच्छा चिन्तन किया है, वह निरवद्य योग है।

५४. इत्यादि अनेक बोल हैं। उन्हें प्रवृत्ति की अपेक्षा से सावद्य जानें। पर वे क्षायोपशमिक भाव की दृष्टि से अच्छे हैं और वे निश्चय ही निरवद्य और निर्दोष हैं।

५५. बाल वीर्य गुणठाणां च्यार, तिणमें पिण ओगुण नही लिगार।
तिण वीर्य सूं सावद्य रो आगार, तिण आगार सूं हुवे छें विगाढ।।

५६. तिण इविरत सूं पाप लागें, तिणनें माठी जांणे नें त्यागें।
पिण वीर्य लबद छें खयउपसम भावों, ते तो निरजरा गुण छें चावों।।

५७. पिंडत वीर्य नव गुणठांणा मांही, तिणसूं सावद्य न सेवणों कांई।।
सावद्य सेवण रो त्याग्यों आगारो, तिणसूं इविरत न रही लिगारो।।

५८. जब चारित खयउपसम हूओ, ते चारित छें वीर्य सूं जूओ।
तिण चारित सूं पाप रुक जावे, लबद उजल रही थिर भावे।।

५९. बाल पिंडत वीर्य नें पिछांणो, तठें तो पांचमों गुणठांणो।
देस थकी इविरत नें त्यागी, देस थकी हुवो वैरागी।।

६०. इण त्याग सूं पंडित जांणो, इविरत रही सूं बाल पिछांणो।
बाल पिंडत इण लेखें हुओ, वीर्य रो गुण इण सूं जूओ।।

•

५५. बाल वीर्य प्रथम चार गुणस्थानों में पाया जाता है। उसमें भी बिल्कुल अवगुण नहीं है। उस वीर्य से जो सावद्य प्रवृत्ति करने का आगार है, उस आगार से बुराई होती है।

५६. उस अव्रत से पाप लगता है, उसे अशुभ जानकर त्यागें। किन्तु वीर्य लब्धि क्षायोपशमिक भाव है, वह प्रसिद्ध रूप से निर्जरा गुण है।

५७. पंडित वीर्य नौ गुणस्थानों (६ से १४) में पाया जाता है, उससे किंचित् भी सावद्य का सेवन नहीं करना होता है। सावद्य सेवन के आगार का त्याग कर देने से बिल्कुल भी अव्रत नहीं रहता।

५८. (अव्रत का त्याग करने पर) जब क्षायोपशमिक चारित्र होता है। वह चारित्र वीर्य से भिन्न है। उस चारित्र से पाप रुक जाता है। लब्धि (वीर्य) स्थिर भाव से उज्ज्वल रहती है।

५९. जहां बाल पण्डित वीर्य है, वहां पांचवा गुणस्थान होता है। उसमें देशतः अव्रत का त्याग करने से जीव देशतः वैरागी होता है।

६०. इस त्याग से पंडित जानें। अव्रत रहा, उससे बाल पहचानें। इस दृष्टि से जीव बाल पंडित होता है। वीर्य का गुण इससे भिन्न है।

●

दुहा

१. सागार उपीयोग रा, आठ भेद कह्या जिणराय।
पांच ग्यांन तीन अग्यांन छें, ओर भेद नही कोई ताहि।।

२. त्यांमें केवल ग्यांन सारां सिरें, खायक भाव सागार।
ते पामें ग्यांनावर्णी खय हुआं, तिणरो कोई न पांमें पार।।

३. सेख ग्यांन अग्यांन रह्या तेहनें, कहिजें खयउपसम भाव सागार।
ते केवल ग्यांन माहिली वांनगी, त्यांमें अवगुण नही छें लिगार।।

४. च्यार ग्यांन केवल ग्यांन माहिला, ते तों मिल गयों न्याय।
पिण अग्यांन केवल माहे किम मिलें, कोई एहवी पूछा करें आय।।

५. ग्यांन अग्यांन तो एकहीज छें, एकहीज उपीयोग सागार।
ते पामें ग्यांनावर्णी घट्यां, मिटे जीव तणों अंधकार।।

६. समदिष्टि रो ग्यांन जिण कह्यों, मिथ्याती रों कह्यों छें अनांण।
खयउपसम भाव तो निरमलो, दोयां रों बरोबर जांण।।

७. ग्यांन अग्यांन खयउपसम भाव छें, यां में जांणपणा रों गुण जांण।
ओर गुण यांमें एक पावे नही, ते सुणजों चुत्तर सुजांण।।

दोहा

१. जिनेश्वर देव ने साकार उपयोग के आठ भेद कहे हैं-पांच ज्ञान और तीन अज्ञान और उसका अन्य कोई भेद नहीं है।

२. उन आठ भेदों में केवल ज्ञान सर्वोपरि है। वह साकार क्षायिक भाव है। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने से प्राप्त होता है। उस ज्ञान का कोई पार नहीं पा सकता।

३. अवशिष्ट चार ज्ञान और तीन अज्ञान को साकार क्षायोपशमिक भाव कहा जाता है। वे केवल ज्ञान की बानगीह्वनिदर्शन हैं। उनमें जरा भी अवगुण नहीं है।

४. कोई आकर ऐसा प्रश्न करता है कि अवशेष चारों ज्ञान केवल ज्ञान में से ही है। यह तो न्यायसंगत है, पर तीन अज्ञान केवल ज्ञान के अन्तर्गत हैं, यह कैसे संभव है?

५. ज्ञान और अज्ञान एक ही हैं। दोनों ही साकार उपयोग हैं। ज्ञानावरणीय कर्म के घटने से वे प्राप्त होते हैं। उनसे जीव का अंधकार दूर होता है।

६. जिनेश्वर देव ने सम्यग्दृष्टि के साकार उपयोग को ज्ञान और मिथ्यात्वी के साकार उपयोग को अज्ञान कहा है। क्षायोपशमिक भाव दोनों का एक समान निर्मल जानें।

७. ज्ञान और अज्ञान दोनों क्षायोपशमिक भाव हैं इनमें जानने का गुण जानें। इनमें अन्य कोई दूसरा गुण नहीं पाया जाता। चतुर जन! उसे सुनें।

ढाल : ७

(लय : विनरा भाव सुए सुए गूंजे)

१. उंधों सूधों जांणपणों सारों, ग्यांन सूं सर्व राखें धारों।
ए खयउपसम भाव छें चोखों, तिण में कोई म जांणों दोखों।।

२. जिण रीतें धारे समदिष्टी, तिण रीते धारें मिच्छदिष्टी।
यांरी धारणा दोयां री एक, तिण में कोइ नहीं छे वशेष।।

३. धारणा खयउपसम भाव छे आछो, धारणा मति ग्यांन छे साचो।
तिणसूं पाप रुके तूटें नांहीं, वले पाप न लागे कांई।।

४. ऊंधों सूधों जांणपणो सारो, धारयां नहीं दोष लिगारो।
उंधो सरध्यां हुवे घणो विगाडों, जीवरो हुवे बहुत खुवारों।।

५. अधर्म नें धर्म सरधें ताहि, धर्म नें अधर्म सरधाय।
अजीव नें जीव सरधें कोय, जीव नें सरधें अजीव सोय।।

६. कुमारग नें मारग सरधें कोई, मारग नें कुमारग सरधें सोई।
असाध नें सरधें साध, साध नें सरधें असाध।।

७. अमूकांणा नें सरधें मूकांणों, मूकांणो नें सरधें अमूकांणों।
इत्यादिक उंधा बोल सरधाय, तिण सूं जीव मिथ्याती थाय।।

८. दंसण मोह उदे हूवों आय, उंधो सरधवा लागों ताहि।
जब हूवों जीव मिथ्याती, उंधी सरधा रों पखपाती।।

ढाल : सात

१. सही और विपरीत सारी जानकारी जीव ज्ञान से धारण कर रखता है। यह प्रवर क्षायोपशमिक भाव है। उसमें कोई भी दोष न जानें।

२. जिस प्रकार से सम्यग्दृष्टि ज्ञान धारण करता है उसी प्रकार से मिथ्यादृष्टि करता है। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिह्नइन दोनों की धारणा एक होती है। दोनों की धारणा में अन्तर नहीं होता। उनमें किसी को विशेष नहीं कहा जा सकता।

३. धारणा उत्तम क्षायोपशमिक भाव है। धारणा वास्तव में मति ज्ञान है। उससे पाप न रुकते हैं, न टूटते हैं और न उससे कोई पाप लगते हैं।

४. मिथ्या और सम्यक्-सारा ज्ञान धारण करने में बिल्कुल भी दोष नहीं हैं। विपरीत श्रद्धान करने से जीव का बहुत अनिष्ट और विनाश होता है।

५-७. अधर्म को धर्म श्रद्धने से, धर्म को अधर्म श्रद्धने से, अजीव को जीव श्रद्धने से, जीव को अजीव श्रद्धने से, कुमार्ग को मार्ग श्रद्धने से, मार्ग को कुमार्ग श्रद्धने से, असाधु को साधु श्रद्धने से, साधु को असाधु श्रद्धने से, अमुक्त को मुक्त श्रद्धने से, मुक्त को अमुक्त श्रद्धने से, इत्यादि विपरीत बातों में श्रद्धा करने सेह्नजीव मिथ्यात्वी होता है।

८. जब दर्शन मोहनीय कर्म उदय में आता है, तब जीव विपरीत श्रद्धा करने लगता है। उस समय जीव मिथ्यात्वी हो जाता हैह्नविपरीत श्रद्धा का पक्षपाती हो जाता है।

९. साची सरधा भाखी जगनाथ, ते ऊंधा सरध्या आवें मिथ्यात।
ओर उंधों सरधणी आवें, तो झूठ लागें पिण सरधा न जावें।।

१०. मिथ्याती उंधी सरधा सूं वागें, तिण रे क्रिया मिथ्यात री लागें।
ते दंसण मोह उदें भाव जांणों, तिणनें रूडी रीत पिछांणो।।

११. तिणरें खयउपसम भाव अनांण, तिणसूं पाप न लागें आंण।
खयउपसम भाव नें उजल जांणों, मिथ्याती रें छें तिणसूं अनांण।।

१२. ओहीज समदिष्टी रें छें नांणों, खयउपसम भाव दोयां रों एक जांणों।
ग्यांनावरणी रो खयउपसम हुओ, तिणसूं दोयां रों गुण नही जूओ।।

१३. समदिष्टी रें कह्यों छें ग्यांन, मिथ्याती रें कह्यों छें अग्यांन।
तिणसुं समदिष्टी वागो ग्यांनी, मिथ्याती वागो अग्यांनी।।

१४. जिणरी सरधा छें सूध मांन, ते भणीयों पूर्व रो ग्यांन।
एक बोल उंधों सरधें ताहि, जब निश्चें मिथ्याती थाय।।

१५. तिणरो भणीयों पूर्व रो ग्यांन, तिणरा ग्यांन नें कहीजें अग्यांन।
इण ग्यांन में आंगुण नही लिगार, अग्यांन वाज्यों मिथ्यात री लार।।

१६. ओहीज बोल सूधो सरधें ताहि, जब उहीज समदिष्टी थाय।
तिणहीज अग्यांन नें ग्यांन जांणों, समकत लारें ग्यांन कहवांणो।।

९. जिन भगवान ने सच्ची श्रद्धा का निरूपण किया है। उसे विपरीत श्रद्धने से मिथ्यात्व आता है। अन्य बात को विपरीत श्रद्ध लिया जाए तो झूठ का दोष लगता है, पर श्रद्धा नहीं जाती।

१०. विपरीत श्रद्धा से जीव मिथ्यात्वी कहलाता है। उसके मिथ्यात्व की क्रिया लगती है। मिथ्यात्व को दर्शन मोहनीय कर्म का औदयिक भाव जानें। उसे अच्छी तरह पहचानें।

११. मिथ्यात्वी का अज्ञान क्षायोपशमिक भाव है। उससे उसके पाप नहीं लगता। क्षायोपशमिक भाव को उज्ज्वल जानें। क्षयोपशम से उत्पन्न ज्ञान मिथ्यात्वी के है, इसी से उसे अज्ञान कहा गया है।

१२. वही जब सम्यग्दृष्टि के होता है तब वह ज्ञान होता है। दोनों के क्षायोपशिमक भाव को एक जानें। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम दोनों में समान है, इससे ज्ञान और अज्ञान दोनों के गुण भिन्न-भिन्न नहीं हैं।

१३. सम्यक्दृष्टि के ज्ञान कहा गया है और मिथ्यादृष्टि के अज्ञान कहा गया है। इससे सम्यग्दृष्टि ज्ञानी कहलाता है और मिथ्यादृष्टि अज्ञानी।

१४. जिसकी शुद्ध श्रद्धा है, वह पूर्व का ज्ञान सीखता है। वह एक बोल विपरीत श्रद्धने लगता है, तब वह निश्चय ही मिथ्यात्वी हो जाता है।

१५. उस समय उसके पूर्वों के ज्ञान को अज्ञान कहा जाता है। उस ज्ञान में किंचित् भी अवगुण नहीं है, पर मिथ्यात्व के पीछे वह अज्ञान कहलाता है।

१६. उसी बोल को जब वह मिथ्यात्वी पुनः सही श्रद्धान करने लगता है, तब वह मिथ्यात्वी ही सम्यग्दृष्टि हो जाता है। उसके उस अज्ञान को ज्ञान जानें। सम्यक्त्व के पीछे वह ज्ञान कहलाता है।

१७. सावद्य उदें भाव मिथ्यादिष्ट, निरवद खयउपसम भाव समदिष्ट।
सावद्य सूं पाप लागें आय, निरवद सूं पाप कर्म रुकाय।।

१८. ग्यांन अग्यांन तों खयउपसम भाव, जांणवा देखवा रो सभाव।
यांमें तों ओहीज गुण पिछांणो, उजला लेखें निरवद जांणों।।

१९. त्यांसूं कर्म रुकें तूटें नांही, त्यांसूं पाप न लागें काई।
केवल ग्यांन ने दर्शन पिछांणो, त्यां माहिली वांनगी जांणो।।

२०. ग्यांन सागार उपीयोग जांणों, तिणरो वशेष बोध वखांणों।
तिणमें विवरों विचार विगनांन, दर्शण विचें ग्यांन प्रधांन।।

२१. दर्शण उपीयोग छें मणागार, तिणमें नहीं विगनांन विचार।
तिणमें देखण रों गुण छें ताहि, और गुण नही छें तिण माहि।।

२२. दर्शण देखवा रो गुण छें ताहि, ग्यांन विना खबर नही काय।
तिणसूं ग्यांन कह्यों परधांन, दर्शण नें कह्यों सामांन।।

२३. यां री खबर जुदी जुदी पाडो, बुधवंत हीया में विचारों।
मतग्यांन रा अठावीस भेद, ते सुणजो आंण उमेद।।

२४. सुरतइंद्री में शबद पडें आय, मतग्यांन विण खबर न काय।
उग्रह करे विचारें कोय, निरणों कर धारी राखें सोय।।

१७. मिथ्यादृष्टि सावद्य औदयिक भाव है तथा सम्यग्दृष्टि निरवद्य क्षायोपशमिक भाव है। सावद्य से पाप कर्म आकर लगते हैं तथा निरवद्य से पाप कर्म रूकते हैं।

१८. ज्ञान और अज्ञान दोनों क्षायोपशमिक भाव हैं। उनका स्वभाव जानना और देखना है। (ज्ञान से पहले दर्शन होता है अतः यहां 'देखना' कहा गया है) ज्ञान और अज्ञान में यही गुण जानें। उज्ज्वलता की अपेक्षा से इन्हें निरवद्य जानें।

१९. इनसे कर्म रूकते और टूटते नहीं हैं तथा इनसे किंचित् भी पाप नहीं लगता। केवल ज्ञान और दर्शन को पहचानें तथा ये ज्ञान और अज्ञान को उन्हीं के निदर्शन जानें।

२०. ज्ञान साकार उपयोग है। विशेष बोध उसका स्वभाव है। उसमें विवरण, विचार और विज्ञान का समावेश होता है। दर्शन की अपेक्षा ज्ञान प्रधान-विशेष बोधात्मक है।

२१. दर्शन अनाकार उपयोग है, उसमें विज्ञान और विचार नहीं होता। उसमें देखने का गुण है, अन्य कोई गुण नहीं है।

२२. दर्शन देखने का गुण है। ज्ञान के बिना वस्तु का विशेष बोध नहीं होता। उससे ज्ञान को प्रधान-विशेष बोध कहा है और दर्शन को सामान्य बोध।

२३. बुद्धिमान हृदय में विचार कर इनको अलग-अलग समझें। मतिज्ञान के अट्ठाईस भेद हैं। उन्हें उल्लासपूर्वक सुनें।

२४. श्रोत्रेन्द्रिय में शब्द आकर गिरता है। मतिज्ञान के बिना उसका पता नहीं चलता। शब्द को अवग्रह (ग्रहण) कर उस पर विचार (ईहा) किया जाता है। विचार को निर्णायक (अवाय) रूप दे, उसकी धारणा की जाती है। यह मतिज्ञान का क्रम है।

२५. विचारणा निरणो करें सोय, ते तो सावद्य निरवद होय।
ते तों जोग तणों व्यापार, सावद्य निरवद लेजों विचार।

२६. धारणा कर राखें सोय, ते पिण सावद्य निरवद होय।
तिणमें मन जोग रो व्यापार, ते पिण बुधवंत लेजों विचार।।

२७. उग्रह इहां उवाय नें धारें, संसार नें हेत विचारें।
ते सावद्य जोग कह्या जिणराय, माठी बुध मत छें इण न्याय।।

२८. उग्रह इहां अवाय नें धारे, निरजरा हेतें मन में विचारें।
ते निरवद जोग कह्या जिणराय, आछी बुध मत छें इण न्याय।।

२९. बुधरों व्यापार मन जोग जांणों, मन विण नही कठें ठिकांणो।
बुध खयउपसम भाव छें न्यारों, तिणसूं नही सुधारों विगाड़ों।।

३०. इम पांचूं इंद्री नें मन जांणों, उग्रहादिक च्यारू सगलें पिछांणों।
च्यारूं इंद्री ना वंजण च्यार, त्यांमें चखू नें मन कीयों न्यार।

३१. ए मतग्यांन रा भेद अठावीस, सुतर में भाष्या जगदीस।
ते सुणवादिक सूं करें विचार, सावद्य निरवद जोग व्यापार।।

२५. ईहा-विचारणा और अवाय-निर्णय करना ये सावद्य एवं निरवद्य दोनों प्रकार के होते हैं। ये ईहा और अवाय तो योग व्यापार हैं, इन्हें सावद्य एवं निरवद्य दोनों मानें।

२६. धारणा कर रखना भी सावद्य एवं निरवद्य होता है। उसमें मन योग का व्यापार है। बुद्धिमान उसे भी विचारपूर्वक जानें।

२७. अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाह्लजब ये संसार विषयक होते हैं, तब जिनेश्वर ने इन्हें सावद्य योग कहा है। क्योंकि उस समय बुद्धि व मति अशुभ होती है।

२८. अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाह्लजब ये निर्जरा के लिए किए जाते हैं, निर्जरा के लिए मन में विचारे जाते हैं, तब जिनेश्वर ने इन्हें निरवद्य योग कहा है। क्योंकि उस समय बुद्धि व मति शुभ होती है।

२९. बुद्धि के व्यापार को मन योग जानें। मन के बिना बुद्धि का और कोई स्थान नहीं होता। बुद्धि क्षायोपशमिक भाव है, वह योग से पृथक् है। उससे सुधार और विनाश नहीं होता।

३०. पांच इन्द्रिय और मन के साथ अवग्रह आदि चारों बोल पहचानें। चक्षु इन्द्रिय और मन को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों के साथ व्यंजनावग्रह होता है। (अर्थावग्रह पांच इन्द्रिय और मन सभी के साथ होता है।)

३१. तीर्थंकर देव ने सूत्र में मतिज्ञान के अट्ठाईस भेद बताएं हैं। श्रवण आदि से जीव चिन्तन करता है। वह चिन्तनात्मक योग-व्यापार सावद्य और निरवद्य दोनों होता है।

३२. जांण जांण सावद्य करें कोय, तो ही ग्यांन सावद्य नही होय।
ग्यांन खयउपसम भाव छे ताहि, सावद्य किरतब उदें भाव माहि।।

३३. ग्यांन परिज्ञा समदिष्टी रे होय, पिण पचखांण परिज्ञा न कोय।
ते सावद्य कामा करें जांण, तिणसूं पाप कर्म लागें आंण।।

●

३२. ज्ञान से जान बूझकर सावद्य कार्य करने पर भी ज्ञान सावद्य नहीं होता। ज्ञान क्षायोपशमिक भाव है। सावद्य प्रवृत्ति औदयिक भाव में समाहित होती है।

३३. सम्यग्दृष्टि के ज्ञान परिज्ञा होती है किन्तु प्रत्याख्यान परिज्ञा नहीं होती। वह जानकर सावद्य कार्य करता है, उससे पाप कर्म आकर लगते हैं। (ज्ञान परिज्ञा सावद्य नहीं है।)

●

ढाल : ८

(लय : चुतर विचार करे नें देखों)

चुतर विचार करे नें देखों।

१. शब्द रूप गंध रस नें फरस, रूडा उपर आंणें छें रागो रे।
पाडूवा उपर धेषज आंणें, तिणरें पाप कर्म आय लागो रे।।

२. शब्द रूप गंध रस नें फरस, रूडा उपर न आंणें रागों रे।
पाडूआ उपर धेष न आणें, तिणरें पाप रो अंस न लागों रे।।

३. राग धेष आयां विण पाप न लागें, ते बुधवंत करो विचारो रे।
पांच इंद्रयां सूं पाप कदे नहीं लागें, यांमें अवगुण नही लिगारो रे।।

४. इंद्री तो खयउपसम भाव छे चोखों, राग धेष उदें भाव जांणों रे।
ते चारित मोह उदे सूं नीपना, यांनें रूड़ी रीत पिछांणो रे।।

५. सागार नें मणागार उपीयोग, त्यांनें ओलखल्यों घट माह्यों रे।
अनंता पदार्थ जांणें नें देखें, तिणसुं अनंती परजायो रे।।

६. जांणपणा नें सागर उपीयोग जांणो, ओर गुण आंगुण तिणमें नांही रे।
मणागार उपीयोग में देखण रो गुण, ओर गुण अवगुण नही तिण मांही रे।।

७. उपीयोग उपीयोग री परजाय सूं, कर्म रूकें तूटें नांही रे।
वले उपीयोग सूं कर्म न लागें, जोवो द्रव गुण पर्याय मांही रे।।

ढाल : आठ

चतुर मनुष्य विचार करके देखें।

१. जो मनोज्ञ शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श पर राग लाता है और अमनोज्ञ पर द्वेष लाता है, उसके पाप कर्म आकर लगते हैं।

२. जो मनोज्ञ शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श पर राग नहीं लाता है और अमनोज्ञ पर द्वेष नहीं लाता है, उसके अंश मात्र भी पाप नहीं लगता।

३. बुद्धिमान विचार करेंह्नराग-द्वेष आए बिना पाप नहीं लगता। पांच इन्द्रियों में जरा भी अवगुण नहीं है, उनसे कभी भी पाप नहीं लगता।

४. इन्द्रियां प्रवर क्षायोपशमिक भाव हैं तथा राग-द्वेष को औदयिक भाव जानें। ये (राग और द्वेष) चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से निष्पन्न होते हैं। इनको अच्छी तरह पहचानें।

५. साकार और अनाकर उपयोग को अन्तः करण में अच्छी तरह पहचानें। जीव उपयोग से अनन्त पदार्थों को देखता और जानता है, इससे उसके अनन्त पर्याय होते हैं।

६. जानने को (ज्ञान को) साकार उपयोग जानें। उसमें अन्य गुण और अवगुण नहीं है। अनाकार उपयोग में देखने का गुण है। उसमें भी अन्य गुण और अवगुण नहीं है।

७. उपयोग और उपयोग के पर्याय से न कर्म रुकते हैं और न टूटते हैं। तथा उपयोग से कर्म लगते भी नहीं हैं। यह द्रव्य-गुण-पर्याय द्वार में देखें।

८. केइ मांनव कहें उपीयोग सेती, रूकें तूटें छें कर्मो रे।
वले कहें कर्म उपीयोग सूं लागे, ते भूला छें जाबक भर्मो रे।।

९. द्रव गुण पर्जाय दुवार लोकां नें, रूड़ी रीत सीखावे रे।
पिण आपरा बोल्या री समझ पड़े नहीं, तिणसूं गाला रा गोला चलावे रे।।

१०. अनंता पदार्थ जाणें नें देखें, उपीयोग रा ए गुण वतावें रे।
द्रव गुण पर्जाय भिन भिन लोकां नें, रूड़ी रीत सीखावें रे।।

११. वले कहें छें कर्मं रोकें नें तोड़ें, ते तो सागार नें मणागारो रे।
वले कहें कर्म उपीयोग सूं बंधे छें, ओं प्रतख देखों अंधारो रे।।

१२. खयउपसम इंद्रां नें सावद्य सरधें, हाथां सूं लगायों भूजों रे।
आपरी सरधा नें आप अलूजें, जब डाहो कुण मांनसी दूजो रे।।

१३. खयउपसम भाव नें सावद्य सरधें, जब सावद्य खोटो साख्यातो रे।
तिण सावद्य नें आश्व कहिता लाजें, त्यांरी बिगडी सरधा वातो रे।।

१४. सावद्य कह्यों जब आश्व निश्चें, कहि दीयों चोड़े साख्यातो रे।
तो ही सावद्य कहें पिण आश्रव न कहें, कूड़ी टेक झाल्यांरी आ वातो रे।।

१५. जब कहें म्हें खयउपसम भाव तिणनें, उदा सूं कहां सावद्य तांमो रे।
सुध जाब नायां दूसरी ले उठे, तिणनें पाछों कहणों वले आंमो रे।।

८. कुछ मनुष्य कहते हैंह्नउपयोग से कर्म रुकते और टूटते हैं। और कहते हैं कि उपयोग से कर्म लगते हैं। वे बिल्कुल ही भ्रान्त हो गए हैं।

९. वे लोगों को द्रव्य-गुण-पर्याय द्वार अच्छी तरह सिखलाते हैं, किन्तु वे अपने द्वार ही विवेचित तथ्यों को न समझकर व्यर्थ बाते करते हैं।

१०. वे उपयोग का गुण कहते हैं कि अनन्त पदार्थों को जानना और देखना है। द्रव्य, गुण और पर्याय को भिन्न-भिन्न कर वे लोगों को अच्छी तरह सिखलाते हैं।

११. और वे कहते हैं कि कर्म को जो रोकता व तोड़ता है, वह साकार और अनाकार उपयोग है। और यह भी कहते हैं कि उपयोग से कर्म का बंध होता है। यह प्रत्यक्षतः ही उनके अन्तःकरण में अज्ञानांधकार है।

१२. जो क्षायोपशमिक भाव इन्द्रियों को सावद्य मानते हैं, वे अपने ही हाथों दाह लगाते हैं। अपनी श्रद्धा में जब वे स्वयं ही उलझ जाते हैं तब कौन बुद्धिमाल उस श्रद्धा को मानेगा?

१३. वे क्षायोपशमिक भाव को सावद्य मानते हैं। यदि वह सावद्य है तो प्रत्यक्षतः अशुभ आश्रव है। वे उसे सावद्य तो मानते हैं, पर उसे आश्रव कहते हुए लज्जा का अनुभव करते हैं। उनकी श्रद्धा और वार्ता बिगड़ चुकी है।

१४. जब क्षायोपशमिक भाव को सावद्य कह दिया तो उसे निश्चयतः साक्षात् रूप में खुलेआम आश्रव भी कह दिया। ऐसा होने पर भी क्षायोपशमिक भाव को सावद्य कहते हैं, पर आश्रव नहीं कहते हैं। मिथ्या आग्रह रखने वालों की ऐसी बात होती है।

१५. वे कहते हैं कि हम क्षायोपशमिक भाव को उदय की अपेक्षा से सावद्य कहते हैं। इसका उन्हें सही उत्तर न आने से वे दूसरी बात छेड़ते हैं, तब उन्हें पुनः ऐसा कहना चाहिए।

१६. जे थे उदा सूं खयउपसम सावद्य जांणो,
तो पिण सावद्य कह्यो खयउपसम भावो रे।
सावद्य कह्यों तिणनें आश्व कहीजे,
थारें मूढें थे कर दीयों न्यावो रे।।

१७. खयउपसम भाव नें सावद्य कहें पिण, आश्रव कहितां आंणे संको रे।
ते लीधी टेक छूटें नही तिण थी, ते कर्म तणें वस वंका रे।।

१८. आगें आश्व में दोय भाव परुप्या, उदें नें परिणामीक भावो रे।
खयउपसम कह्यां उठे आगली सरधा, तिणसूं खेलें छें खोटा डावो रे।।

१९. जाणें झूठ बोलूं पिण आगली सरधा, उवा पिण कुसले खेमें राखू रे।
तो दोय भाव आश्व माहे दाखूं, तीजों खयउपसम भाव न भाखू रे।।

२०. पिण खयउपसम भाव नें प्रसिद्ध चोडें, सावद्य तों कहि चूकों रे।
सावद्य कह्यों जद आश्व कहि दीयों, तो तीन भाव कहों मांन मूको रे।।

२१. तो पिण तीन भाव आश्रव माहे, मुख सूं कहणी न आवें रे।
इसडी तांण झाले रह्या त्यांनें, किण न्याय करे समझावें रे।।

२२. जों आश्व में तीन भाव नही कहौ, तों खयउपसम नें सावद्य मत भाखों रे।
उदें नें परिणमीक कहे नें, दो आगली सरधा राखो रे।।

१६. आप लोग उदय की अपेक्षा से क्षायोपशमिक भाव को सावद्य समझते हैं, तो भी आप क्षायोपशमिक भाव को सावद्य कहते हैं। जब आपने उसे सावद्य कह दिया तब वह आश्रव हो ही गयाह्णइस तरह आपने अपने मुंह से ही न्याय कर दिया।

१७. वे क्षायोपशमिक भाव को सावद्य कहते हैं किन्तु उसे आश्रव कहने में उन्हें संकोच-भय का अनुभव होता है। यह कर्मोदय के कारण ही उनमें वक्रता है, जिसके कारण से इस दुराग्रह को छोड़ नहीं पा रहे हैं।

१८. पहले आश्रव में दो भाव निरूपित किए हैंह्णऔदयिक और पारिणामिक। आश्रव में क्षायोपशमिक भाव कहने से उनकी यह श्रद्धा नष्ट हो जाती है अतः वे यह मिथ्या दांव खेलते हैं। (वस्तुतः सावद्य को आश्रव मानना ही चाहिए, पर ऐसा मानना आश्रव की द्विभावात्मक मान्यता के लिए घातक हो जाता है। यह उनकी दुविधा है।)

१९. वे जानते हैं कि हम सावद्य को आश्रव न मानकर झूठ बोल रहे हैं, पर मन में यह विचार है कि द्विभावात्मक आश्रव की मान्यता को कुशलक्षेम रखना है। इस दृष्टि से वे आश्रव में दो भाव बतलाते हैं तथा तीसरे क्षायोपशमिक भाव को नहीं बतलाते हैं। (वास्तव में उनकी मान्यतानुसार आश्रव में तीन भाव होने चाहिए।)

२०. उन्होंने क्षायोपशमिक भाव को खुले आम स्पष्ट रूप से सावद्य तो कह ही दिया है और जब सावद्य कह दिया है तब आश्रव तो कह ही दिया है। तो फिर अभिमान को छोड़कर आश्रव को तीन भाव कहना चाहिए।

२१. इतना होने पर भी उनसे आश्रव में तीन भाव मुख से नहीं कहा जाता है। इस तरह का आग्रह जिन्होंने पकड़ रखा है उन्हें किस न्याय से समझाया जाए?

२२. यदि तुम आश्रव को तीन भाव नहीं कहते हो तो क्षायोपशमिक भाव को भी सावद्य मत कहो। आश्रव को औदयिक और पारिणामिक भाव कहकर अपनी पूर्व श्रद्धा को समीचीन बनाए रखो।

२३. इणविध चरचा में बंध कीधां, जाब नायां बोलें कूरो रे।
वले अकबक करनें उंधों बोलें, वले क्रोध करे भागें दूरो रे।।

२४. कोई गेंहलो कहें म्हारी मा वाझरी छें, ते चोडें कहूं नही छांनें रे।
मो पूत तणी मा बांछड़ी निश्चें, एहवी बातडा हो कुण मानें रे।।

२५. ज्यूं कोइ खयउपसम नें कहें सावद्य, पिण सावद्य नें आश्रव कहे नांही रे।
म्हारी मा नें वले बांझडी छें तिम, एहवो अंधारो छें तिण मांही रे।।

२६. केई मांनव पांचूं इंदर्‌यां नें, सावद्य कहें छें लोकां नें रे।
कूडा कूडा कुहेत लगाए, चोडें कहें नही छें छांनें रे।।

२७. सुरतइंद्री नों सभाव छें एहवों, भला नें भूंडा शब्द सुणायों रे।
ओर गुण आंगुण नही सुरतइंद्री में, तिणमें संका म जांणों कोयों रे।।

२८. भला भला शब्द सुणेनें राग आणें, धेष आणें शब्द सुणे भूंडा रे।
ए प्रतष आंगुण राग धेष में, त्यांसूं पाप कर्म बांधें बूडा रे।।

२९. चखूइंद्रीनों सभाव छें एहवों, भला भूंडा रूप देखें रे।
ओर गुण आंगुण नही चखूइंद्री में, बुधवंत ग्यांन सूं इम पेखें रे।।

३०. भला भला रूप देखनें राग आंणें, भूडा देखनें आंणे धेखों रे।
ए प्रतख आंगुण राग धेष में, चखूइंद्रीनों कांई नही लेखों रे।।

२३. इस तरह चर्चा में उन्हें बद्ध करने पर जबाब नहीं मिलता है और वे मिथ्या प्रलाप करने लगते हैं। वे क्रोधावेश में आकर विपरीत बोलने लगते हैं तथा वे क्रोध करते हुए दूर भाग खड़े होते हैं।

२४. कोई पागल कहता है-मेरी मां बांझ है। यह बात मैं खुले रूप में कहता हूँ, प्रच्छन्न रूप में नहीं। मुझ पुत्र की मां निश्चय ही बांझ हैह्रऐसी बात को कौन चतुर मानेगा?

२५. ऐसे ही कोई क्षायोपशमिक भाव को सावद्य कहता है पर सावद्य को आश्रव नहीं कहता है तो 'मेरी मां है, पर बांझ है' ऐसा कहने वाले की तरह इसमें पूरा अज्ञानान्धकार है।

२६. कई मनुष्य पांच इंद्रियों को लोगों को सावद्य बतलाते हैं। इसके लिए वे मिथ्या कुहेतुओं का प्रयोग करते हैं। ऐसा वे प्रच्छन्न रूप में नहीं बल्कि खुले रूप में कहते हैं।

२७. श्रोत्रेन्द्रिय का स्वभाव ऐसा है कि उससे अच्छे और बुरे शब्द सुने जाते हैं। श्रोत्रेन्द्रिय में अन्य गुण और अवगुण नहीं हैं। इसमें जरा भी शंका न जानें।

२८. जीव अच्छे-अच्छे शब्दों को सुनकर राग लाता है और बुरे शब्दों को सुनकर द्वेष लाता है। अवगुण प्रत्यक्षतः इस राग और द्वेष में है। उससे पाप कर्म बांधकर जीव डूबते हैं।

२९. चक्षु इन्द्रिय का स्वभाव ऐसा है कि उससे जीव अच्छे और बुरे रूप देखता है। चक्षु इन्द्रिय में अन्य गुण और अवगुण नहीं हैं। बुद्धिमान ज्ञान से इस प्रकार देखते हैं।

३०. जीव अच्छे-अच्छे रूपों को देखकर राग लाता है और बुरे रूपों को देखकर द्वेष लाता है। अवगुण प्रत्यक्षतः इस राग और द्वेष में है। चक्षु इन्द्रिय का इससे कोई संबंध नहीं है।

३१. घणइंद्री नो सभाव छें एहवों, भला नें भूंडा गंध वेदायों रे।
ओर गुण अवगुण नही घणइंद्री में, सुधी समझ पारों इण न्यायो रे।।

३२. भला भला गंध उपर राग आंणें, भूंडा गंध उपर धेष आंणै रे।
ए प्रतख ओगुण राग धेष में, घणइंद्री में अवगुण भोला जांणे रे।।

३३. रसइंद्री नो सभाव छें एहवों, भला भूडा वेदें रस सवादो रे।
ओर गुण ओगुण नही रसइंद्री में, इण सूं मूल नही विषवादो रे।।

३४. भला भला रस उपर राग आंणें, भूंडा रस उपर धेष आणें रे।
ए प्रतख आंगुण राग धेष में, रसइंद्री में ओगुण भोला जांणें रे।।

३५. फरसइंद्री नों सभाव छें एहवों, भला भूडा फरस वेदायो रे।
ओर गुण अवगुण नही फरस इंद्री में, इणनें ओलखल्यों इण न्यायो रे।।

३६. भला फरस उपर राग आंणें, भूंडा फरस उपर आंणें धेषो रे।
ए प्रतख अवगुण राग धेष में, फरसइंद्री नो नही कांई लेखो रे।।

३७. राग धेष में अवगुण दीसें उघाडों, पिण इंद्री में अवगुण नांही रे।
यांरी गुण परजाय छें न्यारी न्यारी, विचार देखों मन माही रे।।

३८. इसडा कोइ कहे छें आंगुण सुरतइंद्री में, सबद सुणीयां राग धेष आयो रे।
इसड़ा इसडा कूडा कुहेत लगाए, सुरतइंद्री नें सावद्य कहें ताह्यो रे।।

३१. घ्राणेन्द्रिय का स्वभाव ऐसा है कि उससे अच्छी और बुरी गंध का वेदन किया जाता है। घ्राणेन्द्रिय में अन्य गुण और अवगुण नहीं हैं। इस न्याय से सही समझ को प्राप्त करना चाहिए।

३२. जीव अच्छे-अच्छे गंध पर राग लाता है और बुरे गंध पर द्वेष लाता है। अवगुण प्रत्यक्षतः इस राग और द्वेष में है। भोले लोग घाणेन्द्रिय में अवगुण समझते हैं।

३३. रसनेन्द्रिय का स्वभाव ऐसा है कि वह अच्छे और बुरे रसों-स्वादों का वेदन करती है। रसनेन्द्रिय में अन्य गुण और अवगुण नहीं हैं। इससे जरा भी विसंवाद नहीं है।

३४. जीव अच्छे-अच्छे रसों पर राग लाता है और बुरे रसों पर द्वेष लाता है। अवगुण प्रत्यछतः इस राग और द्वेष में है। भोले लोग रसनेन्द्रिय में अवगुण समझते हैं।

३५. स्पर्शनेन्द्रिय का स्वभाव ऐसा है कि वह अच्छे और बुरे स्पर्शों का वेदन करती है। स्पर्शनेन्द्रिय में अन्य गुण और अवगुण नहीं हैं। इसे इस न्याय से पहचानें।

३६. अच्छे स्पर्श पर जीव राग लाता है और बुरे स्पर्श पर द्वेष लाता है। अवगुण प्रत्यक्षतः इस राग और द्वेष में है। स्पर्शनेन्द्रिय का इससे कोई संबध नहीं है।

३७. राग और द्वेष में अवगुण प्रत्यक्षतः दिखाई देता है, किन्तु इन्द्रियों में अवगुण नहीं होता। इनके गुण और पर्याय अलग-अलग हैं। मन में विचार कर इसे देखें।

३८. कोई कहता है-श्रोत्रेन्द्रिय में अवगुण है क्योंकि शब्द सुनने से ही राग-द्वेष आता है। इस तरह के मिथ्या कुहेतु लगाकर वे श्रोत्रेन्द्रिय को सावद्य कहते हैं।

३९. इसड़ा कूडा कुहेत सुणेनें, सुरतइंद्री नें सावद्य जांणें रे।
हिवें तिणरों जाब सुणे भव जीवां, मन में आंण ठिकांणो रे।।

४०. किण ही ठांमें पुरष अनेक बेंठा था, त्यां सबद सुण्यों विषेंकारी रे।
के कां रें तो शब्द गराज न आयों, त्यारें गुण अवगुण न हूवों लिगारी रे।।

४१. के कां तो शब्द नें जथातथ जांण्यों, ते निरवद जोग व्यापारो रे।
के कां रे शब्द सुणे वेंराग उपनों, त्यांनें संसार लागो खारो रे।।

४२. केइक तो सुब्द सुणनें रीझ्या, त्यांरो तो सावद्य जोग छें भूंडो रे।
के कां रे शब्द सुणनें धेष आयो, ते पिण सावद्य जोग सूं बूडा रे।।

४३. सुणवों तों सगलां रो जांणो सरीखों, सुरतइंद्री नों ओहीज सभावों रे।
शेष उदें खयउपसम भाव नीपना, ते सुणजों जथातथ न्यावो रे।।

४४. सबद सुण्यों पिण गराज न आयो, ते पिण सुरतइंद्री नो सभाव जांणो रे।
जथातथ जाण्यो तिण विचार करे नें, ग्यांन दूजो निरवद जोग पिछांणो रे।।

४५. जथातथ जांण्यों ते गिनांन में आयों, विचार्‌यों ते निरवद जोग माही रे।
अें दोनूंई परजाय निरवद जांणों, ते तो सुरतइंद्री नो गुण नांही रे।।

४६. वैराग भाव उपनों तिण रें, चारित मोहणी खयउपसम हूओ रे।
ओ पिण सुरतइंद्री नों गुण छें नांही, वेराग भाव इण सूं जूओ रे।।

४७. राग नें धेष आयों छें त्यारें, पाप कर्म बंधाणा भारी रे।
ते पिण अवगुण नही छें सुरतइंद्री में, ते बुधवंत करजों विचारी रे।।

३९. ऐसे मिथ्या कुहेतुओं को सुनकर कई श्रोत्रेन्द्रिय को सावद्य समझने लगते हैं। अब भव्य जीव इसका उत्तर सुनकर मन को सही स्थान-सत्यान्वेषण में नियोजित करें।

४०. किसी स्थान पर अनेक पुरुष बैठे हुए थे। वहां उन्होंने विषयकारी शब्द सुना। कइयों के तो शब्द पकड़ में ही नहीं आया। उनके गुण और अवगुण कुछ नहीं हुआ।

४१. कइयों ने शब्दों को यथातथ्य रूप में जाना। यह निरवद्य योग का व्यापार है। कइयों के शब्दों को सुनने से वैराग्य उत्पन्न हुआ, उन्हें संसार अप्रिय लगने लगा।

४२. कई शब्द सुनकर रीझ गएह्नमुग्ध हो गए। उनके अशुभ सावद्य योग हुए। कइयों के शब्द सुनकर द्वेष आया। वे भी सावद्य योग से डूब गए।

४३. सुनना सबका एक समान जानें, क्योंकि श्रोत्रेन्द्रिय का यही स्वभाव है। सुनने के बाद औदयिक और क्षायोपशमिक भाव निष्पन्न हुए, उनका यथातथ्य न्याय सुनें।

४४. शब्द सुनने पर भी पकड़ में नहीं आया, इसे भी श्रोत्रेन्द्रिय का स्वभाव जानें। सुनने पर विचार कर उसने यथातथ्य जानाह्नइसे दूसरा ज्ञान (श्रुतज्ञान) तथा निरवद्य योग पहचानें।

४५. यथातथ्य जाना वह ज्ञान में आया। विचार किया वह निरवद्य योग में आया। इन दोनों ही पर्यायों को निरवद्य जानें। ये श्रोत्रेन्द्रिय के गुण नहीं हैं।

४६. जिसके वैराग्य उत्पन्न हुआ उसके चारित्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम हुआ। यह भी श्रोत्रेन्द्रिय का गुण नहीं है। वैराग्य भाव श्रोत्रेन्द्रिय से भिन्न है।

४७. सुनने के बाद जिनके राग और द्वेष आया उनके भारी कर्मों का बंध हुआ। ये भी श्रोत्रेन्द्रिय के अवगुण नहीं हैं। बुद्धिमान लोग इस पर विचार करें।

४८. राग नें धेष आया ते मोह उदें सूं, ते सुरतइंद्री नी नही परजायो रे।
ते राग धेष तणी परजाय छें, ते सुरतइंद्री में केम समायो रे।।

४९. राग नें धेष तणा परिणाम, वले वीतराग परिणांमो रे।
अें पिण परिणाम जूआ जूआ छें, त्यांरा जूआ जूआ छें नांमो रे।।

५०. एहवा भला भूंडा परिणांम वरतें छें, ते गुण अवगुण छें यां मांही रे।
ते पिण सावद्य जोग वरत्यां छें, ते तो सुरतइंद्री में नांही रे।।

५१. सुरतइंद्री सूं सबद साथे लगों सुणीयों, घणा मिनखां रें व्रंदो रे।
तिण कालें तों सम रह्या सारा, कोई न पर्‌यों विषे रे फंदो रे।।

५२. हिवे के कां रे अंतर मोहरत माहे, परिणाम माठा आया रे।
के कां रे मोहरत दोय मोहरत पाछें, त्यां पिण माठा परिणाम चलाया रे।।

५३. इम पोहर दो पोहर दिवस पख मास, तथा वरस छ मास रे मांही रे।
राग आवें तिण शबद रें उपर, ते सुरतइंद्री में अवगुण नांही रे।।

५४. सुरतइंद्री सूं शब्द सांभल लीधों, ते तों बीत गयों तिण कालो रे।
हिवें तो शब्द ग्यांन सूं याद आयों छें, मोह उदें सूं हूवों मतवालो रे।।

५५. ग्यांन सूं याद आयां विषें सेवा लागो, उणरें लेखें सावद्य ग्यांनो रे।
जो याद न आवें तों विषें न सेवत, आ सरधा क्यूं नही मांनो रे।।

५६. जो शब्द सुण्यां सूं राग उपनों, सुरत इंद्री सावद्य होय जायो रे।
ज्यूं ग्यांन सूं याद आयां राग आवें, तो ग्यांन सावद्य क्यूं नही थायो रे।।

४८. राग और द्वेष मोहनीय कर्म के उदय से आए। ये राग और द्वेष श्रोत्रेन्द्रिय के पर्याय नहीं हैं। जो राग-द्वेषात्मक पर्याय है, वह श्रोत्रेन्द्रिय में कैसे समाएगी?

४९. राग और द्वेष के परिणाम तथा वीतराग परिणामह्नये सब परिणाम अलग-अलग हैं। उनके भिन्न-भिन्न नाम हैं।

५०. ऐसे जो भले और बुरे परिणाम प्रवर्तित होते हैं, इनमें ही वे गुण और अवगुण होते हैं। सावद्य योग की प्रवृत्ति से जो अवगुण उत्पन्न होते हैं, वे श्रोत्रेन्द्रिय में नहीं हैं।

५१. बहुत मनुष्यों के समूह ने श्रोत्रेन्द्रिय से एक साथ शब्द सुने। उस समय तो सारे मनुष्य समचित्त रहे, कोई भी मनुष्य विषय के फंद मेंह्नराग-द्वेष में नहीं गिरा।

५२. अब कइयों के अन्तर्मुहूर्त्त में अशुभ परिणाम उत्पन्न हुए। कइयों के एक मुहूर्त्त-दो मुहर्त्त पश्चात् अशुभ परिणाम आए। उन्होंने भी बुरे परिणाम का प्रवर्तन किया।

५३. इसी तरह प्रहर, दो प्रहर, दिवस, पक्ष, मास तथा वर्ष और छः मास के अन्तराल में उस शब्द पर राग भाव आता है। यह श्रोत्रेन्द्रिय का अवगुण नहीं है।

५४. श्रोत्रेन्द्रिय से शब्द सुना, वह उसी काल में पूरा हो गया। अब तो वह शब्द ज्ञान से याद आया है और मोह कर्म उदय से जीव उन्मत्त बना है।

५५. ज्ञान से शब्द याद आने पर जीव विषय-सेवन करने लगा। तब उसके हिसाब से ज्ञान सावद्य होगा। क्योंकि यदि शब्द याद न आता तो जीव विषय का सेवन नहीं करता। फिर इस श्रद्धा को क्यों नहीं मानते?

५६. यदि शब्द सुनने से राग उत्पन्न होने के कारण श्रोत्रेन्द्रिय सावद्य होती है तो ज्ञान से याद आने पर राग उत्पन्न होता है तो फिर ज्ञान सावद्य क्यों नहीं होता ?

५७. सूरतइंद्री नें ग्यांन तो सावद्य नांही, सावद्य तों राग धेष रो चालो रे।
तांणातांण छोडों भव जीवां, श्री जिण वचन संभालो रे।।

५८. भूंडा भूंडा शब्द सुणीयां धेष आवें, राग ज्यूं सगलोंई कहणो रे।
रागरी ठोड तों धेष नें कहणों, रूडी रीत विचारी लेंणों रे।।

५९. कोई कहें छें अवगुण चखूइंद्री में, रूप दीठां राग धेष आवे रे।
इसडा कूडा कूडा कुहेत लगाए, चखूइंद्री नें सावद्य वतावें रे।।

६०. वले कहें जीव दीठों आंख्या थी, जब कीधी जीवरी घातो रे।
जों नही देखे तो क्यांनें हणतों, इण लेखें आंख्यां सावद्य साख्यातो रे।।

६१. इत्यादिक अनेक करें छें अकार्य, जो कीधा छें आंख्यां सूं देखो रे।
ते सर्व अवगुण छें चखूइंद्री नों, इसरो वतावें छें लेखो रे।।

६२. इण लेखें म्हें चखू नें सावद्य कहां छां, चखू माहे छें मोटो दोखो रे।
ग्यांन रों जांणपणों छें निरवद, तिणसूं ओं उपीयोग छें चोखो रे।।

६३. इत्यादिक कूड़ा कूडा कुहेत सुणे नें, कोई चखूइंद्री नें सावद्य जांणें रे।
हिवें तिणरों जाब सुणों भवजीवां, मन नें आंण ठिकांणें रे।।

६४. किण ही ठामें पुरष अनेक बेंठा था, त्यां रूप दीठों विषेंकारी रे।
के कांरे रूप गराज न आयों, त्यारें गुण अवगुण न हूवों लिगारी रे।।

६५. सुरतइंद्री नों विसतार कह्यों तिम, चखूइंद्री नों पिण जांणो रे।
उठें शब्द कह्यों अठें रूप नें कहिणों, ते पिण रूड़ी रीत पिछांणो रे।।

५७. श्रोत्रेन्द्रिय और ज्ञान सावद्य नहीं हैं। सावद्य तो राग-द्वेष की प्रवृत्ति है। श्री जिनेश्वर देव के वचनों को सुनकर भव्य जीवों! खींचातान को छोड़ो।

५८. बुरे-बुरे शब्दों को सुनने से द्वेष आता है। यहां राग की तरह ही सब कहना चाहिए। राग के स्थान पर द्वेष को कहकर अच्छी तरह विचार लेना चाहिए।

५९. कोई कहते हैंह्नअवगुण चक्षु इंद्रिय में ही है क्योंकि आँखों से रूप दिखने पर ही राग-द्वेष आता है। ऐसे मिथ्या कुहेतु लगाकर चक्षु इन्द्रिय को सावद्य बताते हैं।

६०. और कहते हैंह्नजीव आँखों से दिखाई दिया तभी जीव की घात-हिंसा की। यदि वह नहीं देखता तो भला क्यों घात करता ? इस हिसाब से आँखें साक्षात् सावद्य हैं।

६१. जो ऐसे अनेक अकार्य करता है। आखों से देखकर जीव ने ये अकार्य किए हैं। यह सब चक्षु इन्द्रिय का ही अवगुण-दोष है। वे इस तरह का लेखा-जोखा बताते हैं।

६२. वे कहते हैंह्नहम इस अपेक्षा से चक्षु को सावद्य कहते हैं। चक्षु में महान दोष है। ज्ञान द्वारा जानना निरवद्य है, अतः ज्ञानोपयोग अच्छा है।

६३. ऐसे मिथ्या कुहेतुओं को सुनकर कोई चक्षु इन्द्रिय को सावद्य जानता है। भव्य जीवों अब मन को सुस्थिर कर उसका उत्तर सुनें।

६४. किसी स्थान पर अनेक पुरुष बैठे हुए थे। वहां उन्होंने विषय उत्पन्न करने वाला रूप देखा। कइयों के तो वह रूप ग्राह्य ही नहीं हुआ, अतः उनके कुछ भी गुण और अवगुण उत्पन्न नहीं हुआ।

६५. जिस तरह श्रोत्रेन्द्रिय का विस्तार कहा है उसी तरह चक्षु इन्द्रिय का भी जानें। वहां शब्द कहा है, यहां उसके स्थान पर रूप कहना चाहिए। उसे भी अच्छी तरह पहचानें।

६६. वले चखू इंद्री नों विसतार कहूं छूं, ते सांमल जों चित्त ल्यायो रे।
कोई चखू दर्शन नें सावद्य म जांणों, तिणरो न्याय धारों मन मांह्यों रे।।

६७. चखू सुं देखनें करें सावद्य कांमो, जो चखू सावद्य होय जायो रे।
तो ग्यांन सूं जाण करें सावद्य कांमा, ते ग्यांन सावद्य क्यूं न थायो रे।।

६८. आंधे पुरष बेटा नें मोटों हूवों जाण्यों, तिण जाण्यौ तों पूत परणायों रे।
जो नही जाणतों तों नही परणावत, उणरें लेखें सावद्य ग्यांन थायो रे।।

६९. ग्यांन सूं जांणनें श्रावक खेती करे छें, सूर नेदाणादिक करावें रे।
ते जांणें म्हांरें धान इण विध होसी, उणरें लेखें सावद्य ग्यांन थावें रे।।

७०. कोई श्रावक सामायक कर बेंठों, तिणनें थेली भूली आद आइ रे।
याद आई तो परिणांम चलीया, उठ चाल्यौ भांगे समाइ रे।।

७१. जीव देख्यों तों हिंस्या जीवरी कीधी, थेंली जांणी तो भांगी समाई रे।
जो देखवो सावद्य तों जांणवों सावद्य, तिणमें कांई घालो घुचलाई रे।।

७२. केई समदिष्टी जांणनें करावें, गढ कोट किलादिक भारी रे।
हाट हवेली मेंहलादि करावें, नही जांणे तों न करें लिगारी रे।।

७३. जांण जांण नें एहवा कांमा करे छें, तो ही ग्यांन नें नही कहो छों भूंडो रे।
देखेंनें करें छें सावद्य कामा, तों दर्शण नें सावद्य कहि कांय बूडो रे।।

७४. कोई ग्यान सूं जाण नें संचो करें छें, गुल तेलादिक धन धांनो रे।
वले विवध प्रकार नों संचों करें तोही, सावद्य नही कहें ग्यांनो रे।।

६६. अब मैं चक्षु इन्द्रिय के विषय में विस्तार से कहता हूं। चित्त लगाकर उसे सुनें। कोई भी चक्षु दर्शन को सावद्य न जानें। मन में इसका न्याय धारण करें।

६७. यदि चक्षु से देखकर सावद्य कार्य करने से चक्षु सावद्य हो जाता है तो ज्ञान से जानकर सावद्य काम करने से ज्ञान सावद्य क्यों नहीं होगा ?

६८. अंधे पुरूष ने यह जाना कि उसका पुत्र बड़ा-विवाह योग्य हो गया है। यह जानने से उसने उसका विवाह किया। यदि वह ज्ञान से नहीं जानता तो वह उसका विवाह भी नहीं करता। उसके हिसाब से ज्ञान सावद्य हो गया।

६९. ज्ञान से ही जानकर श्रावक खेती करता है, सूड़-निराई आदिक करवाता है। वह जानता है कि मेरे इस विधि से धान उत्पन्न होगा। तब उसके हिसाब से ज्ञान सावद्य हो जाता है।

७०. कोई श्रावक सामायिक कर बैठा था। उसे याद आया कि वह थैली भूल गया है। यह याद आने पर उसके परिणाम चलित हो गए। सामायिक को भंग कर वह चल पड़ा।

७१. जीव देखा तब जीव की हिंसा की। थैली छूट गयी जानी तभी सामायिक भंग की। यदि देखना सावद्य है तो जानना भी सावद्य है। इसमें दांव-पेंच क्यों डालते हो?

७२. कई सम्यग्दृष्टि पुरुष ज्ञान से जानकर बड़े-बड़े गढ़, कोट, किले, हाट, हवेली, महल आदि करवाते हैं। यदि वे नहीं जानते तो बिल्कुल नहीं कराते।

७३. जान बूझकर ऐसे सावद्य कार्य करने पर भी यदि वे ज्ञान को बुरा नहीं कहते तो फिर यदि कोई देखकर सावद्य कार्य करता है तो दर्शन को सावद्य कहकर क्यों डूबते हो?

७४. कोई ज्ञान से जानकर गुड़-तेलादिक, धन-धान्य का संचय करता है तथा अन्य विविध प्रकार का संचय करता है तो भी वे ज्ञान को सावद्य नहीं कहते।

७५. तो दर्शण सूं देखनें करें संचों, तो दर्शन सावद्य कांय जांणों रे।
जांणे नें देखनें कीयां सावद्य कांमा, दोयां री एक रीत पिछांणो रे।।

७६. समदिष्टी न्यातीलादिक नें मूआ जांण्या, बिगड्या जाण्यां कांम अनेको रे।
तिण जांण्यां सूं आरतध्यांन ध्यावा लागों, ग्यांन में दोष न कहों एकों रे।।

७७. तो अेंहीज कामा देखतां विगड्यां,
जब पिण ध्यायो आरत ध्यांनों रे।
जों देखनें कीधां दर्शण सावद्य कहों छों,
तो जांणे कीधां सावद्य हूवों ग्यांनो रे।।

७८. समदिष्टी घर में धन गडीयों जांणें, ओर माल मूलक वले ताह्यों रे।
जब याद आवें जब मन माहे मूर्छे, नही जांणें तों नही मूरछायों रे।।

७९. ग्यांन सूं जांण्यां तों मूर्छा आई, जब ग्यांन नें निरवद जांणों रे।
तेहीज सारा निजरां देख मूर्छै, जब उलटी कांय ताणों रे।।

८०. जांण नें सावद्य कीयां ग्यांन छे निरवद, देखे सावद्य कीयां दर्शन चोखों रे।
अवगुण उदेंभाव किरतब में छें, दोनूं उपीयोग छें निरदोषो रे।।

८१. काम भोग जथातथ ग्यांन सूं जांणें, त्यांनें भोगवे जांण पिछांणो रे।।
जो नहीं जांणें तो नही भोगवतों, जब थें ग्यांन नें निरवद जांणो रे।।

७५. तो फिर दर्शन से देखकर कोई संचय करता है तो दर्शन को सावद्य क्यों समझते हो? जानकर सावद्य कार्य करे अथवा देखकर करेह्नदोनों की एक ही रीति पहचानें।

७६. सम्यग्दृष्टि ने किसी ज्ञाति आदि के मरने की बात जानी और उसके मरने से अनेक कार्यों के बिगड़ने की बात जानी। यह जानने से वह आर्त्त ध्यान करने लगा। फिर भी वे ज्ञान में एक भी दोष नहीं कहते।

७७. ये ही कार्य जब देखते हुये बिगड़ते हैं तब भी वह आर्त्त ध्यान करने लगता है। यदि देखकर सावद्य कार्य करने से दर्शन को सावद्य कहते हो तो जानकर करने से ज्ञान भी सावद्य हुआ।

७८. सम्यग्दृष्टि जानता हैह्नघर में धन गडा हुआ है और माल-मिलकियत भी प्रचुर है। यह याद आने पर वह मन में मूर्च्छा लाता है। यदि नहीं जानता तो वह मूर्च्छा नहीं करता।

७९. ज्ञान से जानने पर मूर्च्छा आई तब भी ज्ञान को निरवद्य जानते हो। उन्हीं सबको आँखों से देख यदि कोई गृद्ध हो तो (दर्शन को सावद्य कहकर) उलटी खींचतान क्यों करते हो?

८०. जानकर सावद्य कार्य करने पर भी ज्ञान निरवद्य है, वैसे ही देखकर सावद्य कार्य करने पर दर्शन निरवद्य होता है। अवगुण औदयिक भाव जनित प्रवृत्ति में है। ज्ञान और दर्शन-दोनों उपयोग निर्दोष हैं।

८१. काम और भोग को ज्ञान से यथातथ्य जानता है। उन्हें जान-पहचान कर भोग करता है। यदि जीव नहीं जानता तो भोग भी नहीं करता। ऐसा होते हुए भी ज्ञान को निरवद्य जानते हो।

८२. तो चखू देखनें भोग भोगवें, जब चखू नें सावद्य कांय भाखो रे।
एक जांण भोगवे एक देख भोगवें, दोयां नें सरीखा क्यूं न दाखो रे।।

८३. धन भूलो ते समदिष्टी नें याद आयो, तिणसुं कीधा उदंगल अनेको रे।
याद नही आवे तों नही करत उदंगल, जद ग्यांन कहो निरदोषो रे।।

८४. तो चखू सूं देखनें करे उदंगल, ते चषू नें सावद्य कांय भाखो रे।
जो जांण कीयां ग्यांन सावद्य हुवें तों, देख कीयां चखू सावद्य दाखो रे।।

८५. माठी वस्त अजांण्यां खाधी, जांण्यों जब मन हूवो भूंडो रे।
तिणरे मन भूंडो वरत्यां पाप बंधांणों, ते किस्या उपीयोग सूं बूडो रे।।

८६. देख खाधों जब मन भूंडों न वरत्यों, जांण्यों जब मन वरत्यो भूंडों रे।
तिण जाणपणा नें निरवद जाणों, तो चखू सावद्य कहे कांय बूडो रे।।

८७. चास वटाउ देखनें पीधी, पछे सुणनें जाण्यो जहर पीधो रे।
जांण्यों जब धसको पड्यों त्यारें, पाप कर्म बांधें काल कीधो रे।।

८८. वटाउ मूआ ते धसका परयो थी, जेंहर सुणेनें ग्यांन सूं जांण्यो रे।
ते जांणपणा नें निरवद थापों, तो चखू सावद्य मत कहों ताणो रे।।

८९. साधु अपछरा देख रह्यों समभावें, घण दिनां पछें अणसण लीघो रे।
तिणरो रूप आछो जांणें नें साधु, भोग वंछा नीहांणो कीधो रे।।

८२. चक्षु से देखकर यदि कोई भोग भोगता है तो चक्षु को सावद्य क्यों कहते हो? एक जानकर भोग भोगता है और दूसरा देखकर भोग भोगता है। दोनों को समान क्यों नहीं कहते हो?

८३. भूला हुआ धन सम्यग्दृष्टि को याद आया, इससे उसने अनेक झंझट किए। यदि याद नहीं आता तो झंझट नहीं करता। ऐसा होने पर भी ज्ञान को निर्दोष कहते हो।

८४. चक्षु से देखकर कोई झंझट करता है तो चक्षु को सावद्य क्यों कहते हो? यदि जानकर करने से ज्ञान सावद्य होता हो तो देखकर करने से चक्षु को सावद्य बतलाओ।

८५. अज्ञानवश बुरी वस्तु खा लीह्नयह जानने पर मन के परिणाम बुरे हो गए। उसके बुरे मन का वर्त्तन होने से पाप कर्म का बंधन हुआ। वह किस उपयोग से डूबा?

८६. देखकर खाने पर मन के परिणाम बुरे नहीं हुए। जब जाना तब मन में बुरे परिणामों का वर्तन हुआ। यदि उस जानकारी को निरवद्य मानते हो तो चक्षु को सावद्य कहकर क्यों डूबते हो?

८७. पथिकों ने देखकर छाछ पी। बाद में उन्होंने सुनकर जाना कि जहर पी लिया। जब उन्होंने यह जाना तो उनको भारी आघात लगा। इस तरह पाप कर्म का बंध कर उन्होंने काल-मरण प्राप्त किया।

८८. आघात लगने से पथिक मृत्यु को हो प्राप्त गए, उन्होंने सुनकर ज्ञान से जहर को जाना। यदि इस ज्ञान-अवबोध को निरवद्य स्थापित करते हो तो व्यर्थ खींचतान कर चक्षु को सावद्य मत कहो।

८९. साधु अप्सरा को देखकर समभाव में रहा। अनेक दिनों के बाद उसने अनशन ग्रहण किया। अनशन काल में उसके रूप को अच्छा जानकर साधु ने भोग की कामना से निदान किया।

९०. तिणरा रूप री धारणा याद आई, तो साधु कीधों नीहांणों रे।
ते धारणा ग्यांन री निरवद जांणों, तो चखू मांहें अवगुण कांय जांणो रे।।

९१. धारणा याद आयां राग उपनों, देख्यों जब तो राग न आयो रे।
चखू इंद्री नो अवगुण मूल न दीसे, तिणरो काल वीत गयो ताह्यो रे।।

९२. काम भोग सेव्या ते याद आया जब, हूवो काम भोग रो रागी रे।
जब किसा उपीयोग सूं याद आया छें, किसा उपीयोग सूं वार भागी रे।।

९३. ग्यांन सूं याद आयो तों राग उपनों, जब ग्यांन जांण्यों थे रूडो रे।
चखू आदि इंद्री नें सावद्य थापो, ओं थे चोडे चलायो कूडो रे।।

९४. अस्त्री नों रूप देख विकार उपजें, जब भागे छें चोथी वाडो रे।
ते पिण देखनें ग्यांन सूं जांण्या पाछें, बाड भागी बधीयों विकारो रे।।

९५. सगली वाड भागे ग्यांन सूं जांण्यां पाछें, आगेंवांणी तों सगलेंई ग्यांनो रे।
तिण ग्यांन नें निरवद चोखों जांणो, तो दर्शण सावद्य कांय मानो रे।।

९६. देखनें करें छें ते पिण ग्यांन सूं जांणें, मन सूं करें विचारो रे।
जांण नें करें छें तिहां देखण री भजना, ए निरणो रूडी रीत धारो रे।।

९७. मेघकुमार हाथी रा भव में, जातीसमरण सूं याद आयों रे।
जब एक जोजनरों मंडलो कीधो, घणा रूंख उपाड्या ताह्यों रे।।

९८. याद आयों जातीसमरण सेती, तिणनें तो कहों छों चोखों रे।
चखू सूं पाछिलो भव याद न आयों, तिणमें कांय वतावो दोखो रे।।

९०. उसके रूप की धारणा याद आने पर साधु ने निदान किया। यदि ज्ञान की उस धारणा को निरवद्य समझते हो तो फिर चक्षु में अवगुण क्यों मानते हो?

९१. देखने पर तो राग नहीं आया। धारणा याद आने पर राग उत्पन्न हुआ। चक्षु इन्द्रिय का कुछ भी अवगुण नहीं दिखाई देता। देखने का काल तो कभी का बीत चुका।

९२. जिन काम भोगों का सेवन किया, वे याद आए तब जीव काम-भोगों का रागी हुआ। वे किस उपयोग से याद आए तथा किस उपयोग से ब्रह्मचर्य व्रत की बाड़ को भंग किया ?

९३. ज्ञान से याद आया तब राग उत्पन्न हुआ, फिर भी ज्ञान को तो तुम अच्छा जानते हो। पर चक्षु आदि इन्द्रियों को सावद्य स्थापित करते होह्नयह तो तुमने प्रत्यक्षतः झूठ चलाया है।

९४. स्त्री का रूप देखकर विकार उत्पन्न होता है, तब चौथी बाड़ का भंग होता है। देखकर ज्ञान से जानने के बाद विकार बढ़ा और बाड़ का भंग किया।

९५. ज्ञान से जानने के बाद सब बाड़ों का भंग होता है। सब जगह ज्ञान ही अग्रणी है। उस ज्ञान को निरवद्य और अच्छा समझते हो तो दर्शन को सावद्य क्यों मानते हो ?

९६. देखकर करता है वह भी ज्ञान से जानता है। मन से विचार करता है। जहां जानकर करता है, वहां देखने की भजना है। इस निर्णय को अच्छी तरह धारें।

९७. मेघ कुमार के जीव को हाथी के भव में जाति स्मरण से याद आने पर उसने एक योजन विस्तृत भूमण्डल तैयार किया। उसके लिए उसने अनेक वृक्ष उखाड़े।

९८. जाति-स्मरण ज्ञान से स्मृति हुई उसे तो ठीक बताते हो। चक्षु से पीछे का भव याद नहीं आया। उसमें क्यों दोष बतलाते हो ?

९९. जिम छें तिमहिज जांण लीयां सुं, ग्यांन सावद्य नही ताह्यों रे।
जिम छें तिमहिज देख लीयां सुं, दरसण सावद्य किम थायो रे।।

१००. जिम छें तिमहिज देख लीयां थी, चखू दर्शण में नही खोटो रे।
खोटों तको राग धेष उदेभाव, तिणसूं बंधें छें पापरी पोटो रे।।

१०१. इत्यादिक अनेक करें सावद्य कामा, त्यांमें केइ ग्यांन सूं जांणे रे।
केइ दर्शण सूं देख करें छें, त्यांनें रूड़ी रीत पिछांणो रे।।

१०२. इंद्रां रों सभाव तों जूओं जूओं छें, ओर सभाव यांमें न पावें रे।
ओर उदें नें खयउपसम नही कोइयां में, इम समझ्या संका मिट जावें रे।।

१०३. केई जांण करें केइ देख करें छें, सावद्य किरतब सारोई भूंडो रे।
उपीयोग तों छें दोनूंई निरवद, त्यांनें सावद्य सरधे मत बूडो रे।।

१०४. दोनूं उपीयोग खयउपसम भाव छें चोखा, उजला लेखें निरवद जांणो रे।
चखू उपीयोग नें सावद्य सरधे ते, बूडें छें कर कर तांणो रे।।

१०५. जब केइ कहें म्हें मोह उदें सूं, खयउपसम नें सावद्य जांणों रे।
तिणनें पाछों इम उतर दीजें, इसडी उंधी मत तांणों रे।।

१०६. चारित मोहणी उदें हूवें जब, वीतराग भाव विललावें रे।
तिणसूं राग नें धेष प्रबल वधीया, तिणसूं माठा जोग चलावें रे।।

९९. जो वस्तु जैसी है वैसी जान लेने से ज्ञान सावद्य नहीं होता तो फिर जो वस्तु जैसी है वैसी देख लेने से दर्शन सावद्य कैसे होगा ?

१००. जो वस्तु जैसी है वैसी देख लेने से चक्षु दर्शन में कोई दोष नहीं है। जो कुछ बुरा है वह तो औदयिक भाव राग-द्वेष है। उससे पाप की गठरी बंधती है।

१०१. इत्यादि अनेक सावद्य कार्य जीव करता है। उनमें कई ज्ञान से जानकर और कई दर्शन से देखकर करता है। उन्हें अच्छी तरह पहचानें।

१०२. इन्द्रियों के स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। इनमें अपने स्वभाव के अतिरिक्त स्वभाव नहीं पाया जाता। अन्य औदयिक और क्षायोपशमिक भाव इनमें नहीं हैं। इस तरह समझने से शंका मिट जाती है। (द्रव्येन्द्रिय नाम कर्म के उदय से निष्पन्न है। तथा भावेन्द्रिय दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से निष्पन्न हैं। इसलिए इन्द्रियां सावद्य कैसे हो सकती हैं? द्रव्येन्द्रिय उपकरण मात्र है और भावेन्द्रिय क्षयोपशम निष्पन्न होने से स्वयं शुद्ध है।)

१०३. समस्त सावद्य प्रवृत्तियों को कोई जानकर करता है और कोई देखकर करता है। सावद्य कार्य सारे ही बुरे हैं। पर दोनों ही उपयोग-साकार एवं अनाकार निरवद्य हैं। उन्हें सावद्य श्रद्धान कर नहीं डूबना चाहिए। (सभी उपयोग निरवद्य हैं क्योंकि वे क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव हैं। केवल ज्ञान और केवल दर्शन क्षायिक भाव हैं तथा शेष दस उपयोग क्षायोपशमिक भाव हैं)।

१०४. दोनों उपयोग उत्तम क्षायोपशमिक भाव हैं। उन्हें उज्ज्वलता की अपेक्षा से निरवद्य जानें। जो चक्षु उपयोग को सावद्य मानता है वह खींचतान कर-कर डूबता है।

१०५. जब कोई कहते हैं कि हमने मोह से क्षयोपशम को सावद्य जाना तो उन्हें वापिस इस प्रकार उत्तर देना चाहिएह्नऐसी उलटी खींचतान मत करो।

१०६. चारित्र मोहनीय कर्म के उदय होने पर वीतराग भाव विलीन हो जाता है। उससे राग और द्वेष प्रबल होते हैं-बढ़ जाते हैं। उससे अशुभ योग का प्रवर्तन होता है।

१०७. मोह कर्म खयउपसम हूवों जब, खयउपसम भाव परगटीयो रे।
तेहीज मोहणी फेर उदें हूवें, तेहीज खयउपसम घटीयो रे।।

१०८. चारितमोहणी कर्म उदें सूं, राग धेष उदें भाव थायो रे।
तो खयउपसम विगड्यों उदें भाव हूवों, ते खयउपसम नही छें ताह्यों रे।।

१०९. मोह उदें सूं मोहरों खयउपसम विगरुयों, ते खयउपसम भाव छें नांही रे।
ज्यूं साधु विगड्या नें साध म जांणो, ते गिण लेजों असाध रें मांही रे।।

११०. ज्यूं खयउपसम विगरुया नें उदेभाव जांणों, खयउपसम भाव म जांणों रे।
खयउपसम आछों उदें भाव खोटों, इम सावद्य निरवद पिछांणो रे।।

१११. मोह उदें सूं नीपजें सावद्य सारा, निरवद नीपजें खयउपसम तेथी रे।
पाप लागें मोह उदें भाव सूं, नही लागें ते खयउपसम सेती रे।।

११२. मोह उदे हूआं मोह रो खयउपसम विगरें, ओर खयउपसम विगाडें नांही रे।
चारित मोह सुं खिमादिक गुण विगरें, ओर गुण विगाडें नही कांई रे।।

११३. दंसणमोह सूं सूधी सरधा विगाडें, ओर तो गुण विगाडें नांही रे।
दंसण नें चारित मोहनों ओहीज होदों, ओर गुण विगाडें नही कांई रे।।

११४. अनंतानबंधी चोकरी उदें हूआं, कदा दंसण मोह साथे उदे होयो रे।
जब जीवरा दोनूइ गुण विगडें, आप आपरा न्यारा लों जोयो रे।।

१०७. मोह कर्म के क्षयोपशम होने पर क्षायोपशमिक भाव प्रकट होता है। जब वही मोहनीय कर्म फिर उदय में आता है, तब वही क्षयोपशम पुनः घट जाता है।

१०८. चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से राग-द्वेष उदय भाव में आ जाते हैं। क्षयोपशम के बिगड़ने से औदयिक भाव होता है, तब क्षायोपशमिक भाव नहीं होता है।

१०९. मोह कर्म के उदय से मोह का क्षयोपशम बिगड़ता है। मोह का उदय क्षयोपशम भाव नहीं है। जैसे जो साधु बिगड़ जाता है उसे साधु नहीं जानना चाहिए, उसे असाधु में गिन लेना चाहिए।

११०. उसी तरह बिगड़ते हुए क्षयोपशम को उदय भाव जानें। उसे क्षयोपशम भाव न जानें। क्षायोपशमिक भाव अच्छा है और औदयिक भाव बुरा है। ऐसे क्षायोपशमिक भाव को निरवद्य तथा औदयिक भाव को सावद्य पहचानें।

१११. मोह कर्म के उदय से जो निष्पन्न होते हैं, वे सब सावद्य होते हैं, तथा निरवद्य भाव क्षयोपशम से उत्पन्न होते हैं। पाप लगते हैं वे मोह कर्म के औदयिक भाव से लगते हैं। क्षायोपशमिक भाव से पाप नहीं लगते।

११२. मोह के उदय होने से मोह का क्षयोपशम बिगड़ता है, किंतु अन्य क्षायोपशमिक भाव नहीं बिगड़ते हैं। चारित्र मोहनीय के उदय से क्षमा आदि गुण बिगड़ते हैं, अन्य किसी गुण को नहीं बिगाड़ता।

११३. दर्शन मोहनीय कर्म से सच्ची श्रद्धा बिगड़ती है। अन्य गुण नहीं बिगड़ते हैं। दर्शन और चारित्र मोहनीय कर्म की यही सीमा है। ये अन्य गुणों को बिल्कुल नहीं बिगाड़ते हैं।

११४. अनन्तानुबंधी कषाय चतुष्क के उदय होने से कदाचित् दर्शन मोहनीय साथ में उदय में आता है। तब जीव के दोनों ही गुण बिगड़ते हैं, वे अपने से संबंधित गुणों को बिगाड़ते हैं।

११५. दंसण मोहणी उदें हूवें जब चारित मोहणी उदें हुवें साथो रे।
जब पिण जीवरा दोनूंइ गुण विगडें, जोवों सूतर में साख्यातो रे।।

११६. आधकर्मी आहारादिक असुध कह्यों छें, ते तों किरतब आसरी जांणो रे।
ते आहार असुध सावद्य दोनूं नांही, आहारादिक थी सावद्य पिछांणो रे।।

११७. ज्यूं सुरत इंद्रीयादिक आश्रव कह्यों ते, राग धेष आश्री जांणो रे।
पिण सुरत इंद्री तों आश्रव नांही, अहार ज्यूं लो इद्रीयां पिछांणो रे।।

११८. ज्यूं अजीव काय असंजम कह्यों छें, ते इविरत आश्री जांणो रे।
पिण अजीव तों असंजम नांही, असंजम इविरत आश्री पिछांणो रे।।

११९. ज्यूं इद्रयां मोकली मेली ते आश्व, ते विषें इविरत आश्री जाणो रे।
पिण इंदरयां तो आश्व छें नांही, ते अजीव असंजम ज्यूं इंद्रयां पिछांणो रे।।

१२०. वले अजीव काय नें संजम कह्यों छें, ते त्याग विरत लेखें वतायो रे।
ते अजीव तों संजम छें नांही, त्यांरी विरत लेखें ओलखायो रे।।

१२१. ज्यूं इंदर्‌यां ने वस करें ते संवर,
ते विषें री विरत आश्री जांणों रे।
पिण इंद्र्यां नें संवर विरत मति जांणो,
अजीव संजम ज्यूं इंदर्‌यां पिछांणो रे।।

१२२. प्रिग्रहो कह्यों सचित अचित नें मिश्र, ते दुरगति मांहि डबोवें रे।
ते परिग्रहो तो डबोवें नांही, तिणरी मूर्छा विषें विगोवें रे।।

११५. जब दर्शन मोहनीय कर्म उदय में आता है, तब चारित्र मोहनीय भी साथ में उदय में आता है। तब भी जीव के दोनों ही गुण बिगड़ते हैं। इसे सूत्र में साक्षात् देखें।

११६. आधाकर्मी आहार आदि को जो अशुद्ध कहा है, वह क्रिया की अपेक्षा से जानें। वस्तुतः वह आहार अशुद्ध और सावद्य दोनों ही नहीं है। सेवन आदि की अपेक्षा से उसे सावद्य जानें।

११७. इसी तरह श्रोत्रेन्द्रिय आदि आश्रव कहे गए हैं। उन्हें राग-द्वेष की अपेक्षा से आश्रव जानें। पर श्रोत्रेन्द्रिय आश्रव नहीं है। आहार की तरह ही इन्द्रियों को पहचानें।

११८. जैसे अजीव काय असंयम कहा गया है, वह अविरति की अपेक्षा से जानें। वास्तव में अजीव असंयम नहीं है। अजीव-असंयम अविरति की अपेक्षा से पहचानें।

११९. इसी तरह इन्द्रियों की प्रवृत्ति आश्रव है। इन्द्रियों के विषय की-अविरति की अपेक्षा से उन्हें आश्रव जानें। वास्तव में इन्द्रियां आश्रव नहीं हैं। अजीव असंयम की तरह ही इन्द्रियों को पहचानें।

१२०. और अजीव काय को संयम कहा है। वह त्याग-विरति की अपेक्षा से कहा गया है। वास्तव में अजीव संयम नहीं है। उससे विरति की अपेक्षा से उसे संयम कहकर बतलाया है।

१२१. इसी तरह इन्द्रियों को वश में करना संवर है। वह इन्द्रियों के विषय से विरति की अपेक्षा से जानें। पर इन्द्रियों को व्रत और संवर न जानें। इन्द्रियों को अजीव-संयम की तरह पहचानें।

१२२. परिग्रह तीन प्रकार का कहा हैह्नसचित्त, अचित्त और मिश्र। परिग्रह जीव को दुर्गति में डूबोता है। पर वास्तव में परिग्रह नहीं डूबोता है, उसकी मूर्च्छा और अविरति डूबोती है।

१२३. ज्यूं इंदर्यां की विषेनें सावद्य कही ए, ते राग धेष आश्री जांणो रे।
पिण इंदर्यां तों सावद्य छें नांही, ते परिग्रहा ज्यूं इंदर्यां पिछांणो रे।।

१२४. यों तीन प्रकार को प्रग्रहों कह्यों ते, पाप कर्म न लागें तेथी रे।
पाप लागें तिणरी मुर्छा आयां सूं, वले तिणरी इविरत सेती रे।।

१२५. ज्यू पांचू इंदर्यां स्यूं पाप न लागें, पाप लागों विषें सूं जांणो रे।
कोई कहें इंदर्यां सूं ई लागें, ते परतक झूठ पिछांणो रे।।

१२६. अन पुने पाण पुने कह्यों सूतर में, नमसकार पुने नवमों वतायो रे।
पिण अे तों नबोंई पुन छें नांही, पुन नीपजें परिणाम सुं ताह्यों रे।।

१२७. ज्यूं इंदर्यां नें वस करे ते संवर, पिण इंदर्यां नें संवर म जांणो रे।
विषे त्यागी ते परिणाम संवर नां छें, अन पुने ज्यूं इंदर्यां पिछांणो रे।।

१२८. जोड़ कीधी इंदर्यां नी विषें ओलखावण, नेंणवा सहर मझारो रे।
संवत अठारे नें वरस छयालें, जेठ सुद तेरस बुधवारो रे।।

●

१२३. इसी तरह इन्द्रियों के विषयों को जो सावद्य कहा है, वह राग-द्वेष की अपेक्षा से जानें। पर वास्तव में इन्द्रियां सावद्य नहीं हैं। इन्द्रियों को परिग्रहवत् जानें।

१२४. जो तीन प्रकार का परिग्रह कहा है, उससे पाप कर्म नहीं लगता। पाप उसकी मूर्च्छा आने से लगता है तथा उसकी अविरति से लगता है।

१२५. इसी तरह पाँचों इन्द्रियों से पाप नहीं लगता। पाप तो विषयों से लगता हैह्नयह जानें। कई लोग कहते हैं कि पाप इन्द्रियों से ही लगता है, उसे प्रत्यक्ष झूठ जानें।

१२६. सूत्र में अन्न पुण्य, पान पुण्य आदि कहे गए हैं। नौवां नमस्कार पुण्य बतलाया गया है। पर वास्तव में ये नौ ही पुण्य नहीं हैं। पुण्य तो परिणामों से उत्पन्न होते हैं।

१२७. इसी तरह इन्द्रियों को वश में करनाह्नइन्द्रिय संवर है। पर इन्द्रियों को संवर न जानें। विषय-सेवन का त्याग किया, वे परिणाम संवर हैं। इन्द्रियों को अन्न पुण्य आदि की तरह पहचानें।

१२८. नेणवां शहर में इन्द्रिय-विषय बतलाने के लिए विक्रम संवत् १८४६ ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी बुधवार को इस कृति का निर्माण किया।

●

दुहा

१. पांच भाव जिणेसर भाखीया, उदे उपसम खायक भाव।
खयउपसम नें परणांमीक पांचमो, तिणरो जांणे समदिष्टी न्याव।।

२. धूरला च्यार भावां तणो, जूवो जूवो गुण जांण।
परणांमीक भाव छें पांचमों, ते मिलें सगळां माहे आंण।।

३. आठ कर्म उदें हूआं, त्यांसूं नीपनो उदें भाव जांण।
त्यांरो जूओ जूओ सभाव छें, तिणरी बुधवंत करजों पिछांण।।

४. उपसम एक मोहणी कर्म हुवे, जब नीपजें उपसम भाव।
तिण उपसम भाव तेहमें, ओर भाव रों नही छें लगाव।।

५. आठ कर्म खय हुआं नीपजें, खायक भाव अनेक।
ते सगलाई खायक भाव में, ओर भाव न पावें एक।।

६. च्यार कर्म खयउपसम हूआं, नीपजें खयउपसम भाव अनूप।
ते खयउपसम भाव छें निरमलों, तिणरों जूओं जूओं छें सरूप।।

७. च्यारू भाव समावें आप आप में, परिणांमीक सगलां में जांण।
समदिष्टी जथातथ ओलख्या, जिम छें तिम लीया छें पिछांण।।

८. पांच भाव पूरा नही ओलख्या, ते करें अग्यांनी तांण।
नव पदार्थ रो निरणों नही, ते मूंढ मिथ्याती अयांण।।

दोहा

१. श्री जिनेश्वर देव ने पांच भाव बतलाए हैंह्नउदय, उपशम, क्षायक, क्षयोपशम और पाचवां पारिणामिक। सम्यग्दृष्टि उसका न्याय जानता है।

२. प्रथम चार भावों के अलग-अलग गुण जानें। पांचवां पारिणामिक भाव सब भावों में पाया जाता है।

३. आठ कर्म उदय होने पर उनसे उदय निष्पन्न भाव उत्पन्न होते हैं। आठ कर्मों के भिन्न-भिन्न स्वभावों के अनुसार औदयिक भाव के भी भिन्न-भिन्न स्वभाव होते हैं। बुद्धिमान पुरुष उसकी पहचान करें।

४. उपशम केवल मोहनीय कर्म का होता है। उससे औपशमिक भाव उत्पन्न होता है। उस औपशमिक भाव में अन्य भावों का कोई लगाव नहीं होता।

५. आठ कर्मों के क्षय होने से अनेक क्षायिक भाव उत्पन्न होते हैं। उन सब क्षायिक भावों में एक भी अन्य भाव नहीं पाया जाता।

६. चार कर्मों के क्षयोपशम होने पर अनुपम क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न होते हैं। क्षायोपशमिक भाव निर्मल होते हैं और उनके भिन्न-भिन्न स्वरूप होते हैं।

७. चारों भाव अपने-अपने में समाहित रहते हैं। पारिणामिक भाव का समावेश सब भावों में जानें। सम्यग्दृष्टि इन भावों को यथातथ्य पहचानता है। वह जो भाव जैसा होता है, उसे वैसा जानता है।

८. जिन्होंने पांच भावों को समग्रता से नहीं जाना है, वे अज्ञानी आग्रह करते हैं। जिनके नौ पदार्थ का यथार्थ निश्चय नहीं हैंह्नवे मूढ, मिथ्यात्वी और अज्ञानी हैं।

९. केइ ओलख नें उलटा पऱ्या, मोह कर्म उदें हूओ आंण।
तिणसूं निन्व हूवा किण विधें, ते सुणजों चुत्तर सुजांण।।

ढाल : ९

(लय : पुन निपजे सुभजोग सूं रे लाल)

सरधा सुणों निन्हवां तणी रे लाल।।

१. इविरत नें कहें माठो ध्यान छें रे लाल,
विरत नें कहें छें आछो ध्यांन हो।भवकजन।
मणागार उपीयोग कहे तेहने रे लाल,
तिणरा घट माहे घोर अग्यांन हो।।भवकजन।।

२. माठा ध्यांन नें इविरत कहें रे लाल, आछा ध्यांन नें कहें छें विरत हो।
मणागार उपीयोग त्यांनें पिण कहें रे लाल, एहवा कूड़ा करें छें निरत हो।।

३. विरत इविरत भला भूडा ध्यांन नें रे लाल, कहें छें मणागार उपीयोग हो।
उंधी अकल हीया रा जोर सू रे लाल, तिणरी सरधा घणी छें अजोग हो।।

४. विरत इविरत भला भूडा ध्यांन ने रे लाल, कहे छें उपीयोग मणागार हो।
तिणरी खोटी सरधा छें सर्वथा रे लाल, ते बुधवंत करजों विचार हो।।

५. विरत इविरत भला भूडा ध्यांन नें रे लाल, जूदा जूदा कह्या छें भगवांन हो।
त्यांरो विवरा सुध निरणों कहूं रे लाल, सुणों सुरत दे कांन हो।।

६. इविरत नें कहें माठों ध्यांन छें रे लाल, तिणरी सरधा घणी छें अजोग हो।
सुतर सुं मिलती नही रे लाल, ते सुणजो देइ उपीयोग हो।।

७. इविरत तों अत्याग भाव जीवरा रे लाल, ते निरंतर लगता जांण हो।
तिणसूं चेतन जीवरे रे लाल, पाप लागें निरंतर आंण हो।।

९. कई लोग तत्त्व को समझकर मोह कर्म के उदय से विपरीतगामी हो गए। वे किस प्रकार से निह्नव हो गएह्नचतुर व्यक्ति उसे सुनें।

ढाल : नौ

निह्नवों की श्रद्धा को सुनें।

१. वे अव्रत को अशुभ ध्यान कहते हैं और व्रत को शुभ ध्यान। वे अव्रत और व्रत को अनाकार उपयोग कहते हैं। उनके अन्तः करण में घोर अज्ञान रूपी अन्धकार है।

२. वे अशुभ ध्यान को अव्रत कहते हैं और शुभ ध्यान को व्रत। वे दोनों ध्यानों को भी अनाकार उपयोग कहते हैं। वे निरन्तर ऐसी मिथ्या प्ररूपणा करते हैं।

३. वे व्रत, अव्रत, शुभ ध्यान और अशुभ ध्यान को अनाकार उपयोग कहते हैं। उनकी विपरीत बुद्धि और अविवेक के पुट से मान्यता बहुत ही अयोग्य-अग्राह्य है।

४. वे व्रत, अव्रत, शुभ ध्यान और अशुभ ध्यान को अनाकार उपयोग कहते हैं। उनकी यह श्रद्धा बिल्कुल गलत है। बुद्धिमान मनुष्यों को इस पर विचार करना चाहिए।

५. व्रत, अव्रत, शुभ ध्यान और अशुभ ध्यानह्नइनको भगवान ने भिन्न-भिन्न बतलाया है। उनका शुद्ध स्वरूप कहता हूं। उसे ध्यानपूर्वक कान लगाकर सुनें।

६. जो अव्रत को अशुभ ध्यान कहते हैं, उनकी श्रद्धा अत्यन्त दुष्ट है। यह श्रद्धा सूत्र से नहीं मिलती। उसे उपयोग पूर्वक सुनें।

७. अव्रत जीव का अत्याग भाव है। यह निरन्तर लगता हैह्नऐसा जानें। इससे चेतन स्वरूप जीव के निरन्तर पाप आकर लगते रहते हैं।

८. इविरत तों अत्याग भाव जीवरा रे लाल, ध्यान तो ध्यावें जब होय हो।
तिणसूं अें तों दोनूइ जू जूआ रे लाल, यांनें एक म जांणो कोय हो।।

९. जो इविरत माठों ध्यांन हुवें रे लाल, तो छठें गुणठाणें इवरत होय हो।
छठे गुणठाणें आरत ध्यान छें रे लाल, जब तो विरत रो अंस न कोय हो।।

१०. जो विरत ध्यांन आछो हुवे रे लाल, तो चोथें गुणठांणें विरत होय हो।
धर्म ध्यांन चोथें गुणठांणें हुवें रे लाल, जब तो इविरत जाबक न कोय हो।।

११. जो इविरत माठों ध्यांन हुवे रे लाल, तो श्रावक रें निरंतर माठो ध्यांन हो।
श्रावक रें इवरत छें सदा रे लाल, ते पिण निरणों कीजों बुधवांन हो।।

१२. जो विरत ध्यांन आछो हुवें रे लाल, तो श्रावक रें निरंतर आछो ध्यांन हो।
श्रावक रें विरत पिण छें सदा रे लाल, ओ पिण निरणों कीजों बुधवांन हो।।

१३. श्रावक रे दोनूं निरंतर हुवें रे लाल, विरत नें इविरत दोय हो।
जो विरत इविरत ध्यांन छें रे लाल, दोनूं ध्यांन निरंतर होय हो।।

१४. विरत इविरत भलो भूंडो ध्यांन हुवें रे लाल,
तो श्रावक रें निरंतर दोय ध्यांन हो।
वले ध्यावें ते ध्यांन तीसरो हुवें रे लाल,
ओ पिण निरणों कीजों बुधवांन हो।।

१५. तीन ध्यांन एकण समें हुवें नही रे लाल, विरत इविरत एकण समें दोय हो।
हीय माहे विचारे निरणों करो रे लाल, उंधी तांणकर बूडो मत कोय हो।।

८. अव्रत जीव का अत्याग भाव है, वह निरन्तर रहता है। जबकि ध्यान तब होता है जब इच्छापूर्वक किया जाता है। इससे ये दोनों भिन्न-भिन्न हैं। कोई भी इन्हें एक न जानें।

९. यदि अव्रत अशुभ ध्यान हो तो छठे गुणस्थान में भी अव्रत होना चाहिए। क्योंकि छठे गुणस्थान में आर्त्त ध्यान होता है, इस अपेक्षा से तो वहां व्रत का अंश भी नहीं होना चाहिए।

१०. यदि व्रत शुभ ध्यान हो तो चौथे गुणस्थान में भी व्रत होना चाहिए, क्योंकि चौथे गुणस्थान में धर्म ध्यान होता है। इस अपेक्षा से तो वहां जरा भी अव्रत नहीं होना चाहिए।

११. यदि अव्रत अशुभ ध्यान हो तो श्रावक के निरन्तर अशुभ ध्यान होना चाहिए। क्योंकि श्रावक के निरन्तर अव्रत है। बुद्धिमान इसका भी निर्णय करें।

१२. यदि व्रत शुभ ध्यान होता तो श्रावक के निरन्तर शुभ ध्यान होता। श्रावक के व्रत भी सदा होता है। बुद्धिमान इसका भी निर्णय करें।

१३. श्रावक के व्रत और अव्रत दोनों निरन्तर होते हैं। यदि व्रत और अव्रत ध्यान हों तो शुभ और अशुभ-दोनों ध्यान श्रावक के निरन्तर होंगे।

१४. यदि व्रत और अव्रत क्रमशः शुभ और अशुभ ध्यान हों तो श्रावक के निरन्तर ये दोनों ध्यान होंगे। इनके अतिरिक्त जो ध्यान किया जाता है वह ध्यान फिर तीसरा होगा। बुद्धिमान इसका भी निर्णय करें।

१५. तीन ध्यान एक समय में नहीं हो सकते। व्रत और अव्रत दोनों एक समय में होते हैं। इस बात पर अन्तः करण में विचार कर निर्णय करें। मिथ्या खींचतान कर कोई न डूबें।

१६. इविरत कहें छें माठों ध्यांन छें रे लाल, विरत नें कहें छें आछो ध्यांन हो।
आ उंधी सरधा छें अति वूरी रे लाल, ते किण विध मांनें बुधवांन हो।।

१७. माठा ध्यांन नें पिण इविरत कहे रे लाल, आछा ध्यांन नें कहें छें विरत हो।
आ पिण उंधी सरधा छें अति वूरी रे लाल, तिणमें करें अग्यांनी निरत हो।।

१८. धर्म ध्यांन थकी निरजरा हुवें रे लाल, धर्म ध्यांन सूं संवर न होय हो।
संवर तो हुवें छें विरत सूं रे लाल, तिणसूं विरत नें ध्यांन छें दोय हो।।

१९. संवर नें निरजरा कहें रे लाल, निरजरा नें संवर कहें तांम हो।
दोनूं प्रकारें बूडें छें बापड़ा रे लाल, उंधी अकल सूं वेफांम हो।।

२०. विरत इविरत भला भूंडा ध्यान नें रे लाल, कहें छें मणागार उपीयोग हो।
ते पिण हीया रा जोर सूं रे लाल, आ पिण सरधा घणी छें अजोग हो।।

२१. इविरत तों उदें भाव अधर्म छें रे लाल, मोह कर्म उदें सूं जांण हो।
मणागार उपीयोग छें उजलों रे लाल, ते तो खयउपसम भाव पिछांण हो।।

२२. मोह कर्म खयउपसम हुवां रे लाल, विरत नीपजें खयउपसम भाव हो।
तिण मणागार उपीयोग रो रे लाल, मूल नही छें लगाव हो।।

२३. विरत सूं तो रुकें कर्म आवता रे लाल, ते निश्चेंइ संवर जांण हो।
मणागार तो देखण रो सभाव छें रे लाल, विरत में मिलें नही आंण हो।।

२४. विरत इविरत तो निरंतर हुवें रे लाल, मणागार निरंतर नांहि हो।
विरत इविरत मणागार किहां थकी रे लाल, ते निरणों करो घट मांहि हो।।

१६. अव्रत को अशुभ ध्यान कहते हैं और व्रत को शुभ ध्यान कहते हैं। यह मिथ्या श्रद्धा निकृष्ट है। उसे बुद्धिमान कैसे मान सकता है?

१७. अशुभ ध्यान को अव्रत कहते हैं तथा शुभ ध्यान को व्रत कहते हैं। यह भी विपरीत श्रद्धा निकृष्ट है, जिसमें अज्ञानी दूसरों को निरत करते हैं।

१८. धर्म ध्यान से निर्जरा होती है। धर्म ध्यान से संवर नहीं होता। संवर व्रत से होता है। इसलिए व्रत और ध्यान दो हैंह्नभिन्न-भिन्न हैं।

१९. जो संवर को निर्जरा कहते हैं और निर्जरा को संवर कहते हैं। वे बेचारे बिना जाने उलटी मति से दोनों ओर से डूबते हैं।

२०. वे व्रत, अव्रत, शुभ ध्यान और अशुभ ध्यानह्नइन चारों को अविवेक के बल पर अनाकार उपयोग कहते हैं। यह मान्यता बहुत ही अयोग्य-अग्राह्य है।

२१. अव्रत औदयिक भाव है तथा अधर्म है। वह मोहकर्म के उदय से उत्पन्न भाव है। अनाकार उपयोग उज्ज्वल होता है। उसे क्षायोपशमिक भाव पहचानें।

२२. मोह कर्म का क्षयोपशम होने से व्रत उत्पन्न होता है, जो क्षायोपशमिक भाव है। व्रत के साथ अनाकार उपयोग का जरा भी लगाव नहीं है।

२३. व्रत से आते हुए कर्म रुकते हैं। व्रत को निश्चित रूप से संवर जानें। अनाकार उपयोग का स्वभाव देखने का है। व्रत में देखने का स्वभाव नहीं मिलता। इसलिए ये दोनों पृथक् हैं।

२४. व्रत और अव्रत निरन्तर होते हैं। अनाकार उपयोग निरंतर नहीं होता। तब व्रत और अव्रत अनाकार उपयोग कैसे हो सकते हैं? अन्तः करण में इसका निर्णय करें।

२५. विरत इविरत नें कहें मणागार छें रे लाल, तिणरी सरधा में घोर अंधार हो।
ते झूठ बोलें छें सर्वथा रे लाल, तिणमें सावद्य नही छें लिगार हो।।

२६. आरत रुदर ध्यांन माठा बेहूं रे लाल, त्यांनें कहें मणागार छें असुध हो।
धर्म श्रुकल ध्यांन बेहूं भला रे लाल, त्यांनें कहें छें मणागार सुध हो।।

२७. भला भूंडा च्यारूइ ध्यांन ने रे लाल, त्यांनें कहें उपीयोग मणागार हो।
ओ तों गाला सूं गोलो चलावीयो रे लाल, तिणमें साच नही छें लिगार हो।।

२८. आरत रूद्र ध्यांन माठा बेहू रे लाल, ते तो सावद्य जोग व्यापार हो।
ते सावद्य किरतब पारूओ रे लाल, ते निश्चें नही मणागार हो।।

२९. मोहकर्म उदें सूं माठो ध्यांन छें रे लाल, ते तों पाप कर्म रा उपाव हो।
मणागार खयउपसम भाव निरमलो रे लाल, तिणरो देखण रो इज सभाव हो।।

३०. आरत रूद्र ध्यांन माठा तेहनें रे लाल, त्यांनें कहें मणागार उपीयोग हो।
एहवी उंधी करें छें परूपणा रे लाल, तिणरी सरधा घणी छें अजोग हो।।

३१. धर्म श्रुकल ध्यांन बेहूं भला रे लाल, ते तो निरवद जोग व्यापार हो।
ते निरवद करणी निरजरा तणी रे लाल, ते पिण निश्चें नही मणागार हो।।

३२. अंतराय नें मोहणी खयउपसम्यां रे लाल, जब ध्यावें छें आछा ध्यांन हो।
तिणसूं कर्म कटे छें जीवरा रे लाल, मणागार तो देखण रो इज तांन हो।।

३३. धर्म श्रुकल आछा ध्यांन नें रे लाल, त्यांनें कहें मणागार उपीयोग हो।
ते पिण उंधी करें छें परूपणा रे लाल, आ पिण सरधा घणी छें अजोग हो।।

२५. जो व्रत और अव्रत को अनाकार उपयोग कहते हैं, उनकी श्रद्धा में घोर अंधकार है। वे सर्वथा मिथ्या बोलते हैं। अनाकार उपयोग में बिलकुल भी सावद्य नहीं है।

२६. आर्त्त और रौद्र दोनों अशुभ ध्यान हैं, वे इनको अशुद्ध अनाकार उपयोग कहते हैं। धर्म और शुक्ल ये दोनों शुभ ध्यान हैं। वे इनको शुद्ध अनाकार उपयोग कहते हैं।

२७. शुभ और अशुभ चारों ध्यानों को वे अनाकार उपयोग कहते हैं। यह उन्होंने कपोल कल्पित बात चलाई है। उसमें जरा भी सत्य नहीं है।

२८. आर्त्त और रौद्र ध्यान दोनों अशुभ हैं। वे सावद्य योग-व्यापार हैं। अशुभ ध्यान सावद्य कृत्य है, वे निश्चय ही अनाकार उपयोग नहीं हैं।

२९. मोह कर्म के उदय से अशुभ ध्यान होते हैं। ये पाप कर्म के उपाय हैं। अनाकार उपयोग निर्मल क्षायोपशमिक भाव है, जिसका स्वभाव केवल देखना है।

३०. आर्त्त और रौद्र दोनों अशुभ ध्यान हैं। उनको अनाकार उपयोग कहते हैं। जो ऐसी विपरीत प्ररूपणा करते हैं, उनकी श्रद्धा अत्यन्त अयोग्य-अग्राह्य है।

३१. धर्म और शुक्ल दोनों शुभ ध्यान हैं। वे निरवद्य योग-व्यापार हैं। वे निर्जरा की निरवद्य करनी-क्रिया हैं। वे भी निश्चय ही अनाकार उपयोग नहीं हैं।

३२. अन्तराय और मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से जीव शुभ ध्यान ध्याता है। उससे जीव के कर्म कटते हैं। अनाकार उपयोग तो केवल देखने का हेतु है।

३३. धर्म और शुक्ल इन शुभ ध्यानों को वे अनाकार उपयोग कहते हैं। यह भी वे विपरीत प्ररूपणा करते हैं। उनकी यह भी श्रद्धा अत्यन्त अयोग्य है।

३४. हंसा करें प्राणी जीवरी रे लाल, वले बोलें मूंसावाय हो।
चोरी करे सेवें मइथुन नें रे लाल, परिग्रह मेलणरो करें उपाय हो।।

३५. करें क्रोध मान माया लोभ नें रे लाल, राग धेष कलहो करें तांम हो।
अभिखण पेसुण परपरवाद ने रे लाल, रित अरित माया मोसों आंम हो।।

३६. सतरें पाप थांनक छें पाडुआ रे लाल, ते सेवे छें वारुंवार हो।
चारित मोह रा उदें थकी रे लाल, त्यांनें कहें छें अग्यांनी मणागार हो।।

३७. सतरे पाप सेवण रों त्याग न करे रे लाल, त्यांनें पिण कहें छें मणागार हो।
आ पिण उंधी सरधा छें अतिघणी रे लाल, समकत री गमावणहार हो।।

३८. मिथ्यादंसण सल अठारमों रे लाल, ते तो उंधी सरधा छें अंधकार हो।
तेहीज मिथ्यात निवरत समकत हूवो रे लाल, यां दोयां नें कहे छें सागार हो।।

३९. अठारे पाप थांनक रो सेवन करें रे लाल, अठारे पाप सेवण रो करें त्याग हो।
त्यांनें कहें छें सागार मणागार छें रे लाल, ते तों रह्या मिथ्यात में लाग हो।।

४०. मिथ्यातदंसण सल छें अठारमों रे लाल, उंधी सरधा रो घोर अंधकार हो।
ते दंसण मोहणी रा उदें थकी रे लाल, ते निश्चें नही सागार हो।।

४१. ते दंसण मोहणी खयउपसम हूवां रे लाल, जब पांमें समकत श्रीकार हो।
तिणसूं किरीया टली छें मिथ्यात री रे लाल,ते पिण निश्चें नही छें सागार हो।।

३४. प्राणी जीव की हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, मैथुन का सेवन करता है, धन-संग्रह का उपाय करता है।

३५. क्रोध, मान, माया, और लोभ की प्रवृत्ति करता है, राग-द्वेष और कलह करता है, इसी तरह अभ्याख्यान, पैशुन्य, पर-परिवाद, रति, अरति और मायामृषा का सेवन करता है।

३६. ये सतरह पाप स्थानक बुरे हैं, वे उनका बार-बार सेवन करते हैं। उनका सेवन चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से किया जाता है। अज्ञानी उन्हें अनाकार उपयोग कहते हैं।

३७. सतरह पाप-सेवन का त्याग नहीं करते हैं, उन्हें भी वे अनाकार उपयोग कहते हैं। यह भी विपरीत श्रद्धा अत्यन्त बुरी है तथा सम्यक्त्व का लोप करने वाली है।

३८. मिथ्यादर्शनशल्य अठारहवां पाप है। यह विपरीत श्रद्धा है एवं घोर अधंकार रूप है। वही मिथ्यात्व निवृत्त होने से सम्यक्त्व होता है। इन दोनों को वे साकार उपयोग कहते हैं।

३९. अठारह पाप स्थानक का सेवन किया जाता है तथा अठारह पाप स्थानक के सेवन का प्रत्याख्यान किया जाता हैह्नउन्हें वे साकार और अनाकार उपयोग कहते हैं। वे मिथ्यात्व में लगे हुए हैं।

४०. मिथ्यादर्शनशल्य अठारहवां पाप है। यह विपरीत श्रद्धा रूपी घोर अंधकार है। वह दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से होता है। वह निश्चय ही साकार उपयोग नहीं है।

४१. उस दर्शन मोहनीय कर्म के क्षयोपशम होने पर जीव उत्तम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। उससे मिथ्यात्व की क्रिया टलती है। सम्यक्त्व भी निश्चय ही साकार उपयोग नहीं है।

४२. सागार तो ग्यांन उपीयोग छें रे लाल, समकत ते तो सरधा जांण हो।
तिण समकत नें कहें छें ग्यांन छें रे लाल, ते पूरा मूंढ अयांण हो।।

४३. चोथे गुणठांणे सागार ग्यांन छें रे लाल, ते ग्यांन छे खयउपसम भाव हो।
तिणरी समकत में तीन भाव छें रे लाल, तिणरो सुणो विवरा सुध न्याव हो।।

४४. चोथें गुणठांणे खायक समकत हुवें रे लाल, वले उपसम समकत तेथ हो।
वले खयउपसम समकत छें तिहां रे लाल, ग्यांन तो खयउपसम छें एथ हो।।

४५. समकत तों उपसम भाव जिण कही रे लाल, ग्यांन तो नही उपसम भाव हो।
तिण सूं ग्यांन नें समकत जू जूआ रे लाल, एक कहे ते करें छें अन्याव हो।।

४६. खायक समकित चोथे गुणठांणें हुवें रे लाल,
चोथें गुणठांणें खायक ग्यांन नांहि हो।
तिणसूं ग्यांन नें समकत जू जूआ रे,
त्यांनें एक सरधे बूडो कांय हो।।

४७. ग्यांनावर्णी कर्म खयउपसम हुआं रे लाल, जब पांमें छें खयउपसम ग्यांन हो।
तिण ग्यांन नें कोई समकत कहें रे लाल, तिणरा घट माहे घोर अग्यांन हो।।

४८. दंसण मोहणी कर्म उपसम हूआं रे लाल, जब उपसम समकत होय हो।
दंसण मोहणी खय हुवे रे लाल, जब खायक समकत पामें सोय हो।।

४९. दंसण मोहणी खयउपसम हुवें रे लाल, जब खयउपसम समकत थाय हो।
यां तीनूं समकत नें कहें ग्यांन छे रे लाल, ते तों चोडें भूला जाय हो।।

५०. दंसण मोहणी कर्म घटीयां थकां रे लाल, पामे छें सुध सरधांन हो।
ग्यांनावर्णी कर्म घटीयों तेहसूं रे लाल, पांमें छें खयउपसम ग्यांन हो।।

४२. साकार उपयोग ज्ञान है तथा सम्यक्त्व श्रद्धा हैह्नऐसा जानें। जो इस सम्यक्त्व को ज्ञान कहते हैं, वे पूरे मूढ और अज्ञानी हैं।

४३. चौथे गुणस्थान में साकार उपयोग-ज्ञान होता है। वह ज्ञान क्षायोपशमिक भाव है। चौथे गुणस्थान वाले व्यक्ति के सम्यक्त्व में तीन भाव होते हैं। उसका विवरण सहित शुद्ध न्याय सुनें।

४४. चौथे गुणस्थान में क्षायिक सम्यक्त्व, औपशमिक सम्यक्त्व तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होती है। ज्ञान क्षायोपशमिक भाव होता है।

४५. जिनेश्वर देव ने सम्यक्त्व को औपशमिक भाव कहा है किन्तु ज्ञान औपशमिक भाव नहीं है। अतः ज्ञान और सम्यक्त्व भिन्न-भिन्न है। जो दोनों को एक कहता है, वह अन्याय करता है।

४६. क्षायिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान में होता है, पर वहां क्षायिक ज्ञान नहीं होता। अतः ज्ञान और सम्यक्त्व भिन्न-भिन्न क्षायिक ज्ञान नहीं होता। अतः ज्ञान और सम्यक्त्व भिन्न-भिन्न हैं। उन्हें एक मानकर क्यों डूबते हो?

४७. ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से जीव क्षायोपशमिक ज्ञान प्राप्त करता है। उस ज्ञान को जो कोई सम्यक्त्व कहता है, उसके अन्तः करण में घोर अज्ञान है।

४८. दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम होने पर औपशमिक सम्यक्त्व होता है तथा दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय होने पर जीव उत्तम क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है।

४९. दर्शन मोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने पर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है। इन तीनों सम्यक्त्वों को जो ज्ञान कहते हैं, वे प्रत्यक्षतः भूल कर रहे हैं।

५०. दर्शन मोहनीय कर्म के घटने से जीव शुद्ध श्रद्धा को प्राप्त करता है तथा ज्ञानावरणीय कर्म के घटने से क्षायोपशमिक ज्ञान प्राप्त करता है।

५१. समकत नें ग्यांन बेहूं जू जूआ रे लाल, जूइ जूइ त्यांरी परज्याय हो।
कोई समकत नें गिणें ग्यांन में रे लाल, तिण गेंहला नें खबर न काय हो।।

५२. चोथे गुणठांणें एक भाव ग्यांन में रे लाल, समकत माहे तो छें तीन भाव हो।
त्यांरी समकत नें ग्यांन म जांणजो रे लाल, यांरो जूओं जूओं छें सभाव हो।।

५३. दंसण मोहणी कर्म उदे हूआं रे लाल, समकत रो हूवों छे मिथ्यात हो।
तिण मिथ्यात नें कहें सागार छें रे लाल, तिणरी खोटी सरधा साख्यात हो।।

५४. सागार खयउपसम भाव निरमलो रे लाल, मिथ्यात उदें भाव अंधकार हो।
सागार उदें भाव हुवें नही रे लाल, ते बुधवंत करजों विचार हो।।

५५. मिथ्यात उदें भाव तेहथी रे लाल, लागें छें किरिया मिथ्यात हो।
सागार खयउपसम भाव थी रे लाल, पाप न लागें तिलमात हो।।

५६. समकत उपसमादिक तेह थी रे लाल, टल जाअें किरीया मिथ्यात हो।
समकत रो मिथ्यात प्रतपख छें रे लाल, विगड्यों सुधरयो होय जात हो।।

५७. सागार वधीयां कर्म रुकें नही रे लाल, घटीयां पाप न आवें लिगार हो।
वले कर्म न तूटें सागार थी रे लाल, उजला लेखें निरवद सागार हो।।

५८. सागार वधें ग्यांनावर्णी घट्यां रे लाल, ग्यांनावर्णी वधीयां घटें सागार हो।
सागार घटीयां सावद्य न नीपजें रे लाल, वधीयां निरवद न नीपजें लिगार हो।।

५९. मिथ्यात सावद्य छें मोटकों रे लाल, तिणसूं पाप लागें दग चाल हो।
तिण मिथ्यात नें सागार कहें केई रे लाल, ते बोलें छें आल पंपाल हो।।

५१. सम्यक्त्व और ज्ञान दोनों भिन्न-भिन्न हैं। उनकी पर्याय अलग-अलग हैं। कोई सम्यक्त्व की गणना ज्ञान में करता हैह्नउस अज्ञ को कुछ भी पता नहीं है।

५२. चौथे गुणस्थान में ज्ञान में एक भाव होता है जबकि सम्यक्त्व में तीन भाव होते हैं। उसकी सम्यक्त्व को ज्ञान न जानें। सम्यक्त्व और ज्ञान के स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं।

५३. दर्शन मोहनीय कर्म के उदय होने से सम्यक्त्व मिथ्यात्व हो जाता है। जो इस मिथ्यात्व को साकार उपयोग कहता है, उसकी मान्यता प्रत्यक्षतः मिथ्या है।

५४. साकार उपयोग निर्मल क्षायोपशमिक भाव है, जबकि मिथ्यात्व औदयिक भाव है एवं अंधकार स्वरूप है। साकार उपयोग औदयिक भाव नहीं होता। बुद्धिमान इस पर विचार करें।

५५. मिथ्यात्व औदयिक भाव है, उससे मिथ्यात्व की क्रिया लगती है। साकार उपयोग क्षायोपशमिक भाव है, उससे अंश मात्र भी पाप नहीं लगता।

५६. सम्यक्त्व औपशमिक आदि भाव हैं, उससे मिथ्यात्व की क्रिया टल जाती है। मिथ्यात्व सम्यक्त्व का प्रतिपक्ष है। बिगड़ा हुआ दर्शन सम्यक्त्व द्वारा शुद्ध हो जाता है।

५७. साकार उपयोग के बढने से कर्म नहीं रुकते तथा घटने से अंशमात्र भी पाप नहीं लगते। साकार उपयोग से कर्म टूटते भी नहीं हैं। साकार उपयोग उज्ज्वलता की दृष्टि से निरवद्य है।

५८. साकार उपयोग ज्ञानावरणीय कर्म के घटने से बढता है तथा ज्ञानावरणीय कर्म के बढने से वह घटता है। साकार उपयोग के घटने से सावद्य भाव निष्पन्न नहीं होता तथा उसके बढने से जरा भी निरवद्य भाव निष्पन्न नहीं होता।

५९. मिथ्यात्व सबसे बड़ा सावद्य भाव है। उससे निरन्तर पाप लगते हैं। उस मिथ्यात्व को कई लोग साकार उपयोग कहकर अनर्गल प्रलाप करते हैं।

६०. कोइ सागार नें समकत कहें रे लाल, वले कहें छें सागार नें मिथ्यात हो।
संवर आश्व कहें छें सागार नें रे लाल, तिणरी प्रतख झूठी वात हो।।

६१. सागार तो संवर आश्व नही रे लाल, संवर आश्व तों समकत मिथ्यात हो।
सागार नें संवर आश्व कहें रे लाल, ते चोडें भूला जात हो।।

६२. सागार उपीयोग रो विरहो पडे रे लाल, ते तों अंतरमोहरत मांहि हो।
समकत रहें त्यां लगे निरंतर रहें रे लाल, किणही समें विरहो पडें नांहि हो।।

६३. मिथ्यात रहें त्यां लग निरंतर रहें रे लाल, किणही समें विरहो पडे नांहि हो।
सागार उपीयोग रो विरहो पडें रे लाल, सोच देखो मन मांहि हो।।

६४. मिथ्यात नें समकत बेहूं दिष्ट छें रे लाल, ते निश्चें नही छें सागार हो।
बेहूं दिष्ट नें सागार म सरधजो रे लाल, करे हीया में विचार हो।।

६५. बेहूं दिष्ट नें घाली सागार में रे लाल, तीजी दिष्ट किम राखसी न्यार हो।
जो इण नें ई कहे सागार छें रे लाल, तो अंधार माहे फेर अंधार हो।।

६६. समा मिथ्या दिष्ट छें तीसरी रे लाल, ते दिष्ट छें तीजें गुणठांण हो।
दंसण मोहणी उदें खयउपसम हूआं रे लाल, मिश्र दिष्ट नीपजती जांण हो।।

६७. मिश्र दिष्ट नें कहें सागार छें रे लाल, सागार नही मिश्र दिष्ट हो।
मिश्र दिष्ट नें कहें छें सागार छें रे लाल, तिणरी सरधां घणी छें भिष्ट हो।।

६८. तीनां दिष्टां नें कहें छें सागार छें रे लाल, तिणरें उदें हूवों छें मिथ्यात हो।
आप डूबें ओरां नें डबोवता रे लाल, कर कर झूठी वात हो।।

६०. कोई साकार उपयोग को सम्यक्त्व कहता है तथा साकार उपयोग को मिथ्यात्व भी कहता है। साकार उपयोग को संवर और आश्रव भी कहता है। उसकी बातें प्रत्यक्षतः मिथ्या हैं।

६१. साकार उपयोग संवर और आश्रव नहीं है। सम्यक्त्व और मिथ्यात्व क्रमशः संवर और आश्रव हैं। जो साकार उपयोग को संवर और आश्रव कहते हैं, वे प्रत्यक्षतः भूले जा रहे हैं।

६२. साकार उपयोग का अन्तर्मुहूर्त्त में विरह हो जाता है। जबकि सम्यक्त्व रहता है तब तक निरन्तर रहता है। किसी समय उसका विरह नहीं होता।

६३. मिथ्यात्व जब तक रहता है, निरन्तर रहता है। उसका किसी भी समय विरह नहीं होता। जबकि साकार उपयोग का विरह होता है। मन में विचार कर देखो।

६४. मिथ्यात्व और सम्यक्त्वह्नये दोनों दृष्टियां हैं। वे निश्चय ही साकार उपयोग नहीं हैं। अन्तः करण में विचार करके दोनों दृष्टियों को साकार उपयोग मत समझना।

६५. जब इन दो दृष्टियों को साकार उपयोग में डाल दिया तब तीसरी दृष्टि को कैसे बाहर रखोगे? यदि उसको भी साकार उपयोग कहेंगे तो यह अंधकार में फिर अंधकार है।

६६. सम्यक् मिथ्या तीसरी दृष्टि है। यह दृष्टि तीसरे गुणस्थान में होती है। दर्शन मोहनीय कर्म के उदय-क्षयोपशम होने से मिश्र दृष्टि उत्पन्न होती है।

६७. कोई मिश्र दृष्टि को साकार उपयोग कहते हैं, पर वह साकार उपयोग नहीं है। जो मिश्र दृष्टि को साकार उपयोग कहते हैं, उनकी श्रद्धा बिल्कुल भ्रष्ट है।

६८. जो तीन दृष्टियों को साकार उपयोग कहता है उसके मिथ्यात्व का उदय हुआ है। मिथ्या बात कह-कह कर वह स्वयं डूबता है और दूसरों को डुबोता है।

६९. तीनू दिष्ट नें सागार उपीयोग रा रे लाल, जूआ जूआ गुण तास हो।
ए सगलां नें घाल्या सागार में रे लाल, तिणरी समकत रो हूवों छें विणास हो।

७०. तीन दिष्ट नें सागार उपीयोग रो रे लाल, निरणों कीयों छें तांम हो।
हिवे निरणो कहूं छूं मणागार नो रे लाल, ते सुणजों राखे चित ठांम हो।।

७१. मणागार उपीयोग नें चारित कहें रे लाल, चारित नें कहें छें मणागार हो।
ते बेहू विध सरधा उंधी घणी रे लाल, तिणमें साच नही छें लिगार हो।।

७२. चारित मोहणी खयउपसम हूआं रे लाल, जब पांमें चारित श्रीकार हो।
तिणसूं इविरतादिक री किरिया मिटी रे लाल,ते तो निश्चेंइ नही मणागार हो।।

७३. मणागार तो दर्शण उपीयोग छें रे लाल, चारित नें तो त्याग भाव जांण हो।
तिण चारित नें कहें मणागार छें रे लाल, ते पिण पूरा मूढ अयांण हो।।

७४. छठा गुणठांणा थी बारमां लगें रे लाल, मणागार तो खयउपसम भाव हो।
तठा तांई चारित में तीन भाव छें रे लाल, तिणरो सुणो विवरा सुध न्याव हो।।

७५. छठा गुणठाणा थी दसमां लगें रे लाल, खयउपसम चारित जांण हो।
उपसम चारित गुणठांणें इग्यारमें रे लाल, खायक चारित बारमें गुणठांण हो।।

७६. खायक उपसम खयउपसम चारित तिहां रे लाल, खयउपसम छें मणागार हो।
तिणसूं मणागार नें चारित जू जूआ रे लाल, तिणमें संका म राखो लिगार हो।।

६९. तीनों ही दृष्टियों और साकार उपयोग के गुण अलग-अलग हैं। जो इन सबको साकार उपयोग में डाल देता है उसके सम्यक्त्व का विनाश होता है।

७०. तीन दृष्टि और साकार उपयोग का मैंने विवेचनात्मक चिन्तन और निर्णय प्रस्तुत किया है। अब मैं अनाकार उपयोग का निर्णय बतला रहा हूं। उसे एकाग्रचित्त होकर सुनें।

७१. वे अनाकार उपयोग को चारित्र कहते हैं तथा चारित्र को अनाकार उपयोग कहते हैं। ये दोनों प्रकार की मान्यताएं अत्यन्त विपरीत हैं। इन मान्यताओं में जरा भी सत्य नहीं है।

७२. चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम होने पर जीव श्रेष्ठ चारित्र प्राप्त करता है। उससे अव्रत आदि की क्रिया मिटती है। चारित्र निश्चय ही अनाकार उपयोग नहीं है।

७३. अनाकार दर्शन उपयोग है तथा चारित्र को त्याग भाव जानें। जो इस चारित्र को अनाकार उपयोग कहते हैं, वे बिल्कुल मूढ और अज्ञानी हैं।

७४. छठे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक अनाकार उपयोग क्षायोपशमिक भाव होता है। वहां तक चारित्र में तीन भाव होते हैं। उसका विवरण सहित शुद्ध विवेचन सुनें।

७५. छठे गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक क्षायोपशमिक चारित्र जानें। औपशमिक चारित्र ग्यारहवें गुणस्थान में होता है तथा क्षायिक चारित्र बारहवें गुणस्थान में।

७६. इन गुणस्थानों में क्षायिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक चारित्र होते हैं, जबकि इनमें अनाकार उपयोग क्षायोपशमिक ही होता है। अतः अनाकार उपयोग और चारित्र भिन्न-भिन्न हैं। इसमें जरा भी शंका न रखें।

७७. चारित तो उपसम भाव जिण कह्यों रे लाल, मणागार उपसम भाव नांहि हो।
अें न्यारा न्यारा दोनूं जांणजों रे लाल, यांनें एक सरधे बूडो कांय हो।।

७८. दर्शणावर्णी कर्म खयउपसम हूआं रे लाल,
जब नीपजें खयउपसम मणागार हो।
तिण मणागार नें चारित कहें रे लाल,
तिणरा घट माहे घोर अंधार हो।।

७९. चारित मोहणी कर्म उपसम हूआं रे लाल, जब उपसम चारित होय हो।
तेहीज चारितमोहणी खय हूआं रे लाल, खायक चारित पांमें सोय हो।।

८०. चारित मोहणी खयउपसम हूआं रे लाल, खयउपसम चारित थाय हो।
यां तीनां नें कहें मणागार छें रे लाल, ते तो चोडें भूला जाय हो।।

८१. चारित मोहणी कर्म घटीयां थकां रे लाल, जब चारित पांमें श्रीकार हो।
दर्शणावर्णी कर्म घटीयों तेहसूं रे लाल, पांमें छें खयउपसम मणागार हो।।

८२. तिणसूं मणागार नें चारित जू जूआ रे लाल, जूई जूई त्यांरी परजाय हो।
कोई चारित नें गिणें मणागार हो लाल, तिण गेंहला नें खबर न काय हो।।

८३. खयउपसम ग्यांन छदमस्थ रो रे लाल, त्यांरा चारित माहे तीन भाव हो।
तिण चारित नें मणागार म जांणजो रे लाल, यांरो जूओ जूओ छें सभाव हो।।

८४. चारित मोहणी कर्म उदें हूआ रे लाल, जब चारित रो अचारित हुवो जांण हो।
तिण अचारित नें कहें मणागार छें रे लाल, ते पूरा मूंढ़ अयांण हो।।

७७. जिनेश्वर देव ने चारित्र को औपशमिक भाव कहा है, जबकि अनाकार उपयोग औपशमिक भाव नहीं होता। अतः इन दोनों को भिन्न-भिन्न जानना चाहिए। इनको एक मानकर क्यों डूबते हो?

७८. दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने पर क्षायोपशमिक अनाकार उपयोग उत्पन्न होता है। उस अनाकार उपयोग को जो चारित्र कहते हैं, उनके घट में घोर अंधकार है।

७९. चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम से औपशमिक चारित्र होता है। उसी चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से जीव क्षायिक चारित्र की प्राप्ति करता है।

८०. चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से क्षायोपशमिक चारित्र होता है। इन तीनों को जो अनाकार उपयोग कहते हैं, वे प्रत्यक्षतः भूल करते जा रहे हैं।

८१. चारित्र मोहनीय कर्म के घटने से जीव उत्तम चारित्र प्राप्त करता है। दर्शनावरणीय कर्म के घटने से जीव क्षायोपशमिक अनाकार उपयोग प्राप्त करता है।

८२. अतः अनाकार उपयोग और चारित्र भिन्न-भिन्न हैं। उनकी पर्यायें अलग-अलग हैं। जो चारित्र को अनाकार उपयोग समझता है, उस अज्ञ को तत्त्व का बोध नहीं है।

८३. छद्मस्थ के क्षायोपशमिक ज्ञान होता है। जबकि उसके चारित्र में तीन भाव होते हैं। उस चारित्र को अनाकार उपयोग नहीं जानना चाहिए। चारित्र और अनाकार उपयोग के स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं।

८४. चारित्र मोहनीय कर्म के उदय होने पर चारित्र अचारित्र हो जाता है। उस अचारित्र को जो अनाकार उपयोग कहते हैं, वे पूरे मूढ़ और अज्ञ हैं।

८५. मणागार खयउपसम भाव निरमलो रे लाल, अचारित तो उदें भाव जांण हो।
मणागार उदें भाव हुवें नही रे लाल, ते निरणो करो चुतर सुजांण हो।।

८६. अचारित उदें भाव तेहथी रे लाल, इविरत किरीया लागें साख्यात हो।
मणागार खयउपसम भाव थी रे लाल, पाप न लागें अंसमात हो।।

८७. चारित समायकादिक तेहथी रे लाल, टल जाऐं किरिया पात हो।
चारित रो प्रतिपक्ष अचारत हुवे रे लाल, विगड्यों सुधर्‍यों होय जात हो।

८८. मणागार वधीयां कर्म रुके नही रे लाल, घटियां पाप न लागें लिगार हो।
वले कर्म न तूटें मणागार थी रे लाल, उजला लेखें निरवद मणागार हो।।

८९. दर्सणावर्णी कर्म घटें बधे रे लाल, जब बधें घटें मणागार हो।
मणागार वधीयां घटीयां थकां रे लाल, सावद्य नही नीपजे लिगार हो।।

९०. इविरत तों सावद्य छें अति बूरी रे लाल, तिणसुं पाप लागें दगचाल हो।
तिण अविरत नें कहें मणागार छें रे लाल, ते बोले छें आल पंपाल हो।।

९१. कोई मणागार नें चारित कहें रे लाल, वले कहें मणागार नें इविरत हो।
संवर आश्व कहें मणागार नें रे लाल, ते तो कूड़ा करें छें निरत हो।।

९२. मणागार तो संवर आश्व नही रे लाल, संवर आश्रव तो विरत इविरत हो।
मणगार नें संवर आश्व कहें रे लाल, ते चोडे भूलो छें निसरत हो।।

८५. अनाकार उपयोग निर्मल क्षायोपशमिक भाव है तथा अचारित्र औदयिक भाव हैह्नऐसा जानें। अनाकार उपयोग औदयिक भाव नहीं होता। चतुर सुज्ञ पुरुष इसका निर्णय करें।

८६. अचारित्र औदयिक भाव है, उससे प्रत्यक्षतः अव्रत की क्रिया लगती है। अनाकार उपयोग क्षायोपशमिक भाव है, उससे अंश मात्र भी पाप नहीं लगता।

८७. सामायिक आदि चारित्र से अव्रत की क्रिया का पाप टल जाता है। चारित्र का प्रतिपक्ष अचारित्र होता है। चारित्र से बिगड़ा हुआ जीव सुधर जाता है।

८८. अनाकार उपयोग के बढ़ने से कर्म नहीं रुकते तथा घटने से जरा भी पाप नहीं लगते, अनाकार उपयोग से कर्म भी नहीं टूटते। यह अनाकार उपयोग उज्ज्वलता की दृष्टि से निरवद्य है।

८९. दर्शनावरणीय कर्म के घटने और बढ़ने से अनाकार उपयोग बढ़ता और घटता है। अनाकार उपयोग के घटने और बढने से किचिंत् भी सावद्य उत्पन्न नहीं होता।

९०. अव्रत सावद्य और अत्यन्त निकृष्ट है। उससे जल प्रवाह की तरह पाप लगते रहते हैं। इस अव्रत को जो अनाकार उपयोग कहते हैं, वे अनर्गल बोलते हैं।

९१. कोई अनाकार उपयोग को चारित्र कहते हैं तथा उसे अव्रत भी कहते हैं। अनाकार उपयोग को संवर और आश्रव भी कहते हैं। इस तरह वे मिथ्यात्व में निरत हो मिथ्या आलाप करते हैं।

९२. अनाकार उपयोग संवर और आश्रव नहीं है। संवर और आश्रव तो क्रमशः व्रत और अव्रत हैं। जो अनाकार उपयोग को संवर और आश्रव कहते हैं, वे रात्रिरत होकर प्रत्यक्षतः भूले हुए हैं।

९३. मणागार उपीयोग रो विरहो पडें रे लाल, ते अंतर मोहरत माहि हो।
चारित रहें त्यां लगें निरंतर रहें रे लाल, किणही समें विरहो पडें नांहि हो।।

९४. इविरत रहें त्यां लगें निरंतर रहें रे लाल, किणही समें विरहो पडे नांही हो।
मणागार उपीयोग रो विरहो पडें रे लाल, ते विचार देखों मन मांहि हो।

९५. दसमें गुणठांणें चारित निरंतर हुवें रे लाल, दसमें गुणठांणें नही मणागार हो।
जो मणागार चारित हुवें रे लाल, तो चारित न हुवें तिणवार हो।।

९६. मणागार उपीयोग हुवें जिण समें रे लाल, तिण समें नही सागार उपीयोग हो।
तिणसूं सागार नें मणागार नो रे लाल, समकालें बेहां रों नही जोग हो।।

९७. मणागार नों उपीयोग नही हुवें रे लाल, जब विरत इविरत हुवें ताहि हो।
तिणसू विरत इविरत मणागार नो रे लाल, मेलाप नही माहो माहि हो।।

९८. विरत इविरत छें बेहू जू जूइ रे लाल, ते निश्चेंइ नही मणागार हो।
यां दोयां नें मणागार म जांणजो रे लाल, करे हीया में विचार हो।।

९९. विरत तो छें धर्म पक्ष मझे रे लाल, इविरत नें अधर्म पख जांण हो।
विरताविरत मिश्र पख तीसरो रे लाल, यांरी पिण करजों पिछांण हो।।

१००. दोय तो पख घाल्या मणागार में रे लाल, मिश्र पक्ष किम राखसी न्यार हो।
जो इण नें इ कहें मणागार छें रे लाल, तो अंधारा में फेर अंधार हो।।

१०१. मिश्र पक्ष छें तीसरो रे लाल, मिश्र पक्ष पांच में गुणठांण हो।
चारित मोहणी उदें खयउपसम हूवां रे लाल, मिश्र पक्ष नीपजतो जांण हो।।

९३. अनाकार उपयोग का अन्तर्मुहूर्त्त में विरह होता है, जबकि चारित्र रहता है तब तक निरन्तर रहता है। उसका किसी समय विरह नहीं होता।

९४. अव्रत रहता है तब तक निरन्तर रहता है। उसका किसी भी समय विरह नहीं होता। अनाकार उपयोग का विरह होता है। इस पर मन में विचार कर देखो।

९५. चारित्र दसवें गुणस्थान में निरन्तर रहता है, किन्तु दसवें गुणस्थान में अनाकार उपयोग नहीं होता। यदि अनाकार उपयोग चारित्र होता तो वहां चारित्र नहीं होता।

९६. जिस समय अनाकार उपयोग होता है उस समय साकार उपयोग नहीं होता। अतः साकार उपयोग और अनाकार उपयोग का समकाल में योग नहीं होता।

९७. जब अनाकार उपयोग नहीं होता तब भी व्रत और अव्रत होते हैं। अतः व्रत-अव्रत और अनाकार उपयोग का परस्पर संबंध नहीं है।

९८. व्रत और अव्रतह्नये दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। वे निश्चय ही अनाकार उपयोग नहीं हैं। अन्तः करण में विचार करें और इन दोनों को अनाकार उपयोग न जानें।

९९. व्रत धर्म पक्ष में है तथा अव्रत अधर्म पक्ष में हैह्नऐसा जानें। व्रताव्रत तीसरा मिश्र पक्ष हैह्नइसकी भी पहचान करें।

१००. जब दो पक्षों को अनाकार उपयोग में डाल दिया है तब मिश्र पक्ष को कैसे अलग रखेंगे ? अब यदि वे इसे भी अनाकार उपयोग कहते हैं तो यह अंधकार में फिर अंधकार है।

१०१. तीसरा मिश्र पक्ष है। मिश्र पक्ष पाँचवें गुणस्थान में होता है। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय और क्षयोपशम से मिश्र पक्ष निष्पन्न होता हैह्नयह जानें।

१०२. मिश्र पख मणागार निश्चें नही रे लाल, मणागार मिश्र पक्ष नांहि हो।
मिश्र पक्ष नें कहें मणागार छें रे लाल, ते पडीया मिथ्यात रे मांहि हो।।

१०३. तीनां पक्षां नें कहें मणागार छें रे लाल, तिणरे उदें हूवो छें मिथ्यात हो।
आप डूबें ओरां नें डबोवता रे लाल, कर कर कूडी वात हो।।

१०४. तीनूं पक्ष नें मणागार उपीयोग रो रे लाल,
जूआ जूआ गुण तास हो।
यां सगलां नें घाल्या मणागार में रे लाल,
तिणरी समकत रो हुवों छें विणास हो।।

१०५. तीनोइ पख नें मणागार नो रे लाल, ए निरणों कह्यों छें तांम हो।
हिवें निरणों कहूं छूं तीनूं जोगां तणो रे लाल, ते सुणजो राखे चित्त ठांम हो।।

१०६. अठारें पापथांनक सेवे तेहना रे लाल, ते तो सावद्य जोग व्यापार हो।।
ते तो चारित मोहणी रा उदा थकी रे लाल, ते तो निश्चेंइ नही मणागार हो।।

१०७. हिंसा करें छें प्राणी जीवरी रे लाल, ते तो प्रणातपात आश्व दुवार हो।।
ते पापथांनक रा उदा थकी रे लाल, ते पिण निश्चेंई नही मणागार हो।।

१०८. झूठ बोले कोइ मोटो छोटको रे लाल, ते मिरषावाद आश्व दुवार हो।
ते पिण पापथांनक रा उदा थकी रे लाल, ते पिण निश्चेंई नही मणागार हो।।

१०९. कोई छोटी मोटी चोरी करे रे लाल, ते अदत्तादान आश्व दुवार हो।
ते पिण पापथांनक रा उदा थकी रे लाल, ते पिण निश्चेंई नही मणागार हो।।

११०. अस्त्रीयादिक सुं सेवें मेथुन नें रे लाल, ते मेथुन आश्रव दुवार हो।
ते पिण पापथांनक रा उदा थकी रे लाल, ते पिण निश्चेंई नही मणागार हो।।

१०२. मिश्र पक्ष निश्चय ही अनाकार उपयोग नहीं है। अनाकार उपयोग भी मिश्र पक्ष नहीं है। जो मिश्र पक्ष को अनाकार उपयोग कहते हैं, वे मिथ्यात्व में गिरे हुए हैं।

१०३. जो तीन पक्षों को अनाकार उपयोग कहता है उसके मिथ्यात्व उदय में आया है। वह मिथ्या प्ररूपणा कर स्वयं डूबता है और दूसरों को डुबोता है।

१०४. तीनों पक्षों और अनाकार उपयोग के भिन्न-भिन्न गुण हैं। इन सबको जिसने अनाकार उपयोग में डाला है उसके सम्यक्त्व का विनाश हो गया है।

१०५. तीनों ही पक्ष और अनाकार उपयोग का मैंने यह विवेचन प्रस्तुत किया है। अब मैं तीनों योगों का विवेचन प्रस्तुत कर रहा हूं। उसे चित्त को एकाग्र रखकर सुनें।

१०६. अठारह पाप स्थानक का सेवन करना सावद्य योग-व्यापार है। इनका सेवन चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से होता है। वे निश्चय ही अनाकार उपयोग नहीं हैं।

१०७. प्राणी जीव की हिंसा करता है, वह प्राणातिपात आश्रव द्वार है। वह पाप-स्थानक के उदय से निष्पन्न है। वह भी निश्चय ही अनाकार उपयोग नहीं है।

१०८. कोई छोटा-बड़ा झूठ बोलता है। वह मृषावाद आश्रव द्वार है। वह भी पाप-स्थानक के उदय से निष्पन्न है। वह भी निश्चय ही अनाकार उपयोग नहीं है।

१०९. कोई छोटी-बड़ी चोरी करता है। वह अदत्तादान आश्रव द्वार है। वह भी पाप-स्थानक के उदय से निष्पन्न है। वह भी निश्चय ही अनाकार उपयोग नहीं है।

११०. कोई स्त्री आदि से मैथुन सेवन करता है। वह मैथुन आश्रव द्वार है। वह भी पाप-स्थानक के उदय से निष्पन्न है। वह भी निश्चय ही अनाकार नहीं है।

१११. सचित अचित मिश्र राखें परिग्रहरो रे लाल, ते परिग्रह आश्रव दुवार हो।
ते पिण पापथांनक रा उदा थकी रे लाल, ते पिण निश्चेंई नही मणागार हो।।

११२. इम क्रोधादिक मिथ्यात अठारमो रे लाल, अठारोंई आश्व दुवार हो।
अठारें पापथांनक रा उदा थकी रे लाल, ते अठारोंई नही मणागार हो।।

११३. सतरें पापथांनक छें चारित मोहणी रे लाल, अठारमों दंसण मोहणी जांण हो।
त्यांरा उदा सूं ए किरतब करें रे लाल, त्यांनें जूदा जूदा लो पिछांण हो।।

११४. हिंसादिक अठारेइ किरतब करे रे लाल, ते अठारेंइ सावद्य जोग हो।
ते अठारोई आश्व दुवार छें रे लाल, निश्चेंइ नही मणागार उपयोग हो।।

११५. हिंसा री इविरत निरंतर हुवें रे लाल, हिंसा रा जोग निरंतर नांहि हो।
हिंसा रा जोग तो हिंसा करें जदी रे लाल, विचार देखो मन मांहि हो।।

११६. हिंसादिक अठारे पाडूवा रे लाल, ज्यांरी इविरत निरंतर जांण हो।
हिंसादिक रा जोग वरते जदी रे लाल, यांरी करो हीयां में पिछांण हो।।

११७. यां अठारां री इविरत तेहना रे लाल, पूरा भेद कह्या नही जाय हो।
यां अठारां रा किरतब माठा जोगना रे लाल,कहितां कहितां पार न आय हो।।

११८. अठारा री इविरत नें माठा जोग नें रे लाल, कहीजें आश्व दुवार हो।
ते मोहकर्म रा उदा थकी रे लाल, ते निश्चेइ नही मणागार हो।।

११९. सागार मणागार उपीयोग नें रे लाल, केई कहें छें आश्व दुवार हो।
तिणरी उंधी सरधा छें सर्वथा रे लाल, तिणमें साच नही छें लिगार हो।।

१११. कोई सचित्त, अचित्त और मिश्र परिग्रह रखता है। वह परिग्रह आश्रव द्वार है। वह भी पाप-स्थानक के उदय से निष्पन्न है। वह भी निश्चय ही अनाकार उपयोग नहीं है।

११२. इसी तरह क्रोध आदि हैं और अठारहवां पाप मिथ्यात्व है। वे अठारह ही आश्रव द्वार हैं। वे अठारह पाप-स्थानकों के उदय से हैं। वे अठारहों ही अनाकार उपयोग नहीं हैं।

११३. सतरह पाप-स्थानक चारित्र मोहनीय कर्म के अन्तर्गत हैं तथा अठारहवां पाप स्थानक दर्शन मोहनीय कर्म के अन्तर्गत है-ऐसा जानें। उन पाप-स्थानकों के उदय से जीव हिंसा आदि पाप कृत्यों को करता है। उन पाप स्थानकों और पाप कृत्यों को भिन्न-भिन्न जानें।

११४. जीव हिंसा अदि अठारह प्रकार के कृत्य करता है। वे अठारहों ही सावद्य योग हैं। वे अठारहों ही आश्रव द्वार हैं। वे निश्चय ही अनाकर उपयोग नहीं हैं।

११५. हिंसा की अव्रत निरन्तर होती है, किन्तु हिंसा के योग निरन्तर नहीं होते। हिंसा के योग जब हिंसा की जाती है तब ही होते हैं। मन में विचार कर देखें।

११६. हिंसा आदि अठारह निकृष्ट कृत्य हैं। जिनकी अव्रत निरन्तर जानें। हिंसा आदि के योग तभी होते हैं जब वे प्रवर्तित होते हैं। इनकी अन्तःकरण में पहचान करें।

११७. इन अठारह कृत्यों की अव्रत के पूरे भेद कहे नहीं जा सकते। अठारह कृत्यों के सावद्य योगोंह्लकार्यों का कहते-कहते पार नहीं आता।

११८. अठारह कृत्यों की अव्रत और अशुभ योगों को आश्रव-द्वार कहा जाता है। वे मोह कर्म के उदय से होते हैं। वे निश्चय ही अनाकार उपयोग नहीं हैं।

११९. साकार-अनाकार उपयोग को कई आश्रव द्वार कहते हैं। उनकी यह श्रद्धा सर्वथा विपरीत है। उसमें स्वल्प भी सत्य नहीं है।

१२०. पनरे करमादांन सेवे जू जूवा रे लाल,
आरंभ करें अनेक परकार हो।
विविध पणें किरतब पाडूआ करें रे लाल,
त्यांनें कहें छें अग्यांनी मणागार हो।।

१२१. वले कूटवों पीटवो नें रोयवो रे लाल, वले घर रा कार्य अनेक हो।
त्यां सगलां नें कहें मणागार छें रे लाल, त्यां विकला नें नही छें विवेक हो।।

१२२. आश्रव संवर नें निरजरा तणा रे लाल, त्यांरा भेदां रो नहीं छें कोइ पार हो।
यां सगलां नें कहें मणागार छें रे लाल, तिण मिथ्यात कीयो अंगीकार हो।।

१२३. पसारी तणा हाट तेहमें रे लाल, किराणों छें विवध प्रकार हो।
त्यांरी कोथलीयां छें जू जूइ रे लाल, यांनें जूइ जूइ नों जांणकार हो।।

१२४. तिण पसारी रो बेटों हीयो फूट थो रे लाल, तिण विकल में नहीं छे विवेक हो।
तिण सगली कोथलीयां खोलनें रे लाल, किरांणा रो कीयो ढ़िग एक हो।।

१२५. दोय कोथला हुंता तिणरा हाट में रे लाल, ते किरांणो घाल्यों दोयां माहि हो।
ते मन में जांणें हूं डाहो घणो रे लाल, मो सरीखों म्हारो पिता पिण नांहि हो।।

१२६. पूत कपूत हुवो पसारी तणो रे, तिण कीयो नीवी रो नास हो।
इण दिष्टंते निन्व हुआ रे लाल, त्यां कीयो समकत रो विणास हो।।

१२७. अनंती परजाय छें जीवरी रे लाल, ते माहो माहि न खाअें मेल हो।
जे निन्हव हूआ उंधी अकल रा रे लाल, त्यां कर दीघी भेल सभेल हो।।

१२८. समकत नें मिथ्यात नी परजाय नें रे लाल, त्यांने कहें छें सागार उपीयोग हो।
एहवा ववेक विकल निन्वां तणें रे लाल, लागो मिथ्यात रो रोग हो।।

१२०. जीव पन्द्रह कर्मादानों का भिन्न-भिन्न रूप में सेवन करता है। अनेक प्रकार के आरम्भ-हिंसामूलक कृत्य करता है। विविध प्रकार के पाप कार्य करता है। अज्ञानी उन्हें अनाकार उपयोग कहते हैं।

१२१. कूटना, पीटना, रोना तथा घर के अनेक कार्यह्नइन सबको वे अनाकार उपयोग कहते हैं। उन बुद्धि विकल लोगों में विवेक नहीं है।

१२२. आश्रव, संवर और निर्जरा के भेदों का कोई पार नहीं है। जो इन सबको अनाकार उपयोग कहते हैं, उन्होंने मिथ्यात्व को स्वीकार किया है।

१२३. एक पंसारी की दुकान थी। उस दुकान में विविध प्रकार का किराना था। प्रत्येक किराने की अलग-अलग थैली थी। पंसारी हर एक थैली में क्या है, जानता था।

१२४. उस पंसारी का बेटा बुद्धिविहीन था। उस मूर्ख में विवेक नहीं था। उसने सारी थैलियों को खोलकर किराने का एक ढ़ेर लगा दिया।

१२५. उसकी दुकान में दो थैले थे। उसने उस किराने को उन दोनों में भर दिया। वह मन में सोचता था-मैं बहुत चतुर हूं। मेरे जैसा चतुर मेरा पिता भी नहीं है।

१२६. पंसारी का बेटा कपूत हो गया। उसने सारी पूंजी का नाश कर दिया। इस दृष्टान्त के अनुसार जो निह्नव होते हैं, उन्होंने सम्यक्त्व का विनाश किया है।

१२७. जीव के अनन्त पर्याय होते हैं, जो परस्पर मिलती नहीं हैं। विपरीत बुद्धि के निह्नवों ने उन सबको एकमेक कर दिया।

१२८. सम्यक्त्व और मिथ्यात्व-इन पर्यायों को वे अनाकार उपयोग कहते हैं। ऐसे विवेक शून्य निह्नवों के मिथ्यात्व का रोग लग गया।

१२९. वले चारित अचारत री परजाय नें रे लाल, त्यांने कहें मणागार उपीयोग हो।
एहवा हीया फूटा निन्वां तणी रे लाल, आ सरधा घणी छें अजोग हो।।

१३०. इत्यादिक जीवरी परजाय नें रे लाल, कर दीधी भेल सभेल हो।
जूइ जूइ परजाय नही ओलखी रे लाल, ते बोलें बालक जिम वेहल हो।।

१३१. सागार नों गुण जांणवा तणो रे लाल, देखवा रे गुण छें मणागार हो।
और गुण अवगुण यांमें कोई नहीं रे लाल, ते करो हीया में निस्तार हो।।

१३२. सागार मणागार उपीयोग नें रे लाल, संवर आश्रव म सरधो कोय हो।
जो संका पड़े इण वात में रे लाल, तो सुतर में लो जोय हो।

१३३. समत अठारे सेंतालेस में रे, फागुण विद आठम शनीसर वार हो।
जोड़ कीधी जीवांनें प्रति बोधवा रे लाल, नेणवा सहर मझार हो।।

●

१२९. वे चारित्र-अचारित्र के पर्यायों को अनाकार उपयोग कहते हैं। ऐसे बुद्धिहीन निह्नवों की यह श्रद्धा अत्यन्त अयोग्य है।

१३०. इस प्रकार जीव के अन्य अनेक पर्यायों को उन्होंने एकमेक कर दिया है। उन्होंने भिन्न-भिन्न पर्यायों को नहीं पहचाना। वे बालक की तरह बिना बोध के बोलते हैं।

१३१. साकार उपयोग का गुण केवल जानने का है तथा अनाकार उपयोग का गुण केवल देखने का है। इनमें अन्य गुण और अवगुण नहीं हैं। इस बात पर अन्तःकरण में विचार कर निर्णय करें।

१३२. साकार और अनाकार उपयोग को संवर अथवा आश्रव न मानें। यदि इस बात में शंका हो तो सूत्र देख लेना चाहिए।

१३३. नैणवा शहर में भव्य जीवों को प्रतिबोध देने के लिए मैंने यह जोड़-रचना विक्रम संवत् १८४७ फाल्गुन कृष्णा अष्टमी शनिवार को की।

●

दुहा

१. च्यार कर्म घणघातीया, अभ्र पटल ज्यूं जीवरे ताहि।
ग्यांनावर्णी दरसणावर्णी मोहणी, चोथों कर्म अंतराय।।

२. च्यार कर्म खयउपसम हुआं, नीपजे निरवद भाव।
ते निजगुण सुध परजाय छें, त्यांरों जूदों जूदों छें सभाव।।

३. उजला लेखें सगलां भणी, निरवद कह्या भगवान।
केइ गुणां सूं पाप कर्म रुके, उजला लेखे सर्व निधान।।

४. अें च्यारूं कर्म उदे हुवां, पड़े गुणां री हाण।
जे जे गुण विगड़े जिण कर्म थी, ते जाणें चतुर सुजांण।।

५. गुण विगड़े जिण जिण कर्म थी, ते भोला नें खबर न काय।
तिणसूं ऊंधी करें छें परूपणा, तिणरा जाब सुणों चित्त ल्याय।।

ढाल : १०

(लय : धीज करे सीता सती रे लाल)

निज गुण रो निरणों करों रे लाल।।

१. ग्यांनावर्णी कर्म खयउपसम हुआं रे, आठ गुण पांमें श्रीकार रे।।सुगणनर।
च्यार ग्यांन नें तीन अग्यांन नें रे लाल, वले सुतर नों भणवो सार रे।।सुगणनर।।

२. ग्यांनावर्णी कर्म रा उदा थकी रे, ग्यांन तणों छें विगाड़ रे।
ओर गुण नही विगडे एहथी रे लाल, तिणमें संका नही छें लिगार रे।।

दोहा

१. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायह्नये चार घनघाती कर्म हैं, जो जीव के ज्ञान आदि गुणों के लिए बादलों के पटल की तरह हैं।

२. इन चार कर्मों के क्षयोपशम होने पर निरवद्य भाव निष्पन्न होते हैं, जो जीव के निजगुण और शुद्ध पर्याय हैं। उनके भिन्न-भिन्न स्वभाव हैं।

३. उज्ज्वलता की अपेक्षा से इन सबको भगवान ने निरवद्य कहा है। इनमें से कई गुणों से पाप कर्म रुकते हैं। उज्ज्वलता की अपेक्षा से सभी निधि रूप-उत्तम हैं।

४. इन चारों कर्मों के उदय में आने से जीव के गुणों की हानि होती है। चतुर-विज्ञ पुरुष किस कर्म से कौन-कौन से गुण विकृत होते हैंह्नयह जानता है।

५. किस कर्म के उदय से कौनसे गुण विकृत होते हैंह्नइसका अज्ञ जनों को पता नहीं है। उससे वे विपरीत प्ररूपणा करते हैं। उनकी मिथ्या प्ररूपणा के जबाब एकाग्र चित्त होकर सुनें।

ढाल : दस

निज गुण का निर्णय करें।

१. ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जीव आठ उत्तम गुणों को प्राप्त करता हैह्नचार ज्ञान, तीन अज्ञान और उत्तम सूत्र स्वाध्याय की बुद्धि।

२. ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से ज्ञान की हानि होती है। इस कर्म से ज्ञान के सिवाय अन्य गुण विकृतह्नविनष्ट नहीं होते। उसमें जरा भी शंका नहीं है।

३. दर्सणावर्णी कर्म खयउपसम हूआं रे, आठ बोल पामें श्रीकार रे।
पांच इन्द्री नें दर्शण तीन नें रे लाल, ओर गुण नही पामें लिगार रे।।

४. दर्शणावर्णी उदें हूआं रे, मणागार दर्शण रो विगार रे।
ओर गुण इणथी विगरें नही रे लाल, इणरों तों ओहीज विचार रे।।

५. मोहणी कर्म खयउपसम हूआं रे, आठ बोल नीपजें विसिष्ट रे।
च्यार चारित नें देस विरत पांचमों रे लाल, वले खयउपशम तीन दिष्ट रे।।

६. ते मोहणी कर्म उदें हुवां रे, समकत चारित नों विगाड रे।
तिण खयउपसम हुवां गुण नीपनां रे लाल, त्यांरो विगारणहार रे।।

७. अंतराय कर्म खयउपसम हूआं रे, आठ बोल पांमे तंतसार रे।
पांच लबध नें वीर्य तीन नें रे लाल, आठ गुण उजला श्रीकार रे।।

८. अंतराय कर्म उदें हूआं रे, लबध नें वीर्य री पडें हांण रे।
अनेक वस्त आडी होय रही रे लाल, तिणरी चोखी करजो पिछांण रे।।

९. केइ मुढ मिथ्याती इम कहे रे, मोह उदें सूं विगडे उपीयोग रे।
कर्म बांधे विगड्या उपीयोग थी रे लाल, तिणसूं बूड रह्या छें लोग रे।।
सरधा सुणों निन्वां तणी रे लाल।।

१०. दंसण मोहणी उदे हुवे रे, जब पांमें जीव मिथ्यात रे।
तिण मिथ्यात नें कहें सागार छें रे लाल, सागार विगस्यों कहें छें साख्यात रे।।

३. दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जीव आठ उत्तम गुणों को प्राप्त करता हैह्नपांच इन्द्रिय और तीन दर्शन। इनके सिवाय अन्य कोई गुण प्राप्त नहीं होते।

४. दर्शनावरणीय कर्म के उदय से अनाकार उपयोग की हानि होती है। इससे अन्य गुण विकृतह्नविनष्ट नहीं होते। इसका विषय इतना ही है।

५. मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से आठ विशिष्ट गुण निष्पन्न होते हैंह्नचार चारित्र, देश विरति और तीन क्षायोपशमिक दृष्टियां।

६. उस मोहनीय कर्म के उदय से सम्यक्त्व और चारित्र की हानि होती है। मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से जो गुण उत्पन्न होते हैं, उदय उन गुणों को विनष्ट करने वाला होता है।

७. अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से जीव आठ उत्तम गुण प्राप्त करता हैह्नपांच लब्धि और तीन वीर्य। ये आठों उत्तम-उज्ज्वल गुण हैं।

८. अन्तराय कर्म के उदय से जीव के लब्धि और वीर्य गुण की हानि होती है। अन्तराय कर्म का उदय अनेक वस्तुओं की प्राप्ति में विघ्नरूप होता है। उसकी अच्छी तरह पहचान करें।

९. कई मूढ़-मिथ्यात्वी ऐसा कहते हैं कि मोहनीय कर्म के उदय से उपयोग विकृत होता है। उपयोग के विकृत होने से जीव कर्मों का बंध करता है। उससे लोग डूब रहे हैं। निह्नवों की श्रद्धा सुनें।

१०. जब दर्शन मोहनीय कर्म का उदय होता है तब जीव मिथ्यात्व को प्राप्त करता है। उस मिथ्यात्व को वे साकार उपयोग कहते हैं। इस तरह दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से वे प्रत्यक्षतः साकार उपयोग की विकृति बतलाते हैं।

११. दंसण मोहणी खयउपसम हुवें रे, जब पांमें समकत सार रे।
तिण समकत नें कहे सागार छें रे लाल, तिणमें साच नही छें लिगार रे।।

१२. चारित मोहरा उदा थकी रे, नीपजें माठी इविरत अजोग रे।
तिण इविरत नें कहें मणागार छें रे लाल, तिणरे लागों मिथ्यात नो रोग रे।।

१३. चारित मोहिणी खयउपसम हूआं रे, चारित नीपजें सुखदाय रे।
तिण चारित नें कहे मणागार छें रे लाल, एहवी कुड़ी करें छें बकवाय रे।।

१४. समकत तों सागार निश्चें नही रे, मिथ्यात पिण नही सागार रे।
चारित ते मणागार निश्चें नही रे लाल, अचारित पिण नही मणागार रे।।

१५. मोह कर्म उदें सूं विगडे नही रे, सागार नें मणागार रे।
दयादिक गुण विगडे मोह थी रे लाल, कोइ बुधवंत करजों विचार रे।।

१६. मोहकर्म खयउपसम हुआं रे, दयादिक गुण नीपजे अठार रे।
त्यांरो जूओं जूओं निरणों कहूं रे लाल, तो कहितां न आवें पार रे।।

१७. वले निपजावें तों नीपजे रे, मोहणी कर्म परीयां हांण रे।
निरवद जोग निपजावें तो नीपजें रे लाल, वले धर्म नें श्रुकल ध्यांन रे।।

१८. भली लेस्या नीपजावें तों नीपजे रे, भला अधवसाय नें परिणाम रे।
इत्यादिक गुण नीपजाया नीपजें रे लाल, ते मोह दूरा हूआं ताम रे।।

११. दर्शन मोहनीय कर्म का जब क्षयोपशम होता है तब जीव सारपूर्ण सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है। उस सम्यक्त्व को वे साकार उपयोग कहते हैं, किंतु उसमें जरा भी सत्य नहीं है।

१२. चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से जीव के निकृष्ट और बुरी अव्रत उत्पन्न होती है। जो उस अव्रत को अनाकार उपयोग कहता है, उसके मिथ्यात्व का रोग लग गया है।

१३. चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से सुखदायी चारित्र उत्पन्न होता है। उस चारित्र को अनाकार उपयोग कहते हैं। ऐसी मिथ्या बकवास करते हैं।

१४. सम्यक्त्व तो निश्चय ही साकार उपयोग नहीं है और मिथ्यात्व भी साकार उपयोग नहीं है। चारित्र निश्चय ही अनाकार उपयोग नहीं है और अचारित्र भी अनाकार उपयोग नहीं है।

१५. मोहनीय कर्म के उदय से साकार और अनाकार उपयोग नहीं बिगड़ते हैं। मोह से केवल दया आदि गुणों की विकृति होती है। बुद्धिमान इस बात पर विचार करें।

१६. मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से दया आदि अठारह गुण उत्पन्न होते हैं। यदि उनका पृथक्-पृथक् विवेचन किया जाए तो कहने से पार नहीं आएगा।

१७. मोहनीय कर्म के विलय (क्षयोपशम आदि) से प्रयत्न करने पर और गुण भी निष्पन्न हो सकते हैं और प्रयत्न पूर्वक निरवद्य योग करने पर धर्म और शुक्लध्यान को भी निष्पन्न किए जा सकते हैं।

१८. कोई उत्पन्न करना चाहे तो शुभ लेश्यायें उत्पन्न होती हैं। इसी तरह शुभ अध्यवसाय और परिणाम उत्पन्न होते हैं। मोह कर्म के दूर होने पर उत्पन्न किए जाए तो ऐसे अनेक गुण उत्पन्न होते हैं।

१९. वले मोह कर्म दूरा हूआं रे, मिट जाअें तिणरों मिथ्यात रे।
वले वीतराग भाव नीपजे रे लाल, राग धेष खय जात रे।।

२०. इत्यादिक गुण नीपजें अति घणा रे, ते सगलाई गुण श्रीकार रे।
ते पांमें मोहणी खयउपसम हूआं रे लाल, त्यांरो कहितां न पामें पार रे।।

२१. ते मोहणी कर्म उदे हूआ रे, समकत नें चारित रों विगाड रे।
मोह खयउपसम हूआं गुण नीपना रे लाल, त्यां गुणांरी विगारणहार रे।।

२२. समकत विगरें मिथ्याती हूओ रे, दंसण मोह उदे सूं जांण रे।
चारित मोह कर्म रा उदा थकी रे लाल, पडी कूण कूण गुणांरी हांण रे।।

२३. दया तणों गुण मिट गयो रे, हिंसा रों अवगुण परगट थाय रे।
झूठ चोरी मैथुन परिग्रहो रे लाल, एहवा आंगुण वधें छें ताहि रे।।

२४. खिमा नरमाइ विगडें मोहथी रे, वले सरलपणो संतोष रे।
क्रोध मान माया लोभ परगटे रे लाल, मोह कर्म उदे सूं एहवा दोष रे।।

२५. वितरागपणों विगाड दे रे, राग धेष वधे तिणसूं तांम रे।
घणा कर्म बंधें राग धेष थी रे लाल, वले माठा वरतें परिणांम रे।।

२६. वले मोह कर्म रा उदा थकी रे, इविरत नीपजें तांम रे।
सतरे पाप शेवण रो उदम करे रे लाल, अनेक सावद्य करे कांम रे।।

२७. सतरे पापथानक सेवे जीवड़ो रे, माठी लेस्या माठा अधयवसाय रे।
ध्यावे आरत रुदर ध्यान नें रे लाल, चारित मोह उदें सूं ताहि रे।।

१९. मोहनीय कर्म के दूर होने पर उसका (जीव का) मिथ्यात्व मिट जाता है। उसके वीतराग भाव उत्पन्न होता है और राग-द्वेष क्षय को प्राप्त होते हैं।

२०. इत्यादिक अनेक गुण मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होते हैं। वे सभी गुण उत्तम होते हैं। कहने से उनका पार नहीं पाया जा सकता।

२१. उस मोहनीय कर्म के उदय होने पर सम्यक्त्व और चारित्र की हानि होती है। मोह के क्षयोपशम से जो गुण उत्पन्न हुए हैं, उदय उन गुणों को विकृत करने वाला होता है।

२२. दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से सम्यक्त्व बिगड़ती है और जीव मिथ्यात्वी होता है। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से किन-किन गुणों की हानि होती है ?

२३. दया का गुण मिट जाता है। हिंसा का अवगुण प्रकट होता है। झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह जैसे अवगुण बढ़ते हैं।

२४. मोहनीय कर्म के उदय से क्षमा, नम्रता, सरलता, और संतोषह्नये से गुण बिगड़ते हैं तथा क्रोध, मान, माया और लोभ जैसे दोष प्रकट होते हैं।

२५. मोहनीय कर्म का उदय वीतराग भाव को बिगाड़ देता है। उससे राग, द्वेष बढ़ते हैं। राग-द्वेष से बहुत कर्म बंधते हैं तथा अशुभ परिणाम वर्तते हैं।

२६. मोह कर्म के उदय से अविरति उत्पन्न होती है। जीव सतरह प्रकार के पाप सेवन का उद्यम करता है। वह अनेक सावद्य कार्य करता है।

२७. चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से जीव सतरह पाप स्थानों का सेवन करता है। अशुभ लेश्या और अशुभ अध्यवसाय प्राप्त करता है तथा आर्त्त और रौद्र ध्यान करता है।

२८. माठा जोग वरते छें जीवरा रे, ते पिण मोह उदा सूं जांण रे।
कहि कहि नें कितरों कहूं रे लाल, ते करजों हीया में पिछांण रे।।

२९. मोहणी कर्म खयउपसम हूआं रे, गुण नीपजें श्रीकार रे।
ते उदें हूआं यांहीज गुणां तणी रे लाल, आहीज विगारणहार रे।।

३०. कोइ मूढ मिथ्याती इम कहे रे, ग्यांन आडो छें मोहणी कर्म रे।
ते ववेक विकल सुधबुध विनां रे, ते तो भूलों अग्यांनी भर्म रे।।

३१. जो ग्यांन आडों हुवें मोहणी रे, मोह बारमें गुणठाणें हुवें दूर रे।
जब केवलग्यांन न उपजे रे लाल, जब तो पडी सरधा माहे धूर रे।।

३२. ग्यान आडों कहे कर्म मोहणी रे, ते पूरा मूढ गिंवार रे।
आप डूबें ओरांनें डबोवता रे, साची सरधा सूं करें छें खुवार रे।।

३३. नाण मोह चाल्यो सुतर मझे रे, ते ग्यांन में उपजें व्यामोह रे।
ते ग्यांनावर्णी रा उदा थकी रे लाल, ते मोह निश्चेंइ न कोय रे।।

३४. नाणमूढे कह्यों सूतर मझे रे, ग्यानावर्णी उदे सूं जांण रे।
व्यामोह परें तिण जीव ने रे लाल, तिणरी पूरी न परें पिछांण रे।।

३५. ग्यानावर्णी रा उदा थकी रे, व्यामोह पांमें छें ताहि रे।
तिण व्यामोह नें थाप्यो मोहणी रे लाल, भोलां नें खबर न काय रे।।

३६. दिसा मोहेण कह्यों आवसग मझे रे, ते दिस नो पांम्यो व्यामोह रे।
ते पिण ग्यांनवर्णी रा उदा थकी रे लाल, ते हिरदें विचारी जोय रे।।

२८. मोह कर्म के उदय से जीव के अशुभ योग वर्तते हैं-ऐसा जानें। कह-कह कर कितना कह सकता हूं। अन्तःकरण में इसकी पहचान करें।

२९. मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से उत्तम गुण उत्पन्न होते हैं। उदय होने पर यही मोहनीय कर्म उन्हीं गुणों को बिगाड़ने वाला होता है।

३०. कई मूढ़-मिथ्यात्वी ऐसा कहते हैं कि मोहनीय कर्म ज्ञान को आच्छादित करता है। जो ऐसा कहते हैं वे विवेक-विकल और सुध-बुध रहित हैं।

३१. मोहनीय कर्म बारहवें गुणस्थान में दूर हो जाता है। यदि मोहनीय कर्म ज्ञान को आच्छादित करता है और यदि बारहवें गुणस्थान में उसके दूर होने पर भी केवल ज्ञान नहीं होता हो तब इस मान्यता को निस्सार समझना चाहिए।

३२. जो लोग ज्ञान का आवारक कर्म मोहनीय बतलाते हैं, वे पूरे ही मूढ़ और अज्ञ हैं। ऐसी मिथ्या प्ररूपणा कर वे स्वयं डूबते हैं और दूसरों को डुबोते हैं। इस तरह वे सच्ची श्रद्धा के साथ खिलवाड़ करते हैं।

३३. 'ज्ञान मोह' शब्द सूत्र में आया है। ज्ञान में व्यामोह उत्पन्न होना ज्ञान मोह है। वह ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होता है। ज्ञान मोह निश्चय ही मोहनीय कर्म नहीं है।

३४. सूत्र में 'ज्ञान मूढ़' शब्द प्रयुक्त हुआ है। ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से जीव के ज्ञान में व्यामोह उत्पन्न होता है। इससे वह ज्ञान मूढ़ होता है। उसकी वे पूरी पहचान नहीं करते।

३५. ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से जीव व्यामोह को प्राप्त होता है। उस व्यामोह को मोहनीय कर्म स्थापित कर दिया। भोले लोगों को इसका तनिक भी पता नहीं है।

३६. आवश्यक सूत्र में 'दिशा मोह' कहा है। दिशा मोह का अर्थ है दिशा का व्यामोह होना। वह भी ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होता है। यह मन में विचार कर देखें।

३७. ग्यांनावर्णी रा उदा थकी रे, ग्यांन भूले सांसो पर जाय रे।
दंसणमोहणी रा उदा थकी रे लाल, पदार्थ उंधो सरधाय रे।।

३८. मोहणी कर्म जाबक खय गयो रे, जब आयो बारमें गुणठांण रे।
जो ग्यांन आडो हुवें मोहणी रे लाल, ते खय गयां उपजे केवलनांण रे।।

३९. मोहणी कर्म जाबक उपसम्यो रे, इग्यार में गुणठांण रे।
जो ग्यांन आडो हुवें मोहणी रे लाल, ते उपसम्या उपजें उपसम नांण रे।।

४०. मुते कहितां मूकणा सर्व कर्म सु रे, त्यांनें कहिजे सिध भगवांन रे।
त्यांनें अमूकांणा सरधें कर्म सूं रे लाल, ते मिथ्याती री ऊंधी सरधान रे।।

४१. अमूते मुकांणा नही कर्म थी रे, ते तो संसारी जीव रे।
त्यांने सरधे मूंकांणा कर्म थी रे लाल, तिणरें निश्चें मिथ्यात री नीव रे।।

४२. ए नवमो नें दसमों मिथ्यात छें रे, सूतर ठांणा अंग मांह रे।
ते दोनूंइ मिथ्यात उत्थाप नें रे लाल, ओर बणाया छें ताहि रे।।

४३. मूरती नें अमूर्ती वणांवीया रे, मूकाणा नें अमूकांणा री ठोर रे।
वले जोड करी तिण उपर रे लाल, कर कर झूठा झोर रे।।

४४. कहे एक जांण्यां जाणें सहू रे, नव जांण्यां न रहें कहें एक रे।
एहवी करें छें परूपणा रे लाल, कर कर ताण वशेख रे।।

४५. यांहीज दसां बोलां मांहिलो रे, जो उ एक बोलरों हुवें अजांण रे।
तो उहीज उणरी सरधा थकी रे लाल, जाबक मूंढ अयांण रे।।

३७. ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से जीव ज्ञान को भूल जाता है। उसकी कमी हो जाती है। दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से जीव पदार्थों को विपरीत श्रद्धने लगता है।

३८. मोहनीय कर्म के परिपूर्ण क्षय होने पर बारहवें गुणस्थान की प्राप्ति होती है और वीतरागता उपलब्ध होती है। यदि मोहनीय कर्म ज्ञान का अवरोधक हो तो उसके क्षय होने पर केवल ज्ञान उत्पन्न होना चाहिए। (पर वैसा नहीं होता।)

३९. मोहनीय कर्म के परिपूर्ण उपशम होने पर ग्यारहवें गुणस्थान की प्राप्ति होती है। यदि मोहनीय कर्म ज्ञान का अवरोधक हो तो उसके उपशम होने पर उपशम निष्पन्न ज्ञान उत्पन्न होना चाहिए। (पर वैसा नहीं होता।)

४०. मुक्त का अर्थ है जो समस्त कर्मों से रहित हो गए। उन्हें सिद्ध भगवान कहा जाता है। जो उन्हें अमुक्त मानते हैं। वे मिथ्यात्वी हैं। वह मिथ्यात्वी की विपरीत श्रद्धा है।

४१. अमुक्त का अर्थ है जो कर्म से मुक्त-विरहित नहीं हुए। वे संसारी जीव होते हैं। जो उन्हें मुक्त श्रद्धता है, उसके निश्चय ही मिथ्यात्व की नींव है।

४२. स्थानांग सूत्र में ये क्रमशः नौवें और दसवें मिथ्यात्व हैं। इन दोनों मिथ्यात्वों की उत्थापना कर उन्होंने इनके स्थान में अन्य दो मिथ्यात्व बनाए हैं।

४३. मुक्त और अमुक्त के स्थान पर मूर्त और अमूर्त ये दो मिथ्यात्व बनाए हैं और मिथ्या विवाद करते हुए इस पर रचना की है।

४४. वे कहते हैंह्नएक मिथ्यात्व को जान लेने से जीव सब मिथ्यात्व को जान लेता है और नव मिथ्यात्व को जान लेने पर कोई भी मिथ्यात्व बिना जाने नहीं रहता। बार-बार विशेष खींचतान करते हुए वे ऐसी प्ररूपणा करते हैं।

४५. यदि मिथ्यात्व के इन दसों बोलों में से वह एक का भी अजानकार है तो स्वयं के श्रद्धान से ही वह अत्यन्त मूढ़ और अज्ञानी है।

४६. कहें नव जांण्यां एक रहे नहीं रे, इम कहें छें कर कर तांण रे।
तिण दोय न जाण्यां दसा माहिला रे, तो उणरे लेखें ऊ जाबक अजांण रे।।

४७. दोय नही जाण्यां ते जिहांइ रह्या रे, वताय दीया दोय ओर रे।
उसभ कर्म जोगे ऊंधी पडी रे, ते तों बूडें छें कर कर झोर रे।।

४८. जो उ मूरती अमूरती छोड नें रे, कहें मूकांणा नें अमूकाण रे।
उणरें लेखें मिथ्याती उ थेटको रे, उणरी सरधा लेजों पिछांण रे।।

४९. मिथ्यादिष्ट खयउपशम हुइ तेहनी रे, नास्त पाडी छें विवध प्रकार रे।
ते पिण मूढ मिथ्याती जाणें नही रे, तिणरो तो घणों छें विस्तार रे।।

५०. समत अठारें सेंतालेसमें रे, फागुण सुद में ताहि रे।
जोड कीधी निन्व उलखायवा रे, माधोपुर सहर रे माहि रे।।

•

४६. वह बार-बार खींचतान करते हुए ऐसा कहता है कि नौ जान लेने पर एक जानना बाकी नहीं रहता। पर उसने तो दस में से दो को नहीं जाना तो वह स्वयं के अनुसार ही बिल्कुल अज्ञानी है।

४७. दो को नहीं जाना यह तो कहीं रहा, दो अन्य और बता दिए। अशुभ कर्म के योग से बुद्धि विपरीत हो गयी है। वह कुछ का कुछ कर खींचतान करते हुए डूब रहा है।

४८. यदि वह मूर्त और अमूर्त को छोड़कर मुक्त और अमुक्त भी कहे तो इनको न समझने से स्वयं के अनुसार ही वह प्रारंभ से मिथ्यात्वी है। मुक्त और अमुक्त संबंधी उसके श्रद्धान को पहचानें।

४९. मिथ्यादृष्टि क्षयोपशम निष्पन्न है। उसने इसे विविध प्रकार से अस्वीकार कर दिया है। मूढ़-मिथ्यात्वी यह भी नहीं जानता, जबकि (आगम में) इसका बहुत विस्तार है।

५०. विक्रम संवत् १८४७ के फाल्गुन शुक्ला पक्ष में माधोपुर शहर में निह्नव मत का बोध कराने के लिए (इस गीत की) रचना की है।

●

दुहा

१. केई मूढ मिथ्याती जीवड़ा, जिण मारग ना अजांण।
ते ग्रहस्थ री पांचूं इंद्रां भणी, सावद्य कहें छें तांण तांण।।

२. जो कोइ ग्रहस्थ आंधो हुवें, तेहनें कहे मिटियो देखण रों पाप।
ते आश्‍व घटीयो कहे तेहनें, इम कर रह्या मूढ विलाप।।

३. वले बेंहरो कांनें हुवें, ते सुणवा रो मिटीयो कहें पाप।
ज्यूं ज्यूं इंद्री घटे ज्यूं ज्यूं गुण वधें, एहवी करे अग्यांनी थाप।।

४. इंद्री घटीयां गुण नीपनों कहें, इंद्री वधीयां गुण घट जाय।
कहें इंद्र्यां में अवगुण घणा, ते चोडें भूला जाय।।

५. जो इंद्रयां सावद्य हुवें, तो इंद्री घटे ते करणो उपाय।
जे इंद्र्यां नें सावद्य कहें, तिणरी सरधा रो ओहीज न्याय।।

६. पाप लागे छें, राग धेष थी, इंद्रयां थी न लागें पाप।
ए वीर वचन उत्थापीयो, तिणमें होसी घणों संताप।।

७. आंधा हुवां रो पाप टलियो कहे, ते पूरा मूढ अयांण।
तिणरा थोडा सा जाब परगट करूं, ते सुणजों चुत्तर सुजांण।।

दोहा

१. कई मूढ़-मिथ्यात्वी पुरूष जिन मार्ग से अनभिज्ञ हैं। वे गृहस्थ की पांचों इन्द्रियों को आग्रह कर-कर सावद्य बताते हैं।

२. यदि कोई गृहस्थ अन्धा हो जाता है तो कहते हैं कि उसके देखने का पाप मिट गया है और कहते हैं कि उसके आश्रव घट गया है। इस प्रकार वे मूढ़-जन विलाप कर रहे हैं।

३. यदि कोई कान से बहरा हो जाता है तो वे कहते हैं कि उसके सुनने का पाप मिट गया है। उनका कथन है कि जैसे-जैसे इन्द्रियां घटती हैं, वैसे-वैसे गुणों की वृद्धि होती जाती है। अज्ञानी लोग ऐसी स्थापना करते हैं।

४. जो इन्द्रियों के घटने से गुणों की वृद्धि बतलाते हैं और इंद्रियों के बढ़ने से गुणों की हानि तथा जो यह कहते हैं कि इन्द्रियों के होने में अनेक अवगुण हैं वे प्रत्यक्षतः भूले हुए हैं।

५. यदि इन्द्रियां सावद्य हैं तो फिर उन्हें इन्द्रियों को घटाने का उपाय करना चाहिए। जो इन्द्रियों को सावद्य कहते हैं उनकी श्रद्धा का यही न्याय है।

६. पाप तो राग, द्वेष से लगता है। इन्द्रियों से पाप नहीं लगता। जो भगवान के इस वचन को उत्थापित करते हैं, उन्हें बहुत संताप होगा।

७. जो यह कहते हैं कि अंधा होने पर पाप कर्म रुक जाता है, वे पूरे ही मूढ़ और अज्ञ हैं। उनके थोड़े से उत्तर प्रकट कर रहा हूं। चतुर और सुज्ञ लोग उन्हें सुनें।

ढाल : ११

(लय : जगत गुरु तिसला नन्दन वीर)

चुत्तर नर समझो ग्यांन विचार।।

१. जात कुल बल रूप नें, तप लाभ सूतर नें ठुकराय।
ए आठूं पाम्यां मद आवे जीव नें, तिणसु पाप कर्म लागे आय।।

२. ज्यूं पांचूं इंद्री पांमी जीवड़ें, तिणसूं शब्दादिक वेदाय।
जो राग धेष आंणे त्यां उपरें, तो पाप कर्म बंधाय।।

३. जात नें कुल बल रूप नें, तप लाभ सुतर नें ठुकराय।
ए आठूं पांम्यां मद आवें नही, तिणरे पाप न लागें आय।

४. ज्यूं पांचूं इंद्री पांमी जीवड़े, तिणसु शब्दादिक वेदाय।
जो राग धेष न आंणें त्यां उपरे, तिणसूं पाप न लागें ताहि।।

५. जात कुल बल रूप नें, तप लाभ सुतर नें ठुकराय।
अें आठोइ मद रा कारण कह्या, पिण अेंतों नही मद रा उपाय।।

६. आठ बोल ज्यूं पांचोइ इंदस्यां, अें पिण कारण कही छें ताहि।
आठ बोलां सूं पाप लागे नही, ज्यूं इंदस्यांसु पिण पाप न थाय।।

७. जो पांच इंदरी सावद्य हुवें, तो अें पिण आठुं सावद्य होय।
जो अें आठूं बोल सावद्य नही, तो पांचूं इंदरी सावद्य नही कोय।।

८. कोइ कहें आंधों हुवें छें तेहनें, देखण रो पाप टल जाय।
तो सुतर भण नें कोइ वीसस्यो, तिण रे टलीयो सुतर मद ताहि।।

ढाल : ग्यारह

चतुर नर ज्ञान को समझें।

१. जाति, कुल, बल, रूप, तप, लाभ, श्रुत और ऐश्वर्यह्नइन आठों को पाने पर यदि जीव के मद आता है तो उससे उसके पाप कर्म लगते हैं।

२. इसी तरह जीव पांचों इन्द्रियों को पाता है और उनसे शब्दादिक विषयों का अनुभव होता है। यदि वह इन शब्दादिक विषयों पर राग-द्वेष लाता है तो उसके पाप कर्मों का बंध होता है।

३. जाति, कुल, बल, रूप, तप, लाभ, श्रुत और ऐश्वर्यह्नइन आठों को पाने पर भी जिसके मद नहीं आता, उसके किंचित् भी पाप कर्म नहीं लगते।

४. इसी तरह जीव पांचों इन्द्रियों को पाता है और उनसे शब्दादिक विषयों का अनुभव होता है। यदि वह इन शब्दादिक विषयों पर राग-द्वेष नहीं लाता तो उसके उनसे किंचित् भी पाप नहीं लगता।

५. जाति, कुल, बल, रूप, तप, लाभ, श्रुत और ऐश्वर्यह्नये आठों मद के कारण कहे गए हैं, पर ये मद के उपाय, उपादान नहीं हैं।

६. मद के आठ बोलों की तरह ही पांच इन्द्रियों को भी पाप का कारण कहा है, जिस तरह मद के इन आठ बोलों से पाप नहीं लगता उसी तरह इन्द्रियों से भी पाप नहीं लगता।

७. यदि पाँचों इन्द्रियां सावद्य हैं तो मद के आठ बोल भी सावद्य होंगे। यदि ये आठ बोल सावद्य नहीं हैं तो पाँचों इन्द्रियां भी सावद्य नहीं हैं।

८. यदि कोई कहता है कि जो अंधा हो जाता है उसके देखने का पाप दूर हो जाता है तब तो सूत्र पढ़कर जो भूल जाता है उसका श्रुत मद भी दूर हो जाना चाहिए।

९. कानें बेंहरो हूवों तेहनें, सुणवारों पाप मिटयो ताहि।
कोइ तप करनें भागल हुवों, तिणरें पिण तप मद मिट जाय।।

१०. इण विध पांचूं इंदरी हीणी पस्यां, त्यारो पाप न लागें आय।
तो जात कुलादिक आंठूइ भिष्ट हुवें, तिणरे आठूंइ मद मिट जाय।।

११. पांच इंदरी तो सावद्य नही, जातादिक आठ मद नही ताहि।
राग धेष ओलखायों छें एहथी, ते निरणों करों घट माहि।।

१२. इंद्री घटीयां सूं गुण वधीयों कहें, ते जिण मारग रा अजांण।
इंद्री घटें छें उसभ उदें हूवां, तिणरी विकलां नें नही छें पिछांण।।

१३. उणरी सरधा रें लेखें इंदरीहार नें, थावर में उपनां गुण होय।
जात कुलादिक आठां तणो, त्यांरों मद न आवें कोय।।

१४. उणरें लेखें मिनख छें दलदरी, हीयाफूट इंद्रीहीण होय।
जातादिक आठूं हीणा हुवां, तिणरें मद नही आवें कोय।।

१५. जीव नीच जात माहे उपनों, तिणरे जात रों मद आवें नाहि।
जो नीच कुल में जीव उपनो, तो कुल मद नही आवें मन मांहि।।

१६. जो बल करनें निरबल हुवें, तो बल रो मद नावें लिगार।
जो रूप में जीव करूप हुवें, तो रूप रों नही आवें अहंकार।।

९. जो कानों से बहरा हो जाता है यदि उसके सुनने का पाप टल जाता हो तब तो जो तपस्या कर उसे भंग कर देता है, उसका तप-मद भी दूर हो जाना चाहिए।

१०. यदि इसी प्रकार पाँचों इंद्रियों के हीन-कृश हो जाने से उनके विषय संबंधी पाप न लगते हों तब तो जाति, कुल आदि आठों से भ्रष्ट हो जाता हो उसके आठ मद मिट जाने चाहिए।

११. पाँचों इंद्रियां सावद्य नहीं हैं, जाति आदि आठों मद स्थान भी सावद्य नहीं हैं। इनके नाम से राग-द्वेष की पहचान कराई गई है। अन्तःकरण में इस संबंध में निर्णय करें।

१२. जो इंद्रियों की हानि या क्षति से गुणों की वृद्धि बतलाते हैं वे जिन मार्ग से अनभिज्ञ हैं। इंद्रियां अशुभ कर्मों के उदय से घटती हैंह्नयह उन बुद्धि विकल लोगों को पता नहीं है।

१३. उनकी श्रद्धा के अनुसार तो इंद्रियों की हानि कर स्थावर काय में उत्पन्न होने से गुण होना चाहिए। स्थावर काय में उत्पन्न होने से जाति, कुल आदि आठों ही मद उत्पन्न नहीं होंगे।

१४. उनके अनुसार तो मनुष्य को दरिद्र, बुद्धिहीन और इंद्रिय विकल होना चाहिए। उसे जाति आदि आठों बोलों से रहित होना चाहिए ताकि उसके जाति मद आदि उत्पन्न न हो सकें।

१५. उनके अनुसार यदि कोई नीच जाति में उत्पन्न होता है तो उसके जाति मद नहीं आता। यदि कोई नीच कुल में उत्पन्न होता है तो उसके मन में कुल मद नहीं आता।

१६. जो बल की अपेक्षा से निर्बल हो तो उसके बल का मद किंचित् भी नहीं आता। यदि कोई रूप की दृष्टि से कुरूप हो तो उसके रूप का मद नहीं आता।

१७. तपसा तिणसूं मूल हुवें नही, तिणरें तपसा रो मद नही आय।
असणादिक जाबक मिले नही, तिणनें लाभ रो मद नावें ताहि।।

१८. कोई ठोठ तो सुतर भणे नही, तो सूतर मद नावें ताहि।
जो सिखादिक जाबक मिलें नही, तो ठकुराइ रो मद नही आय।।

१९. जातादिक आठूं पामें पाडूवा, ते उसभ कर्म सूं जांण।
पांचूं इंद्री हीणी पड़े तेहनें, उसभ कर्म उदे हूआ आंण।।

२०. उसभ उदे सूं गुण नीपना कहें, तिणरें उदें हूओं छें मिथ्यात।
उसभ घटीयां सावद्य नीपनों कहे, आतो विकलां वाली छें वात।।

२१. कोई जीव दोभागी नें दलद्री, दुख भोगवें विविध परकार।
तिणनें चावें ते वस्त मिलें नही, तिणरे गुण कहें मूंढ गिवार।।

२२. अेंतों उदें आया कर्म भोगवें, तिणरें गुण नही हुओ लिगार।
गुण तो होसी जद जीवरें, मिलीया त्यागसी तिण वार।।

२३. रूडा रूप छें विविध प्रकार नां, त्यांनें देखें चखू इंद्री तांम।
रूप नें चखू इंद्री सावद्य नही, सावद्य छें खोटा परिणांम।।

२४. रूडा शब्द विविध प्रकार नां, ते सुणें सुरत इंद्री तांम।
शब्द नें सुरत इंद्री सावद्य नही, सावद्य खोटा परिणांम।।

२५. रूडा गंध छें विवध प्रकार नां, त्यांनें वेदें घणइंद्री तांम।
गंध नें घाणइंद्री सावद्य नही, सावद्य खोटा परिणांम।।

१७. जिससे बिल्कुल तपस्या नहीं होती उसके तपस्या का मद नहीं आता। जिसे अशन आदि बिल्कुल प्राप्त नहीं होते, उसको लाभ का मद नहीं आता।

१८. कोई अनपढ़ सूत्र का पठन नहीं करता तो उसके श्रुत मद नहीं आता। यदि किसी को शिष्य आदि बिल्कुल नहीं मिलते तो उसके ऐश्वर्य (प्रभुता) का मद नहीं आता।

१९. जाति आदि आठों हीन प्राप्त होते हैं, उसका कारण जीव के अशुभ कर्म का उदय जानें। जिसकी पाँचों इंद्रियां हीन पड़ती है, उसके अशुभ कर्म का उदय हुआ समझें।

२०. जो अशुभ कर्मों के उदय से गुणों की उत्पत्ति बतलाए हैं उनके मिथ्यात्व का उदय हुआ है। अशुभ कर्मों के घटने से जो सावद्य की उत्पत्ति कहते हैं, वे बुद्धि विकलों की सी बात करते हैं।

२१. कोई दुर्भागी और दरिद्र जीव विविध प्रकार के दुःख भोगता है। उसे इच्छित वस्तु भी प्राप्त नहीं होती, मूढ और अज्ञ उसके गुणों की उत्पत्ति बतलाते हैं।

२२. यह तो उदय में आए हुए कर्मों को भोगता है, उसके किसी गुण की उत्पत्ति नहीं हुई। उसके गुण की उत्पत्ति तो तब होगी जब वह मिली हुई वस्तु का भी त्याग करेगा।

२३. विविध प्रकार के मनोरम रूप हैं जिन्हें चक्षु देखती है। रूप और चक्षु इन्द्रिय दोनों ही सावद्य नहीं हैं। बुरे परिणाम सावद्य हैं।

२४. विविध प्रकार के मनोहर शब्द हैं जिन्हें श्रोत्र इन्द्रिय सुनती है। शब्द और श्रोत्रेन्द्रिय दोनों ही सावद्य नहीं हैं। बुरे परिणाम सावद्य हैं।

२५. विविध प्रकार की मनोज्ञ गन्ध हैं जिन्हें घ्राणेन्द्रिय सूंघती है। गन्ध और घ्राणेन्द्रिय दोनों ही सावद्य नहीं हैं। बुरे परिणाम सावद्य हैं।

२६. रूडा रस विविध प्रकार नां, त्यांनें वेदें रस इंद्री तांम।
रस नें रस इंद्री सावद्य नही, सावद्य खोटा परिणांम।।

२७. रूडा फरस छें विविध प्रकार नां, त्यांनें वेदे फरस इंद्री तांम।
फरस नें फरस इंद्री सावद्य नही, सावद्य खोटा परिणांम।।

२८. शबदादिक पांचूं रूडा उपरें, राग ते सावद्य जांण।
शबदादिक पांचूं पाडुआ उपरें, धेष आवें ते सावद्य पिछांण।।

२९. साध मनोज्ञ आहार करतो थको, जो ग्रिधपणों करें कोय।
ते जिण आगना रों चोर छें, तिणरो चारित कोयला होय।।

३०. साध मनोज्ञ आहार करतों थकों, ग्रिधपणो करें नहीं कोय।
तिणरो चारित न हूवों कोयला, तिणरें कर्म निरजरा होय।।

३१. रस इंद्री सावद्य नही, सावद्य नही मनोज्ञ आहार।
ग्रिधपणा नें सावद्य कह्यों, तिणसूं चारित हूवों छार।।

३२. साधु अमनोज्ञ आहार करतों थकों, जो उ धेष करे तिणवार।
तिणरें चारित में धूवो उठीयो, हूवों श्री जिण आगना बार।।

३३. साधु अमनोज्ञ आहार करतों थकों, जो उ धेष न आंणें लिगार।
तिणरों चारित कुसले रह्यो, वले कर्म तूटा तिणवार।।

३४. रस इंद्री तो सावद्य नही, सावद्य नही अमनोज्ञ आहार।
धेष आयो तिण नें सावद्य कह्यों, तिणसूं हूवों चारित रो विगार।।

३५. देखो राग धेष सावद्य कह्या, ते सावद्य जोग व्यापार।
भगोती रे सतक सातमें, पेंहिला उदेसामें विसतार।।

२६. विविध प्रकार के मधुर रस हैं जिनका रसनेन्द्रिय आस्वादन करती है। रस और रसनेन्द्रिय दोनों ही सावद्य नहीं हैं। बुरे परिणाम सावद्य हैं।

२७. विविध प्रकार के सुन्दर स्पर्श हैं जिनका स्पर्शनेन्द्रिय अनुभव करती है। स्पर्श और स्पर्शनेन्द्रिय दोनों ही सावद्य नहीं हैं। बुरे परिणाम सावद्य हैं।

२८. शब्द आदि पांच मनोज्ञ विषयों के प्रति राग का होना सावद्य है-ऐसा जानें। शब्द आदि पांच अमनोज्ञ विषयों के प्रति द्वेष का होना भी सावद्य है-ऐसा पहचानें।

२९. साधु मनोज्ञ आहार करता हुआ यदि किसी प्रकार का गृद्धि भाव लाता है तो वह जिन आज्ञा का चोर है। उसका चारित्र कोयला-मलिन हो जाता है।

३०. साधु मनोज्ञ आहार करता हुआ यदि किसी प्रकार का गृद्धि भाव नहीं लाता है तो उसका चारित्र कोयला-मलिन नहीं होता और उसके कर्मों की निर्जरा होती है।

३१. रसनेन्द्रिय सावद्य नहीं है और मनोज्ञ आहार भी सावद्य नहीं है। गृद्धिभाव को सावद्य कहा है, उससे चारित्र भस्म होता है।

३२. साधु अमनोज्ञ आहार करता हुआ यदि द्वेष भाव करता है तो उसके चारित्र में धुआं उठने लगता है और वह जिन आज्ञा का लोप करता है।

३३. साधु अमनोज्ञ आहार करता हुआ यदि जरा भी द्वेष भाव नहीं लाता है तो उसका चारित्र कुशल-क्षेम रहता है और उस समय कर्मों की निर्जरा होती है।

३४. रसनेन्द्रिय सावद्य नहीं है। अमनोज्ञ आहार भी सावद्य नहीं है। द्वेष आया, उसे सावद्य कहा है। उससे ही चारित्र की हानि हुई है।

३५. तुम देखो। राग और द्वेष को सावद्य कहा है। वे ही सावद्य योग व्यापार हैं। इसका विस्तार भगवती सूत्र शतक सात के पहले उद्देशक में उपलब्ध है।

३६. श्रेणक राजा नें राणी चेलणा, त्यांरो रूप मनोहर देख।
साधु साधवीयां नीहांणों कीयों, त्यांरा खोटा परिणांम विशेष।।

३७. जब केइ अग्यांनी इम कहे, रूप देख्यों तों कीयों नीहांण।
तिणसूं चखू इंद्री नें सावद्य कहां म्हें, चोखी करी पिछांण।।

३८. घणा साध नें साधव्यां, त्यारो रूप देख्यों तिणवार।
जो चखू इंद्री सावद्य हुवें तो, सगलां रे हूंतों विगाड।।

३९. देखणा मांहें अवगुण नही, आंगुण मन परिणांम।
खोटों मन वर्त्यो तेहनों, त्यां कियो नीहाणो तांम।।

४०. सुरीयाभ नामें देवता, ते वीर समीपें आय।
तिण नाटक पाड़्या विवध परकारना जी, रूप अनेक वणाय।।

४१. त्यांरा मीठा शब्द सुहामणा, ते साधां सुणिया छें कांन।
वले साध नें साधव्यां, त्यांरा दीठा रूप असमांन।।

४२. शब्द सुण्यां रूप देखीयां, तिणरो पाप न लागो लिगार।
पाप लागे छें सावद्य जोग थी, ते बुधवंत करजों विचार।।

४३. नातीलां नें कह्या असमाधीया, पिण ते असमाधीया नांहि।
असमाधीया निज परणाम छें, ते विचार देखों मन मांहि।।

४४. ज्यूं इंद्री नें वेंरण कही पिण, इंद्रयां वेंरण नांहि।
वेंरी तो राग धेष परिणाम छें, ते विचार कीजो मन मांहि।।

३६. राजा श्रेणिक और रानी चेलना के मनोहर रूप को देखकर साधु-साध्वियों ने निदान किया। उनके परिणाम विशेष रूप से अशुभ हुए।

३७. इसका आलम्बन लेकर कई अज्ञानी ऐसा कहते हैंह्नरूप देखा तब ही तो निदान किया। उसी के अनुसार चक्षु इन्द्रिय को सावद्य कहते हैं। वाह! यह बड़ी अच्छी पहचान की।

३८. अनेक साधु-साध्वियों ने उस समय उनके रूप को देखा।यदि चक्षु इन्द्रिय सावद्य होती तो सबका अनिष्ट होना चाहिए।

३९. देखने में अवगुण नहीं था। दोष मन के परिणाम में होता है। जिनका मन दुष्प्रवृत्त हुआ उन्होंने निदान किया।

४०. सूर्याभ नामक देव ने भगवान महावीर के समीप आकर अनेक प्रकार के रूप बना विविध प्रकार के नाटक किए।

४१. उनके मीठे-मनोहर शब्दों को साधुओं ने कानों से सुना तथा साधु-साध्वियों ने उनके असाधारण रूप को भी देखा।

४२. शब्द सुनने तथा रूप देखने से उन्हें उसका जरा भी पाप नहीं लगा। पाप सावद्य योग से लगता है। बुद्धिमान इस पर विचार करें।

४३. ज्ञाति जनों को असमाधिकारक कहा गया है, किन्तु वे असमाधिकारक नहीं है। असमाधिकारक स्वयं अपने परिणाम ही होते हैं। इसका अन्तः करण में विचार कर देखें।

४४. इसी तरह इन्द्रियों को शत्रु कहा है, परन्तु इन्द्रियां शत्रु नहीं हैं। शत्रु तो राग-द्वेषमूलक परिणाम हैं। इस पर अन्तः करण में विचार करें।

४५. इंद्री तों खयउपसम भाव छें, जीवरों निज गुण सरूप।
केवल दर्शण माहिली वानगी, निरमल चीज अनूप।।

४६. काम नें भोग थकी सुमता नही, असुमता पिण मत जांण।
राग धेष थकी असुमता हुवें, तिणरी बुधवंत करजो पिछांण।।

४७. ए उत्तराधेन बतीसमें[१] जी, सो उपर ली गाथा एक।
तिणरो अर्थ हीया में धारनें जी, छोड दो खोटी टेक।।

४८. वले कही कही नें कितरो कहूं, इंद्री छें खयउपसम भाव।
कर्म लागें छें तेहथी, तिणरो जाणें समदिष्टी न्याव।।

४९. समत अठारे सेंतालेसमें, वैसाख विद नवमी बुधवार।
जोड़ कीधी इंद्री ओलखायवा, नेंणवा सहर मझार।।

•

१. नोटह्नरचित पद्य में 'इकतीसमें' अध्ययन का उल्लेख सम्यक् न होने के कारण बतीसमें अध्ययन का उल्लेख किया गया है।

४५. इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव हैं। वे जीव के निज गुण स्वरूप हैं। ये केवल दर्शन की निदर्शन हैं तथा अनुपम निर्मल वस्तु हैं।

४६. काम-भोगों से समभाव नहीं होता। उनसे असमभाव भी मत समझें। वस्तुतः राग और द्वेष से असमभाव होता है। उसकी बुद्धिमान लोग पहचान करें।

४७. उत्तराध्ययन सूत्र के बत्तीसवें अध्ययन की एक सौ एकवीं गाथा के अर्थ को हृदयंगम कर मिथ्या आग्रह को छोड़ देना चाहिए।

४८. कह-कह कर कितना कहूं, इन्द्रियां क्षायोपशमिक भाव हैं। उनसे किंचित् भी कर्म नहीं लगते। इस मिथ्या बात का न्याय सम्यग्दृष्टि जानते है।

४९. विक्रम संवत् १८४७ वैशाख कृष्णा नवमी बुधवार को नैणवा शहर में इन्द्रिय-स्वरूप का बोध देने के लिए यह जोड़-ढाल बनाई है।

●

दुहा

१. केइ भारीकर्मा जीवडा, ते कर रह्या कूडी टेक।
ते पांचूं इंदरयां नें सावद्य कहें, ते बूडें छें विना ववेक।।

२. जो इंदरयां सावद्य हुवें, तो इंदरी घटीया सावद्य मिट जाय।
उणरें लेखें इंदरी हारीयां, लाभ अनंतो थाय।।

३. इंद्रयां खयउपसम भाव छें निरमलो, केवल दरसण माहिली चीज।
त्यां इंदर्यां नें सावद्य कहें, ते रह्या मिथ्यात में भीज।।

४. कहें जों इंदरयां कायम रहे, तो पडें नरक में जाय।
दूसरो ओगुण कहे इंदरयां मझे, ते एकंत मूसावाय।।

५. अवगुण तो छें राग धेष में, ते दीया इंदर्यां सिर नांख।
त्यांनें किम समझावीयें, त्यांरी फूटी अभिंतर आंख।।

६. केइ शब्दादिक सुख भोगवे घणा, तो ही जाअे देवलोक माहि।
त्यांरी इंदर्यां पिण कुसले रहे, तिणरो जाणे समदिष्टी न्याय।।

७. इंद्री कायम रह्यां कहें नारकी, ते झूठ रा बोलणहार।
तिणरी खोटी सरधा रो निरणों कहूं, ते सुणजों विस्तार।।

दोहा

१. कई भारीकर्मा जीव मिथ्या आग्रह कर रहे हैं। जो पांच इंद्रियों को सावद्य कह कर बिना विवेक डूब रहे हैं।

२. यदि इन्द्रियां सावद्य हों तो इन्द्रियों के ह्रास से सावद्य मिट जाना चाहिए। उसके अनुसार तो इंदियों के विनाश से अनन्त लाभ होना चाहिए।

३. इन्द्रियां निर्मल क्षायोपशमिक भाव हैं और वे केवल दर्शन की निदर्शन हैं। उन इन्द्रियों को सावद्य कहकर वे मिथ्यात्व में गिर रहे हैं।

४. वे अज्ञ जन कहते हैं कि यदि इंद्रियां अक्षुण्ण रहें तो जीव नरक में चला जाता है। वे इंद्रियों में यह दूसरा अवगुण बतलाते हैंह्रएकान्त मृषावाद है।

५. वस्तुतः अवगुण तो राग-द्वेष में है, पर उन्होंने यह इन्द्रियों के सिर पर डाल दिया है-इन्द्रियों को दोषी ठहरा दिया है। उन्हें कैसे समझाया जाए, उनकी आभ्यन्तर आंख फूट चुकी है।

६. कई प्रचुर मात्रा में शब्द आदि सुखों का भोग करते हैं, फिर भी वे देवलोक में जाकर उत्पन्न होते हैं। उनकी इन्द्रियां भी जीवन पर्यन्त कुशल रहती हैं। सम्यग्दृष्टि इसका न्याय जानता है।

७. जो यह कहते हैं कि इन्द्रियां विद्यमान रहने पर नरक-गमन होता है, वे झूठ बोलने वाले हैं। उनकी मिथ्या श्रद्धा का निर्णय मैं बतला रहा हूं। उसे विस्तार से सुनें।

ढाल : १२

(लय : पाखण्ड वधसी आरे पांचमें रे)

इंद्रयां नें सावद्य कोइ मत जांणजो रे।।

१. तीन पल आउखारा जुगलीया रे, त्यांरी तीन कोस री हूंती काय रे।
इंद्री पांचोई त्यांरी निरमली रे, ते मरनें निश्चेंइ देवता थाय रे।।

२. जुगलीया मरेनें हुवें छें देवता रे, त्यारें हूंता शब्दादिक नां सुख पुर रे।
इंदरी कायम रह्यां कहें नारकी रे, तिणरी सरधा रो प्रतख देखो कूड रे।।

३. काम नें भोग जूगलीयां रे घणा रे, त्यांरा सुख पूरा केम कहवाय रे।
पिण राग नें धेष तीवर नही तेहनें रे, तिणसूं जुगलीया नरक न जाय रे।।

४. कांम नें भोग उतकष्टा भोगवें रे, जो उतकष्टो राग तिणसुं होय रे।
तो जुगलीयो मरनें जाअें नारकी रे, देवता होय न सके कोय रे।।

५. ते वाजंत्र सुणें छें विविध प्रकार नां रे, वले विविध प्रकारे देखे रूप रे।
कसबोइ लेवे विविध प्रकार नी रे, भोजन करें छें विविध अनूप रे।।

६. फरस भोगवें विविध प्रकार नां रे, त्यारें कांमभोग घणा सुखदाय रे।
पिण राग नें धेष तिणा रें पातला रे, तिण सूं तो अल्प पाप बंधाय रे।।

७. जुगलीयां रा सुख रे भाग अनंत में रे, केइ राजा नां सुख छें अलप लिगार रे।
जो राग नें धेष त्यांरें प्रबल हुवें रे, तो पादरा जाअें नरक मझार रे।।

८. ए प्रतख अवगुण छें राग धेष में रे, ते इंदर्‌यां रे माथे न्हांखें कांय रे।
पाप लागे छें सावद्य जोग थी रे, विचार करे देखों मन मांहि रे।।

ढाल : बारह

इन्द्रियों को कोई सावद्य नहीं जानें।

१. तीन पल्योपम आयुष्य वाले यौगलिकों के शरीर की अवगाहना तीन कोस की होती है। उनकी पांचों इन्द्रियां निर्मल होती हैं और वे मरकर निश्चित रूप से देवता होते हैं।

२. यौगालिकों के शब्द आदि प्रचुर सुख होने पर भी वे मरने पर देवता होते हैं। जो इन्द्रियों के विद्यमान रहने से नरक गति की प्राप्ति कहते हैं, उनकी श्रद्धा की यह प्रत्यक्ष असत्यता देखो।

३. यौगालिकों के काम और भोग की बहुलता होती है। उनके सुखों का पूरा वर्णन हो नहीं सकता। ऐसा होने पर भी उनके राग और द्वेष तीव्र नहीं होते हैं, जिससे वे नरक में नहीं जाते हैं।

४. यौगालिक उत्कृष्ट काम और भोगों को भोगते हैं। यदि उनके प्रति उत्कृष्ट राग होता तो यौगलिक मरकर नरक में जाते, देवता नहीं हो पाते।

५. वे विविध प्रकार के वाद्ययंत्र सुनते हैं। विविध प्रकार के रूप देखते हैं। विविध प्रकार की सुगंध लेते हैं और विविध प्रकार के अनुपम भोजन करते हैं।

६. विविध प्रकार के स्पर्शों का भोग करते हैं। उनके काम-भोग अत्यधिक सुखदायी होते हैं, परन्तु उनके राग-द्वेष कृश होते हैं, जिससे उनके अल्प पाप का बंध होता है।

७. कई राजाओं के सुख यौगालिकों के सुखों की अपेक्षा अनंतवें भाग से भी कम होते हैं। पर यदि उनका राग-द्वेष प्रबल हो तो सीधे नरक में जाते हैं।

८. राग-द्वेष में ये प्रत्यक्षतः अवगुण हैं। उसे इन्द्रियों के सिर पर क्यों आरोपित किया जाता है। पाप सावद्य योग से लगते हैं। अन्तः करण में विचार कर देखें।

९. घणा काम नें भोग जुगलीया भोगवे रे, ते तो न जाअें नरक मझार रे।
केई थोड़ा भोगवीया जाअें नरक में रे, तिणरो कोई बुधिवंत करो विचार रे।।

१०. जुगलीयां रा सुख सूं अनंत गुणा रे, एक सवार्थ सिद्ध देवतां रा जांण रे।
पिण मूर्छा नें तिसणा त्यारें अल्प छें रे, तो अल्प कर्म लागें छें आण रे।।

११. भवणपती नें वंतर जोतषी रे, वले मनख सगलाइ नें नर नार रे।
त्यां सगला रा सुख सूं अनंत गुणा रे, एक देवता रा सवार्थ सिद्ध मझार रे।।

१२. त्यारे सुख छें उतकष्टा शब्दादिक तणा रे, पिण राग नें धेष अल्प छें ताहि रे।
त्यारें अल्प कर्म लागें छें तेहसूं रे, ते मिनख थइ गत में जाय रे।।

१३. केइ दोनूंइ पुरष बरोबर भोगवे रे, काम नें भोग मनोज्ञ जांण रे।
पिण पाप न लागे त्यांनें सारिखो रे, पाप परिणांमा लार पिछांण रे।।

१४. कोइ काम नें भोग तिवर परिणांम सूं रे, भोगवे गाढ़ी मूर्छा आंण रे।
तिण मूर्छा सूं पाप लागें छें चीकणा रे, ते पिण इंदर्यां रो दोष म जांण रे।।

१५. कोई कांम नें भोग मनोगन भोगवें रे, तिण ऊपर आंणें अलपसो राग रे।
तो अलप कर्म लागे तिण राग थी रे, ते पिण इंदस्यां रो नही विभाग रे।।

१६. शब्दादिक पांचूं मिलीया पाडूवा रे, त्यां उपर करें जो गाढ़ो धेष रे।
तिण धेष सूं कर्म लागे छें चीकणा रे, ते इंदस्यां रो कांई नहीं विशेष रे।।

१७. शबदादिक पांचूं मिलीया पाडुवा रे, तिण उपर करें अलप सो धेष रे।
तो अल्प कर्म लागें तिण धेष थी रे, ते पिण इंदस्यां रो नही विशेष रे।।

९. यौगालिक बहुत काम और भोग का सेवन करते हैं, पर वे नरक में नहीं जाते हैं। कई थोड़े काम-भोग भोगने पर भी नरक में जाते हैं। बुद्धिमान लोग उसका विचार करें।

१०. यौगालिकों के सुख से अनन्त गुना सुख एक सर्वार्थसिद्ध देवता के होते हैं, परन्तु उनके मूर्च्छा और तृष्णा अल्प होती है, अतः उनके अल्प कर्म आकर लगते हैं।

११. भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, तिर्यंच और समस्त मनुष्य नर-नारियांह्वइन सबके सुखों से अनन्त गुण सुख सर्वार्थसिद्ध के एक देवता के होते हैं।

१२. उनके शब्द आदि के उत्कृष्ट सुख हैं, पर राग और द्वेष अल्प हैं, अतः उनके अल्प कर्म लगते हैं। वे वहां से च्यवन कर मनुष्य बन मुक्ति में जाते हैं।

१३. कोई दो मनुष्य समान रूप से मनोज्ञ काम और भोग का सेवन करते हैं, परन्तु दोनों को समान पाप नहीं लगता। पाप परिणाम के अनुसार पहचानें।

१४. कोई काम और भोग को तीव्र परिणाम पूर्वक प्रगाढ मूर्च्छा लाकर भोगता है। उस प्रगाढ मूर्च्छा से तीव्र अनुभाग वाले (चिकने) पाप कर्म लगते हैं। इसमें इंद्रियों का कोई दोष न जानें।

१५. कोई मनोज्ञ काम-भोग भोगते हैं और उन पर अल्प राग लाते हैं। उस अल्प राग से उनके कर्म भी अल्प लगते हैं। यहां भी इंद्रियों की संभागिता नहीं है।

१६. शब्द आदि पांचों अमनोज्ञ मिलने पर जो उन पर प्रगाढ द्वेष करता है। उसके उस तीव्र द्वेष के कारण चिकने कर्म लगते हैं। उसमें इंद्रियों की कोई विशेषता-सहकारिता नहीं है।

१७. शब्द आदि पांचों अमनोज्ञ मिलने पर अल्प द्वेष करता है तो उससे उसके अल्प कर्म लगते हैं। इसमें भी इन्द्रियों की कोई विशेषता-सहकारिता नहीं है।

१८. राग नें धेष करे छें जीवड़ो रे, जगन मझम उतकष्टो जांण रे।
जेहवों करे छें तेहवो पाप नीपजे रे, पिण इंदस्यां सूं पाप न लागे आंण रे।।

१९. धेष सूं तंदुल नामें माछलो रे, गयो छें सातमी नरक मझार रे।
ते एकंत सावद्य मन रा जोग थी रे, तिणरी इंदरी में दोष नही लिगार रे।।

२०. नाटक पड़ें छें विविध प्रकारनां रे, तिहां वाजंत्र वाज रह्या धुंकार रे।
वले गीत नें नाद घणा रलीयामणा रे, ते तो सावद्य जोग तणों व्यापार रे।।

२१. ते नाटक देखें छें गायां भेंसीया रे, वले तेहीज नाटक देखें नर नार रे।
वले गीत वाजंत्र साघला सांमले रे, यांमें कुण कुण कर्मां रा बांधणहार रे।।

२२. नाटक देखें छें गायां भेंसीयां रे, त्यांनें तो समझ पड़ी नही काय रे।
मनरो पिण जोग सावद्य नही वरतीयो रे, देख्यां सूं पाप न लागे ताहि रे।।

२३. गीत सुणीयां छें गायां भेंसीया रे,
त्यांनें तो समझ पड़ी नही काय रे।
मनरो पिण जोग सावद्य नही वरतीयो रे,
त्यांनें सुणीयां सूं पाप न लागो ताहि रे।।

२४. त्यारें सुणीया देख्यांरी नही विचारणा रे,
विचास्यां विण मन सूं हरख न थाय रे।
कदा कोयक विचारी नें हरखत हुवें रे,
जब तिणरें पिण पाप कर्म बंधाय रे।।

२५. तेहीज नाटक देख्या नर नारीयां रे, ते मन सूं हूआ घणा गलतांन रे।
जब पाप लागों छें मनरा जोग थी रे, तिण पाप सूं होसी घणां हैरांन रे।।

१८. जीव जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट राग-द्वेष करता है। जैसा राग-द्वेष करता है, वैसा पाप उत्पन्न होता है। किन्तु इन्द्रियों से किंचित् भी पाप नहीं लगता है।

१९. द्वेष से तंदुल नामक मच्छ सातवीं नरक में गया। यह एकान्त सावद्य मन के योग से हुआ। उसकी इन्द्रियों का इसमें जरा भी दोष नहीं था।

२०. विविध प्रकार के नाटक हो रहे हैं। वहां वाद्य यंत्रों की झंकार गूंज रही है। अनेक मनोज्ञ गायन और आलाप हो रहे हैं। ये सब सावद्य योग की प्रवृत्तियां हैं।

२१. इन नाटकों को गायें और भैंसे देखती हैं। उन्हीं नाटकों को नर-नारी देखते हैं। उन गीतों तथा वाद्य यंत्रों को सभी सुनते हैं। अब यह समझो कि इनमें कौन-कौन कर्मों को बांधते हैं?

२२. गायें और भैंसे नाटक देखती हैं। उनके कुछ भी समझ में नहीं आता। उनके मन का सावद्य योग प्रवर्तित नहीं होता। देखने से उन्हें पाप नहीं लगता।

२३. गायों और भैंसों ने गीत सुने, पर उनके कुछ भी समझ में नहीं आया। उनके मन का सावद्य योग प्रवर्तित नहीं हुआ। सुनने से उन्हें पाप नहीं लगा।

२४. उनके सुनी हुई और देखी हुई बातों का विचार नहीं होता। बिना विचारे मन से हर्ष नहीं होता। कदाचित् कोई विचार कर हर्षित होता है, तब उसके भी पाप कर्म बंधते हैं।

२५. उन्हीं नाटकों को नर-नारियों ने देखा। वे मन से अत्यन्त भाव-विभोर हो गए। उनके मन के योग से पाप लगता है। उस पाप से वे अत्यधिक दुःखी होंगे।

२६. तेहीज गीत सुण्या नर नारीयां रे, वले सुणीयां वाजंत्र ना धूंकार रे।
जब केइ नर नारी मनसूं हरखीया रे, त्यां सघलां नें पाप लागो तिणवार रे।।

२७. ते नाटक देख नें कोइ हरख्यों नही रे, नही हरख्यों सुणनें वाजंत्र गीत रे।
जब पाप न लागों तिणनें सर्वथा रे, इंदर्‍यां नें दोष नहीं इण रीत रे।।

२८. नाटक देख्यों छें गायां भेंसीयां रे, नाटक देख्यों नर नारी ताम रे।
यांमें पाप कर्म लागो छें जेहनें रे, जिणरा वरत्या खोटा परिणांम रे।।

२९. पाप न लागे सुणियां देखीयां रे, तिण मांहें संका मूल म आंण रे।
पाप लागे छें सावद्य जोग थी रे, मोह उदें भाव नीपन सूं जांण रे।।

३०. च्यार कषाय नें तीन वेद थी रे, वले मिथ्यात इविरत सेती जांण रे।
वले माठी लेस्या नें माठा जोग सूं रे, यां बोलां सूं पाप लागें छें आंण रे।।

३१. वले कोइ मोह उदें सूं नीपना रे, त्यांसूं पिण लागें पाप एकंत रे।
पिण पाप न लागें खयउपसम भावथी रे, विचार करे देखों मतवंत रे।।

३२. सात कर्म उदा सूं नीपनां रे, तिणसूं इ पाप न लागें आय रे।
तो खयउपसम कर्म हुआं गुण नीपनां रे, त्यां गुणा सूं पाप केम बंधाय रे।।

३३. पाप बंधे कहें खयउपसम भाव थी रे, तिणरी सरधा में पूरो घोर अंधार रे।
ते आप डूबें ओरां ने बोवता रे, तिण जीतव जन्म दियो विगाड रे।।

३४. पांचूं इंदर्‍यां नें मेहले मोकली रे, ते शब्दादिक माहे ग्रिधी थाय रे।
ते निश्चेंइ राग तणी परजाय छें रे, तिणसु सावद्य जोग वरते छें ताहि रे।।

२६. उन्हीं गीतों को नर-नारियों ने सुना और वाद्य यंत्रों की झंकार सुनी। तब कई नर-नारी मन से हर्षित हुए। जो इस तरह प्रमुदित हुए उन सबको पाप लगा।

२७. यदि कोई उन नाटकों को देखकर हर्षित नहीं हुआ तथा वाद्य-यंत्रों और गीतों को सुनकर हर्षित नहीं हुआ तो उसके सर्वथा पाप नहीं लगते। इस तरह इंद्रियों में कोई दोष नहीं है।

२८. नाटक गायों और भैंसों ने देखा और नर-नारियों ने भी देखा, पर उनमें पाप कर्म उन्हीं को लगे जिनके बुरे परिणाम प्रवर्तित हुए।

२९. सुनने और देखने से पाप नहीं लगता। इसमें जरा भी शंका मत करो। पाप सावद्य योग से लगता है, जो मोहनीय कर्म के उदय से निष्पन्न होता है।

३०. चार कषाय, तीन वेद, मिथ्यात्व, अविरति, अशुभ लेश्या और अशुभ योगह्वइन सबसे पाप आकर लगते हैं।

३१. इनके अतिरिक्त और भी जो मोह उदय से निष्पन्न भाव हैं, उनसे भी एकान्त पाप कर्म लगते हैं। पर क्षायोपशमिक भाव से पाप कर्म नहीं लगते हैं। मतिमान मन में विचार कर देखें।

३२. सात कर्मों के उदय से निष्पन्न भावों से भी पाप कर्म नहीं लगते। तो कर्मों के क्षयोपशम से उत्पन्न गुणों से पाप कर्म कैसे बंधेंगे?

३३. जो यह कहते हैं कि क्षायोपशमिक भाव से पाप कर्म बंधते हैं, उनकी श्रद्धा में परिपूर्ण घोर अंधकार है। वे स्वयं डूबते हैं और दूसरों को डूबोते हैं। उन्होंने अपने जन्म को बिगाड़ दिया है।

३४. जो पाँचों इन्द्रियों को स्वच्छन्द छोड़ता है, वह शब्द आदि में गृद्ध हो जाता है। यह निश्चय ही राग भाव का पर्याय है। उससे सावद्य योग की प्रवृत्ति होती है।

३५. पांचूं इंदस्त्र्यां नें जो कोई वस करें रे, ते ग्रिधी शब्दादिक सूं नही थाय रे।
ते तो वीतराग तणी परजाय छें रे, जब निरवद जोग वरतें छें ताहि रे।।

३६. इंदस्त्र्यां तो खयउपसम भाव छें निरमलो रे, तिणसूं तो पाप न लागे आय रे।
पाप लागें छें उदें भाव थी रे, ते राग नें धेष तणी परजाय रे।।

३७. पांचूं इंदस्त्र्यां नें राग धेष रो रे, सभाव जूओं जूओं छें तांम रे।
इंदस्त्र्यां रा सभाव माहे अवगुण नही रे, कषाय तणा खोटा परिणाम रे।।

३८. काम नें भोग शब्दादिक तेहथी रे, समता नही पामें जीव लिगार रे।
असमता पिण नही पामें छें एहथी रे, यांसूं मूल न पामें जीव विकार रे।।

३९. जो राग नें धेष आणे त्यां ऊपरे रे, तेहीज विकार विषय कषाय रे।
ते कह्यो छे उत्तराधेन बत्तीसमें रे, सो उपरली पहली गाथा मांय रे।।

४०. इंदस्त्र्यां नें राग धेष ओलखायवा रे, जोड़ कीधी आंतरदा गांम मझार रे।
संवत अठारें सेंताले समें रे, वैसाख सुदि बारस नें रिववार रे।।

●

३५. जो पाँचों इन्द्रियों को वश में करता है, वह शब्द आदि में गृद्ध नहीं होता। यह वीतराग भाव का पर्याय है। इससे निरवद्य योगों की प्रवृत्ति होती है।

३६. इन्द्रियां निर्मल क्षायोपशमिक भाव हैं। उनसे किंचित् भी पाप कर्म नहीं लगते। पाप औदयिक भाव से लगता है, वह राग और द्वेष का पर्याय है।

३७. पांचों इन्द्रियां और राग-द्वेष के स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। इंद्रियों के स्वभाव में अवगुण नहीं है। कषाय के परिणाम बुरे होते हैं।

३८. शब्द आदि काम और भोग से जीव को किंचित् भी समता की प्राप्ति नहीं होती तथा इनसे असमता भी प्राप्त नहीं होती। इनसे जीव जरा भी विकार को प्राप्त नहीं होता।

३९. शब्द आदि काम-भोगों पर राग और द्वेष लाना ही विकार, विषय और कषाय है। यह बात उत्तराध्ययन सूत्र के बत्तीसवें अध्ययन की एक सौ एकवीं गाथा में कही गई है।

४०. इन्द्रियां और राग-द्वेष को समझाने के लिए विक्रम संवत् १८४७ वैशाख शुक्ला द्वादशी, रविवार को आन्तरदा ग्राम में यह जोड़-रचना की गई है।

●

दुहा

१. केइ इंदर्यां नें सावद्य कहें, ते जिणमारग ना अजांण।
ते आगम अर्थ अवला करें, बूडें छें कर कर तांण।।

२. पांचूं इंदरी दमवी कही, निग्रह करवी कही छें ताहि।
वले इंद्रयां नें समरवी कही, तिणरों मूंढ़ न जाणें न्याय।।

३. शब्द सुणे रूडा पाडुआ, राण धेष न करवो ताहि।
निग्रह करवी कही छें इण विधें, दमणी समरवी इण न्याय।।

४. रूप दीठा रूडा पाडूआ, राग धेष न करवो ताहि।
इण विध निग्रह करवी कही, दमवी समरवी इण न्याय।।

५. सेष इंदरी तीनां तणो, इण रीत सूं कहणों ताहि।
निग्रह करणी दमणी नें समरवी, सगलां रो छें ओहीज न्याय।।

६. राग धेष उपजें जीव रें, शब्दादिक थी ताहि।
ते इंदरयां कर ओलखावीयो, ते भोलां नें खबर न काय।।

७. ते आंगुण तो राग धेष में, पिण इंदरयां में आंगुण नांहि।
इंद्रयां हिंसादिक अठारा में नही, विचार देखों मन मांहि।।

दोहा

१. कई इंद्रियों को सावद्य कहते हैं। वे जिन मार्ग के अनभिज्ञ-अजानकर हैं। वे आगम के विपरीत अर्थ करते हैं तथा खींचतान कर डूब रहे हैं।

२. पांचों इन्द्रियों का दमन करना, निग्रह करना और इन्हें संवरण करना कहा है। मूढ लोग इसका न्याय नहीं जानते हैं।

३. जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द सुनता है। उन पर राग और द्वेष न करे। इस प्रकार भगवान ने श्रोत्रेन्द्रिय का निग्रह, दमन और संवरण करना कहा है।

४. जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूप देखता है। उन पर राग और द्वेष न करे। इस प्रकार भगवान ने चक्षु इन्द्रिय का निग्रह, दमन और संवरण कहा है।

५. शेष तीन इन्द्रियां-घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शन्द्रिय के विषय में भी इसी तरह कहना चाहिए। सभी इंन्द्रियों के निग्रह, दमन और संवरण का अर्थ यही है।

६. इंद्रियों के विषय शब्द आदि से जीव के राग-द्वेष उत्पन्न होता है। उस राग-द्वेष के निग्रह की बात इन्द्रिय-निग्रह के नाम से बतलाई गई है। इस तथ्य की अज्ञ लोगों को खबर नहीं है।

७. दोष तो उस राग-द्वेष में है। इन्द्रियों में दोष नहीं है। हिंसा आदि अठारह पापों में इन्द्रियों का समावेश नहीं है। इस बात पर अन्तः करण में विचार कर देखें।

८. इंदर्यां नें सावद्य निरवद कहें, ते परमारथ रा अजांण।
हिवे जथातथ निरणो कहूं, ते सुणजों चुतर सुजांण।।

ढाल : १३

(लय : चन्दगुप्त राजा सुणो)

कोइ इंदर्यां नें सावद्य मत जांणजों।।

१. शब्द रूडा नें पाडुआ, ते सुणें सुरतइंद्री ताह्यो रे।
तिणसूं हरख नें सोगरो आगार छें, ते इविरत कही जिण रायो रे।।

२. इविरत अत्यागभाव तेहसूं, पाप लागें निरंतर आंणो रे।
शब्द सुणियां रो कारण को नही, इविरत संबंधीयों पाप जांणो रे।।

३. शब्द रूडा नें पाडुआ, ते सुणियां हरख सोग थायो रे।
तिणरा सावद्य जोग वरतीया, मन वचन नें कायो रे।।

४. तिण सावद्य जोग थी जीवरे, पाप कर्म आय लागें रे।
जोग बरते तठा तांइ जांणज्यो, तिणरों नही निरतर पाप आगें रे।।

५. शब्द रूडा नें पाडूवा, ते सुणें सुरत इंदरी ताह्यों रे।
त्यांसूं हरख नें सोगरा त्याग छें, तिणनें विरत कही जिण रायो रे।।

६. तिण विरत त्याग भाव तेहसूं, रुकें निरंतर पापो रे।
शबद सुणीयां रो कारण को नही, थिर परिणांम राख्या थापो रे।।

८. जो इन्द्रियों को सावद्य अथवा निरवद्य कहते हैं, वे परमार्थ के अजानकार जानते हैं। अब मैं इसका यथातथ्य निर्णय प्रस्तुत कर रहा हूं। चतुर और सुज्ञ लोग उसे सुनें।

ढाल : तेरह

इन्द्रियों को सावद्य न जानें।

१. शब्द मनोज्ञ और अमनोज्ञ दो प्रकार के होते हैं। श्रोत्रेन्द्रिय दोनों के शब्दों को सुनती है। उनके प्रति हर्ष और शोक की खुलावट को जिन भगवान ने अव्रत कहा है।

२. अव्रत अत्याग भाव है। उससे निरन्तर पाप कर्म आकर लगते रहते हैं। इसमें शब्दों का सुनना पाप-बंध में बिल्कुल कारणभूत नहीं है। पाप-बंध अव्रत से संबंधित जानें।

३. मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द सुनने से हर्ष और शोक होता है। उससे सावद्य योगों की प्रवृत्ति होती है। सावद्य योग मन, वचन और काया के रूप में तीन तरह के होते हैं।

४. उस सावद्य योग से जीव के पाप कर्म आकर लगते रहते हैं। जब तक सावद्य योग की प्रवृत्ति रहती है, तब तक पाप कर्म लगते रहते हैं। उसके बाद पाप कर्म नहीं लगते हैं।

५. शब्द मनोज्ञ और अमनोज्ञ होते हैं। उन्हें श्रोत्रेन्द्रिय सुनती है। उनके प्रति हर्ष और शोक के त्याग को जिन भगवान ने व्रत कहा है।

६. उस व्रत-त्याग भाव से पाप कर्म निरन्तर रुकता है। शब्द सुनना संवर का कारण बिल्कुल नहीं है। व्रत द्वारा परिणाम स्थिर रखने से पाप कर्म रुकते हैं। यही इसका सिद्धान्त है।

७. शबद रूडा नें पाडुवा, जों सुणनें वेंराग आंणे ताह्यो रे।
तिणरा जोग निरवद वरतीया, मन वचन नें कायो रे।।

८. तिण निरवद जोग थी जीव रे, कटें छें पाप कर्मो रे।
ते जोग वरतें छें त्यां लगें, पिण नही निरंतर धर्मो रे।।

९. शब्द री विरत नें निरवद जोग थी, हुवें छें संवर निरजरा धर्मो रे।
शबद री इविरत नें माठा जोग थी, लागें छें पाप कर्मो रे।।

१०. विरत नें निर्वद जोग वरतीया, अें दोनूं इंद्र्यां नांही रे।
इविरत नें सावद्य जोग वरतीया, ते पिण इंदरया नही कांइ रे।।

११. शेष च्यारू इंद्र्यां भणी, सुरत इंदरी जेम पिछांणो रे।
विरत इविरत सुभ उसुभ जोग थी, सघली इंद्र्यां नें न्यारी जांणो रे।।

१२. शब्दादिक रूडा नें पाडुवा तणी, इविरत नें उसुभ जोग भूंडा रे।
पिण इंद्र्यां नें भूंडी मत जांणजों, छोड मिथ्यात री रूढा रे।।

१३. पांच इंद्र्यां नें संवर कही, वले मन वचन नें काया रे।
भंड उवगरण नें सूची कुसग, अें दसोइ संवर वताया रे।।

१४. अेंहीज दसोइ असंवर कह्या, त्यांनें रूडी रीत पिछांणो रे।
अेंतों दसोंइ संवर असंवर नही, त्यारो न्याय परमार्थ जांणो रे।।

१५. शब्दादिक पांचूं विषें रा त्याग छें, मन वचन काया इम जांणो रे।
माठा वरतावण रा त्याग छें, संवर एह पिछांणो रे।।

७. मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द सुनकर जो मन में वैराग्य भावना को जागृत करता है, उसके मन, वचन और काय की निरवद्य योगों में प्रवृत्ति होती है।

८. उस निरवद्य योग से जीव के पाप कर्म क्षीण होते हैं। जब तक निरवद्य योग की प्रवृत्ति रहती है, तब तक निर्जरा होती है। यह निर्जरा धर्म निरन्तर नहीं होता है।

९. शब्द की व्रत और निरवद्य योग से क्रमशः संवर और निर्जरा धर्म होते हैं। शब्द की अव्रत और सावद्य योग से पाप कर्म लगते हैं।

१०. व्रत और निरवद्य योग की प्रवृत्तिह्नये दोनों इन्द्रियां नहीं हैं। वैसे ही अव्रत और सावद्य योग की प्रवृत्तिह्नये दोनों भी इंद्रियां नहीं हैं।

११. चक्षु इन्द्रिय आदि शेष चार इन्द्रियों के विषय में भी श्रोत्रेन्द्रिय की तरह ही समझें। व्रत, अव्रत, शुभ योग और अशुभ योगह्नइनसे सभी इंन्द्रियों को भिन्न जानें।

१२. मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द आदि के प्रति अव्रत और तद् विषयक अशुभ योग बुरे हैं। पर इंद्रियों को बुरी न जानें। मिथ्यात्व जनित इस रूढि को छोड़ दो।

१३. श्रोत्रेन्द्रिय संवर, चक्षु इन्द्रिय संवर, घ्राणेन्द्रिय संवर, रसनेन्द्रिय संवर, स्पर्शनेन्द्रिय संवर, मन संवर, वचन संवर, काय संवर, भण्डोकरण संवर और सूचि कुशाग्र संवरह्नये दस संवर कहे गए हैं।

१४. इन्हीं (श्रोतेन्द्रिय आदि) दस बोलों को असंवर कहा गया है। उन्हें अच्छी तरह पहचानें। वस्तुतः ये दस बोल संवर और असंवर दोनों ही नहीं हैं। संवर और असंवर कहने का न्याय-परमार्थ जानें।

१५. शब्द आदि पांचों विषयों तथा मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्तियों का त्याग करनाह्नसंवर है। यह पहचानें।

१६. भंड उपगरण री ममता रो त्याग छें, वले अजयणा करवारो त्यागों रे।
सूची कुसग अजेंयणा रो त्याग छें, अें दसोंइ संवर त्याग वेरागो रे।।

१७. शब्दादिक आदि सूची कुसग नों, नही त्याग्या दसोंइ बोल तांमो रे।
वले जोग वरतावे पाडुआ, ते असंवर खोटा परिणांमो रे।।

१८. संवर ने आश्रव दोनूं तणो, ते इंद्रयां सूं कांई लेखो रे।
संवर भांगां इंद्रयां भागें नही, इविरत पिण इमहिज देखो रे।।

१९. प्रथवी पांणी तेउ वाउ काय नें, वनसपती ने बेइंद्री कायो रे।
तेइंद्री चोरिंद्री नें पंचिद्री, दसमो अजीव काय वतायो रे।।

२०. प्रथवी कायादिक दसां भणी, संजम कह्यों ठाणाअंग मांह्यो रे।
यां दसांइ नें असंजम कह्यों, तिणरों मूंढ न जांणें न्यायो रे।।

२१. प्रथवी कायादि दसोइ संजम नही, असंजम पिण नही छें दसोई रे।
यांनें हणवा रो त्याग संजम कह्यों, विना त्याग असंजम कह्यो सोई रे।।

२२. संजम असंजम नें इंद्रयां कहें, ते पूरा मूंढ अयांणो रे।
संजम असंजम नें इंद्रयां भणी, निश्चेइ जूआ जूआ जांणो रे।।

२३. मोह उदे नें खयउपसम हूआं, संजम नें असंजम जाणो रे।
दर्शणावर्णी कर्म खयउपसम्यां, पांचूं इंद्रया प्रगटी पिछांणो रे।।

२४. संजम नें तो संवर जांणजों, असंजम नें असंवर जांणो रे।
त्यांनें इंदरयां कही किण कारणें, तिणरी करो हीया में पिछांणो रे।।

१६. भण्डोपकरण की ममता और उनकी अयतना करने का त्याग तथा सूचि कुशाग्र मात्र अयतना करने का त्याग संवर है। ये दसों ही संवर त्याग-वैराग्य हैं।

१७. शब्द आदि पांचों विषयों से लेकर सूचि कुशाग्र तक दसों ही बोलों का त्याग न करना तथा तत्संबंधी अशुभ प्रवृत्ति करना असंवर है। अविरति-अत्याग भाव रूप अशुभ परिणाम और अशुभ प्रवृत्तिह्नये दोनों असंवर हैं।

१८. संवर और आश्रव इन दोनों का इन्द्रियों से कोई संबंध नहीं है।संवर के खण्डित होने से इन्द्रियां खंडित नहीं होतीं। अविरति के विषय में भी ऐसा ही समझें। आश्रव के मिट जाने से इंद्रियां नहीं मिटतीं।

१९. पृथ्वीकाय, अप्‌काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अजीवकायह्नये दस काय कही गई हैं।

२०. स्थानांग (१०वें स्थान के ७ और ९ सूत्र) में पृथ्वीकाय संयम आदि दस प्रकार के संयम कहे गए हैं। इन्हीं को पृथ्वीकाय असंयम आदि दसविध असंयम कहा गया है। इसका न्याय मूढ मनुष्यों की समझ में नहीं आता।

२१. पृथ्वीकाय आदि दस काय संयम नहीं हैं और ये दस काय असंयम भी नहीं हैं। इनके हनन का त्याग संयम कहा गया है। इनके हनन का त्याग न होना असंयम कहलाता है।

२२. संयम अथवा असंयम को जो इन्द्रियां कहते हैं, वे पूरे मूढ और अज्ञानी हैं। संयम-असंयम तथा इंद्रियों को निश्चय ही एक दूसरे से भिन्न जानें।

२३. मोहनीय कर्म के उदय होने से असंयम और क्षयोपशम होने से संयम की निष्पत्ति होती है। पाँचों इन्द्रियां दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होती है।

२४. संयम को संवर जानें तथा असंयम को असंवर न जानें। इनको इन्द्रियां किस कारण से कहा गया है? इनकी अन्तःकरण में पहचान करें।

२५. सुरतइंद्री नें मेले मोकली, तिणनें सुरतइंद्री मत जांणो रे।
मोकली मेहले ते भाव ओर छें, तिणनें रूडी रीत पिछांणो रे।।

२६. सुरतइंद्री नो सभाव सुणवा तणों, मोकली मेले ते राग धेषो रे।
ए सांप्रत दोनूंइ जूजूआ, यां दोयां नें एक म लेखो रे।।

२७. सुरतइंद्री सुणें ते जीव छें, ते तो खयउपसम भाव छें चोखो रे।
मोकली मेलें ते पिण जीव छें, ते तो उदें भाव सदोखो रे।।

२८. उदे नें खयउपसम भाव दोय छें, त्यांनें एक कोइ मत जांणो रे।
खयउपसम सूं कर्म लागें नही, उदें भाव सूं कर्म लागें आंणो रे।।

२९. चखू इंद्री नें मेहलें मोकली, तिणनें चखू इंद्री मत जांणो रे।
सुरतइंद्री जिम पांचूं इंदर्‌यां भणी, इणहीज रीत पिछाणो रे।।

३०. पांचूं इंदर्‌यां नें सत्रू कही, उत्तराधेन तेवीसमां मझारो रे।
ते राग धेष ओलखायो इंदरयां करी, तिणरो पिंडत जांणे विचारो रे।।

३१. चोर कही पांचूं इंदरयां भणी, उत्तराधेन बत्तीसमा मझारो रे।
ते विकार उलखायों इंदरयां करी, तिणरों बुधवंत जाणे विचारो रे।।

३२. एक एक इंद्री रा विकार सूं, मरण पाम्यां छें अकालो रे।
ग्रिधी थका राग पीडीया, त्यांरी घात हुइ ततकालो रे।।

३३. रूप रें विषें ग्रिधी घणों, ते पामें विणास अकालो रे।
जिम रागें पीड्यो पतंगीयो, रूप लपटी मरें ततकालो रे।।

२५. श्रोत्रेन्द्रिय की स्वच्छंद प्रवृत्ति को श्रोत्रेन्द्रिय न जानें। श्रोत्रेन्द्रिय का स्वतंत्र उपयोग दूसरा ही भाव है, उसे अच्छी तरह पहचानें।

२६. श्रोत्रेन्द्रिय का स्वभाव शब्द सुनने का है। श्रोत्रेन्द्रिय की स्वच्छंद प्रवृत्ति राग-द्वेषात्मक है। ये दोनों स्पष्टतः भिन्न-भिन्न हैं। इन दोनों को एक न समझें।

२७. श्रोत्रेन्द्रिय सुनती है और वह जीव है। वह उत्तम क्षायोपशमिक भाव है। श्रोत्रेन्द्रिय की स्वच्छंद प्रवृत्ति भी जीव है और वह सदोष औदयिक भाव है।

२८. औदयिक और क्षोयोपशमिक भावह्नये दोनों भिन्न-भिन्न हैं। इन्हें कोई भी एक न समझें। क्षायोपशमिक भाव से कर्म नहीं लगते जबकि औदायिक भाव से कर्म आकर लगते हैं।

२९. चक्षु इन्द्रिय की स्वच्छंद प्रवृत्ति को चक्षु इन्द्रिय न जानें। इसी प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय की तरह ही पाँचों इन्द्रियों के विषय में जानें।

३०. उत्तराध्ययन सूत्र के तेईसवें अध्ययन (गाथा ३८) में पांचों इन्द्रियों को शत्रु कहा गया है। यहां इंद्रियों के माध्यम से राग और द्वेष को बतलाया गया है। बुद्धिमान् लोग उसका विचार जानते हैं।

३१. उत्तराध्ययन सूत्र के बत्तीसवें अध्ययन (गाथा १०४) में पांचों इंद्रियों को चोर कहा गया है। यहां इंद्रियों के माध्यम से विकार को बतलाया है। बुद्धिमान् लोग उसका विचार जानते हैं।

३२. एक-एक इन्द्रिय के विषय-विकार से जीव अकाल में मरण को प्राप्त हुए हैं। जो इंद्रियों के विषयों में गृद्ध बने, राग से पीड़ित हुएह्नउनका तत्काल मरण हो गया।

३३. जो रूप के विषय में अत्यन्त गृद्ध होता है, वह उसी तरह अकाल में विनाश को प्राप्त करता है जिस तरह राग से पीड़ित रूप-लंपट पतंग दीप में गिरकर तत्काल मर जाता है।

३४. ग्रिधी घणो मनोज्ञ शब्द सूं, ते पांमें विणास अकालो रे।
जिम रागें पीड्यो मिरगलो, शब्द लंपटी मरे ततकालो रे।।

३५. मनोज्ञ गंध सूं ग्रिधी घणों, ते पामें विणास अकालो रे।
रागें पीड्यों सर्प गंध ओषधी, गंध लपटी मरें ततकालो रे।।

३६. मनोज्ञ रस सूं ग्रिधी घणों, ते पामें विणास अकालो रे।
रागें पीड्यों मछ मांस नें ग्रहें, रस लपटी मरे ततकालो रे।।

३७. मनोज्ञ फरस सूं ग्रिधी घणों, ते पामें विणास अकालो रे।
रागें पीड्यों महिष जल पडें, फरस लंपटी मरें ततकालो रे।।

३८. मनोज्ञ भाव सूं ग्रिधी घणो, ते पामें विणास अकालो रे।
रागें पीड्यों हस्ती कामभोग सूं, लपटपणा सूं मरें ततकालो रे।।

३९. एक एक इंद्री ना विकार थी, पामी अकाले घातो रे।
आतो इण भव केरी वानगी, कहे दिखाई छें बातो रे।।

४०. एक एक इंद्री ना विकार थी, दुख पामें छें एमो रे।
तो पांचूं इंद्री ना विकार थी, दुखां नों कहिवो केमो रे।।

४१. इंद्रयां रो विकार राग धेष छें, ते इंदर्‌यां रा गुण थी न्यारा रे।
इंदर्‌यां तो शब्दादिक सुणें देख लें, शब्दादिक राग सूं लागें प्यारा रे।।

३४. जो मनोज्ञ शब्दों में अत्यन्त गृद्ध होता है, वह अकाल में उसी तरह विनाश को प्राप्त करता है जिस तरह राग से पीड़ित शब्द-लंपट मृग जाल में फंसकर तत्काल मर जाता है।

३५. जो मनोज्ञ गंध में अत्यन्त गृद्ध होता है, वह अकाल में उसी तरह विनाश को प्राप्त करता है जिस तरह राग से पीड़ित गन्ध-लंपट सर्प गंध औषधि में लिपटकर तत्काल मर जाता है।

३६. जो मनोज्ञ रस में अत्यंत गृद्ध होता है, वह अकाल में उसी तरह विनाश को प्राप्त करता है जिस तरह राग से पीड़ित रस-लंपट मत्स्य मांस को पकड़कर तत्काल मर जाता है।

३७. जो मनोज्ञ स्पर्श में अत्यन्त गृद्ध होता है, वह अकाल में उसी तरह विनाश को प्राप्त करता है जिस तरह राग से पीड़ित स्पर्श-लंपट महिष (भैंसा) जल में गिरकर तत्काल मर जाता है।

३८. जो मनोज्ञ भाव में अत्यन्त गृद्ध होता है, वह अकाल में उसी तरह विनाश को प्राप्त करता है जिस तरह राग से पीड़ित कामभोग-लंपट हाथी हथिनी के संस्पर्श में लुब्ध होकर तत्काल मर जाता है।

३९. एक-एक इंद्रिय के विकार से जीव इस तरह अकाल में घात को प्राप्त होते हैं। यह जो बताया गया है, वह इस भव की घात का निदर्शन है।

४०. एक-एक इंद्रिय के विकार से जीव इस तरह दुःख पाता है। फिर पांचों इंद्रियों के विकार से जो दुःख होते हैं, उनका तो कहना ही क्या है ?

४१. इन्द्रियों के विकार राग-द्वेष हैं। वे इन्द्रियों के गुणों से भिन्न हैं। श्रोत्र, चक्षु आदि इंद्रियां शब्द, रूप आदि विषयों को सुन, देखकर आदि के द्वारा ग्रहण करती हैं। शब्द आदि विषय राग से प्रिय लगते हैं।

४२. शब्दादिक जथातथ जांण्यां देखीयां, पाप न लागें लिगारो रे।
पाप लागें छें राग धेष आंणियां, राग धेष छें विषय विकारो रे।।

४३. राग नें धेष दोनूं खय कियां, तो वीतरागी गुण थावे रे।
इंदर्‌यां तो कुसले रहें, अें तों केवल दर्शन में समावे रे।।

४४. तिणसूं इंद्रयां तो सावद्य नही, सावद्य छें राग धेषो रे।
पाप कर्म लागें तेहथी, ते तो इंद्रयां रो नही लेखो रे।।

४५. करलो वचन कह्यो श्रवणे सुण्यों, मन सूं जांण्यो जब जाग्यों धेषो रे।
तिणरो शरीर सघलोई प्रजल्यों, आंख्यां हुइ लाल वशेषों रे।।

४६. विषेंकारी वचन श्रवणे सुण्यों, मनसूं जांण्यो जब उपनो रागो रे।
सगलो शरीर विषें सूं फलफूलीयों, विकार सहित जोवा लागो रे।।

४७. राग द्वेष छें सर्व प्रदेस में, तिणसूं सर्व प्रदेसां पाप लागें रे।
वले सावद्य जोग कषाय थी, पाप लागें नें निजगुण भागें रे।।

४८. वले कहि कहि नें कितरो कहूं, इंदर्‌यां नें सावद्य मत जांणो रे।
इंदर्‌यां सूं पाप लागें नही, त्यांनें रूडी रीत पिछांणो रे।

४९. जोड कीधी इंद्र्‌यां नें ओलखायवा, इंद्रगढ सहर मझारो रे।
संवत अठारें सेंतालें समें, जेठ विद चवदस सोमवारो रे।।

•

४२. इन्द्रियों के शब्द, रूप आदि विषयों को यथातथ्य रूप से जानने और देखने से जरा भी पाप नहीं लगता। राग-द्वेष लाने से पाप लगते हैं। राग-द्वेष विषय और विकार हैं।

४३. राग और द्वेष दोनों को क्षय करने से जीव के वीतरागता का गुण प्रकट होता है। इन्द्रियां तो उस समय भी सकुशल रहती हैं। वे केवलदर्शन में समाहित हो जाती हैं।

४४. अतः इन्द्रियां सावद्य नहीं हैं। बल्कि सावद्य राग और द्वेष हैं। पाप कर्म राग और द्वेष से लगते हैं। इन्द्रियों का उससे कोई संबंध नहीं है।

४५. किसी ने कठोर वचन कहा। उसे कानों से सुना। उसे मन से वैसे समझा तब द्वेष उत्पन्न हुआ। उसका सारा शरीर प्रज्वलित हो गया तथा आँखें विशेष रूप से लाल हो गई।

४६. विषयकारी वचन कानों से सुना तथा मन से उसे वैसा समझा तब राग उत्पन्न हुआ। सारा शरीर विषय-विकार से फलफूल गया और वह विकारपूर्वक देखने लगा।

४७. राग और द्वेष जीव के सर्व प्रदेशों में होते हैं। अतः सर्व प्रदेशों से पाप कर्म लगते हैं। इसी तरह सावद्य योग और कषाय से पाप लगते हैं तथा आत्मा के निज गुण तिरोहित हो जाते हैं।

४८. कह-कह कर कितना कहूं ? इन्द्रियों को सावद्य न जानें। पाप इन्द्रियों से नहीं लगता। इन्द्रियों को अच्छी तरह पहचानें।

४९. इंद्रियों के स्वरूप को समझाने के लिए विक्रम संवत् १८४७ ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी, सोमवार को इन्द्रगढ़ शहर में मैंने यह जोड़-रचना की।

●

दुहा

१. केइ इंदर्यां नें मूढ सावद्य कहे, कूडा कूडा कुहेत लगाय।
तिण श्री जिण वचन उथापनें, खांच लीधी गलारे मांय।।

२. कहे इंद्रयां निग्रह करणी कही, दमणी जीतणी कही ठांम ठांम।
वस करणी नें संवरणी कही, सावद्य छें तो कही छें आंम।।

३. इण विध करें छें परूपणा, तिणरों मूल न जाणे मरम।
तिण रहिस न जाण्यों सिद्धंत रो, भूला अग्यांनी भर्म।।

४. पांचूं इंदर्यां नें सावद्य थापवा, करे अनेक उपाय।
वले खोटी खोटी जोडा करे, भोला लोकां नें दीयां भरमाय।।

५. इंदर्यां नें निग्रह करणी कही, तिणरो न्याय न जाणें मूढ।
तिणसूं उंधी करे छें परूपणा, झूठी झाल रह्या छें रूढ।।

६. शब्दादिक पांचूं उपरे, राग धेष न करणो हेत पीत।
इम निग्रह करणी दमणी जितणी, वस करणी संवरणी इण रीत।।

७. वले वशेषें तेहनो, विवरो कहूं छूं तांम।
चित्त लगाय न सांभलों, ज्यूं सीझे आत्म कांम।।

दोहा

१. कई मूढ़ लोग मिथ्या कुहेतु लगाकर इन्द्रियों को सावद्य कहते हैं। उन्होंने श्री जिनेश्वर देव के वचनों को उत्थापकर दुराग्रह को ग्रहण कर लिया है।

२. कई कहते हैं कि इन्द्रियों को निग्रह करने, दमन करने, जीतने, वश करने और संवरण करने का स्थान-स्थान पर कहा गया है। इन्द्रियां सावद्य हैं तभी ऐसा कहा गया है।

३. वे उसका मर्म नहीं जानते इसलिए इस प्रकार की परूपणा करते हैं। सिद्धान्त के रहस्य को नहीं जानने से अज्ञानी लोग भ्रमवश भटक रहे हैं।

४. वे पाँचों इन्द्रियों को सावद्य स्थापित करने के लिए अनेक उपाय करते हैं तथा अयथार्थ रचनाओं का निर्माण कर उन्होंने भोले लोगों को भ्रमित किया है।

५. इन्द्रियों को निग्रह करना कहा हैह्नमूढ लोग इसका तात्पर्य नहीं जानते हैं। उन्होंने मिथ्या रूढि को पकड़ रखा है, अतः वे विपरीत प्ररूपणा करते हैं।

६. इन्द्रियों के शब्द आदि पाँचों विषयों के प्रति जीव राग और द्वेष न करे। इन्द्रियों को इस प्रकार निग्रह करना, दमन करना, जीतना, वश करना और संवरण करना चाहिए। जिनेश्वर देव ने ऐसा कहा है।

७. इन्द्रियों के विषय में मैं विशेष रूप से विवरण बतला रहा हूं। उसे तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो, जिससे तुम्हें आत्मोदय का लक्ष्य प्राप्त हो सके।

ढाल : १४

(लय : आ अणुकंपा जिन आग्या में)

इंद्रयां रो सभाव सुणों भव जीवां।।

१. शबदरी चाहि करनें शब्द सुणे तो, शब्द सुणवा री चाहि विषे रस जांणों।
तिण विषे सेवण रा सुध साधु नें, जीवे ज्यां लग छें पचखाणो।।

२. परमार्थका जें शब्द सुण्या नही दोष, वले सहिजां सुणे तोही दोष न लागें।
गमता शबदरी चाहि अभिलाष करे तो, जब त्याग वेराग साधु रो भागे।।

३. शबदरी अभिलाषा नें शबद रो सुणवो,अें तो दोनूं सभाव जूआ जूआ जांणों।
अभिलाषा तो मोह उदे राग भाव छें, इंद्रयां नें खयउपसम भाव पिछांणो।।

४. मोह भाव अभिलाषा तिणनें, मेट दीयां वीतरागी थाय।
खयउपसम इंदरी मेट हुवें तो, जाय पड़े अंध कूप रे माहि।।

५. सुरतइंद्री नें निग्रह इण विध करणी, मन गमता शबद सूं मगन न थाय।
अमनोगन उपर धेष न आणे, तिण सुरतइंद्री निग्रह कीधी छें ताहि।।

६. सुरतइंद्री नें निग्रह कही जिण रीते, दमणी नें जीतणी इमहीज जाणों।
इमहिज वस करणी नें संवर लेणी, यां पांचां रो परमार्थ एक पिछांणो।।

७. निग्रह निग्रह कर रह्या मूर्ख, पिण निग्रह तणो निरणो नही जांणें।
दंसण मोह उदे संवली नही सूझे, पीपल बांधी मूर्ख ज्यूं तांणें।।

ढाल : चौदह

भव्य जीवों! इन्द्रियों का स्वभाव सुनो।

१. यदि कोई शब्द-श्रवण की चाह कर शब्द सुनता है तो शब्द सुनने की चाह को विषय के प्रति रस-आसक्ति जानें। इस प्रकार रसपूर्वक विषय-सेवन का शुद्ध साधु का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान होता है।

२. परमार्थ के लिए शब्द सुनने में कोई दोष नहीं है और सहज भाव से शब्द सुनने में भी कोई दोष नहीं है। पर यदि साधु मनोज्ञ शब्द की चाह और अभिलाषा करता है तो उसका त्याग और वैराग्य तिरोहित होता है।

३. शब्द की अभिलाषा और शब्द का श्रवणह्नइन दोनों स्वभावों को भिन्न-भिन्न जानें। अभिलाषा मोहनीय कर्म के उदय से निष्पन्न राग भाव है, जबकि इन्द्रियों को क्षयोपशम निष्पन्न भाव पहचानें।

४. मोहभाव अभिलाषा को मिटा देने पर जीव वीतरागी बन जाता है। पर यदि कोई क्षयोपशम निष्पन्न इन्द्रियों को नष्ट कर दे तो वह अंधकूप में गिरता है।

५. श्रोत्रेन्द्रिय का निग्रह इस प्रकार करना चाहिएह्न(१) मनोज्ञ शब्द में मग्न-रक्त न हो और (२) अमनोज्ञ शब्द पर द्वेष न लाए। जो ऐसा करता है वह श्रोत्रेन्द्रिय का निग्रह कर लेता है।

६. श्रोत्रेन्द्रिय को जिस विधि से निग्रह करने की बात कही है, उसी विधि से उसे दमन करने और जीतने की बात जाननी चाहिए। उसी तरह उसे वश करना और संवरण करना चाहिए। निग्रह आदि पांचों शब्दों का परमार्थ एक ही हैह्नऐसा जानें।

७. अज्ञ लोग निग्रह-निग्रह शब्द की रटन लगा रहे हैं पर निग्रह शब्द का तात्पर्य नहीं जानते। दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से उन्हें सम्यक् दिखाई नहीं देता। मूर्ख जैसे पीपल वृक्ष को बांधकर खींचने लगाता है वैसे ही ये निग्रह शब्द का अर्थ न समझकर खींचतान करते हैं।

८. तिणसूं ते तों कहे निग्रह इण विध करणी, जाबक सबदां नें सुणवा नांही।
जब उणनें देणो कानां आडो दाटो, छेकी पिण भूल न राखणी कांई।।

९. शबदरी अभिलाषा चाहि करे ते, मन वचन कायरा छें माठा जोग।
शबद सुणें सुरतइंद्री परोखपणे ते, अचखू दर्शन छें मणागार उपयोग।।

१०. शबद सुणें सुरतइंद्री खयउपसम भावे, तिण भाव सूं पाप न लागें लिगार।
पाप लागें अभिलाषा चाहि कीयां थी, ते तो उदे भाव सावद्य जोग व्यापार।।

११. तिण उदे भाव नें निग्रह दमणों कह्यों छें, जीतणो वस करणो नें संवरणो।
निग्रहादिक जूआ जूआ पांच कह्या छें, पिण पांचा रो परमार्थ एक करणो।।

१२. मन वचन काया रा जोग छें सावद्य, त्यां जोगां नें मूढ कहे सुरतइंद्री।
जोग नें सुरतइंद्री एक सरधे छें, तिण समकित खोई छें तिण दिन री।।

१३. रूपरी चाहि करनें रूप देखे तो, रूप देखन री चाहि विषे रस जाणो।
तिण विषे सेवण रा सुध साधु रे, जीवे ज्यां लग छें पचखांणो।।

१४. सुरतइंद्री तणी बारे गाथा कही तिम, पांच इंद्रयां तणी इणहिज विध जाणों।
ए साठ गाथा पांचूं इंद्रयां तणी छें, त्यांरी जूदी जूदी गाथा कह नें पिछांणों।।

१५. ए पांचूं इंदरया रो निग्रह कह्यों जिण, त्यांरो न्याय निरणों न जाणें मिथ्याती।
ते मारग छोड नें उझड पडिया, त्यांरी भोला जीव करें पखपाती।।

८. इसी कारण से वे कहते हैं कि निग्रह करने की विधि यह है कि जीव बिल्कुल शब्द न सुने। यदि यही बात है तब तो ऐसा कहने वालों को कानों में दाट लगा लेना चाहिए और जरा भी सुराख नहीं रखना चाहिए।

९. शब्द की अभिलाषा करनाह्नयह मन, वचन और काया का अशुभ योग है। श्रोत्रेन्द्रिय परोक्ष रूप से शब्द सुनती है, वह अचक्षु दर्शन-अनाकार उपयोग है।

१०. श्रोत्रेन्द्रिय का शब्द सुनना क्षायोपशमिक भाव है। उस भाव से जरा भी पाप नहीं लगता। पाप तो अभिलाषा-चाह करने से लगता है, जो औदयिक भाव सावद्य योग-व्यापार है।

११. उसी औदयिक भाव को निग्रह करने, दमन करने, जीतने, वश करने और संवरण करने की बात कही है। निग्रह आदि पांच भिन्न-भिन्न शब्द कहे गए हैं पर इन पांचों का परमार्थ एक ही करना चाहिए।

१२. मूढ मन, वचन और काया के सावद्य योगों को श्रोत्रेन्द्रिय कहता है। जो योग और श्रोत्रेन्द्रिय को एक मानता है, उसने उसी दिन से सम्यक्त्व खो दी है।

१३. यदि कोई रूप-दर्शन की चाह कर रूप देखता है तो रूप देखने की चाह को विषय के प्रति रस-आसक्ति जानें। उस रस पूर्वक विषय-सेवन का शुद्ध साधु को यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान होता है।

१४. श्रोत्रेन्द्रिय के विषय में ऊपर बारह गाथाएं कही हैं। उन्हें पांच इन्द्रियों के विषय में उसी प्रकार जानें। इस प्रकार पांच इन्द्रियों से संबंधित साठ गाथाएं होती हैं। बारह गाथाओं को एक-एक इन्द्रिय से अनुबन्धित कर वास्तविक तथ्य को पहचानें।

१५. इन पांचों इन्द्रियों का निग्रह जिन भगवान ने कहा है। मिथ्यात्वी उनके कथन का न्याय और तात्पर्य नहीं जानते हैं। वे मार्ग को छोड़कर उन्मार्ग में चले गए हैं और भोले जीव उनका पक्षपात करने लगे हैं।

१६. तिण मूढ मिथ्याती नें पूछा कीजें,
पांचां भावां में निग्रह किसो भाव करणो।
वले किण भाव नें दमणों जीतणों छें,
वले किण भाव नें वस करणो संवरणों।।

१७. जो उ खयउपसम भाव नें दमणो कहे तो,
उपसम खायक भाव नें दमणो वशेख।
उपसम खायक खयउपसम तीजो,
यां तीनां रो निजगुण कह्यों जिण एक।।

१८. जो उ उदें भाव नें दमणों कहे तो, तिणरो गाढो वचन ग्रहे नें बंध कीजे।
वले खयउपसम भाव नें दमणो कहे तो, तिण झूठाबोला नें झूठो घालीजें।।

१९. उदें भाव नीपना रा तेतीस बोल,
इत्यादिक उदे भाव रा बोल अनेक।
तिणमें मोह उदे भाव दमणो कह्यों जिण,
ओर भाव नें दमणों कह्यों नही एक।।

२०. सात कर्म उदे सूं नीपना भाव, त्यांनें पिण दमणा कह्या जिण नांही।
तो खयउपसम भाव दमणों किम कहसी, ते न्याय विचार देखों घट मांही।।

२१. ववहार सचा भाषा कही जिणेसर, तिण भाषा सूं गूंथ्या छें सुतर में बोल।
तिणरी विकलां नें समझ पडें नही पूरी,ते तो समदिष्टी देवें विवरा सुध खोल।।

२२. घणा भेद छें ववहार सचा भाषा रा, ते तो पूरा कहणी न आंवे तांम।
पिण थोड़ा सा परगट करूं छूं त्यांनें, ते सांभलजो राखे चित्त ठांम।।

१६. उस मूढ-मिथ्यात्वी को पूछना चाहिए कि पांच भावों में निग्रह किस भाव का करना चाहिए। किस भाव का दमन करना चाहिए। किसे जीतना, वश में करना और संवृत करना चाहिए।

१७. यदि वह कहे कि क्षायोपशमिक भाव का दमन करना चाहिए तब तो औपशमिक और क्षायिक भाव का विशेष रूप से दमन करना चाहिए। औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिकह्नइन तीनों भावों का निज-गुण जिन भगवान ने एक ही कहा है।

१८. यदि वह कहे कि औदयिक भाव का दमन करना चाहिए तब तो उसके इस यथार्थ वचन को ग्रहण कर उसे सत्य में प्रतिष्ठित करना चाहिए। यदि वह क्षायोपशमिक भाव का दमन करना कहे तो उस मिथ्याभाषी को असत्य साबित कर डालें।

१९. उदय निष्पन्न के तेतीस बोल हैं। इस तरह उदय निष्पन्न के अनेक बोल हैं। जिनेश्वर देव ने उनमें से मोहनीय कर्म के उदय से निष्पन्न बोलों को दमन करने का कहा है। किंतु अन्य किसी भाव को दमन करने का नहीं कहा है।

२०. सात कर्म के उदय से निष्पन्न भावों को भी दमन करने का जिनेश्वर देव ने नहीं कहा है तब फिर क्षायोपशमिक भाव को दमन करने का कैसे कहेंगे? इस न्याय पर अन्तः करण में विचार कर देखो।

२१. जिनेश्वर भगवान ने व्यवहार भाषा और सत्य भाषा बतलाई है। तथा उन्हीं भाषा से सूत्रों में बोलों का गूंथन किया गया है। इन बोलों का हार्द बुद्धि-विकल लोगों को पूरी तरह समझ में नहीं आ रहा है। सम्यग्दृष्टि लोग इन बोलों के रहस्य को विवरण सहित प्रकट कर देते हैं।

२२. व्यवहार भाषा और सत्य भाषा के बहुत भेद हैं, जिन्हें संपूर्णतया नहीं कहा जा सकता। किन्तु उनमें से कुछ भेद प्रकट कर रहा हूं, जिन्हें एकाग्र चित्त होकर सुनें।

२३. सचित्त अचित्त नें मिश्र परिग्रहो, तिणनें अनर्थ रो मूल कह्यों भगवांन।
ज्यूं इंदस्यां ने पिण सत्रू कही छें, त्यांरो न्याय न जांणे ते विकल समांन।।

२४. सचित्त अचित्त नें मिश्र परिग्रह, ते तो निश्चेंइ अनर्थ रा मूल नांही।
ज्यूं पांचूं इंदस्यां पिण सत्रू नही छें, ते न्याय विचारे देखो घट मांही।।

२५. सचित्त अचित्त नें मिश्र परिगरो, तिणरी मूर्छा सावद्य जोग अनर्थ जांणो।
ज्यूं शब्दादिक ऊपर राग आंणें, तिण राग नें सत्रू लीजो पिछांणो।।

२६. समचें शरीर नें नावा कही जिण, उत्तराधेन तेवीसमां धेन मांहि।
ज्यूं इंद्रयां नें शत्रू तिहां इज कही छें, ते पिण विकलां नें खबर न कांय।।

२७. ज्यूं सरीर तों नावा निश्चे नही छें, ज्यूं इंद्रयां पिण सत्रू निश्चेंइ नांही।
त्यांरो परमार्थ समदिष्टी जाणें, पिण भोलां नें खबर पडे नही कांइ।।

२८. सरीर थी सावद्य सेवण आगार, तिण आगार नें फूटी नावा जांण।
ज्यूं शब्दादिक ऊपर राग आणें, तिण राग नें सत्रु लीजों पिछांण।।

२९. शरीर थी सावद्य रा त्याग छे त्रिविधे, ते त्याग छें नावा गुण रत्नां री खांणो।
ज्यूं शब्दादिक ऊपर राग नाणें, तिण त्याग नें मित्री कह्यों जिण जांणो।।

२३. परिग्रह तीन प्रकार का हैह्न(१) सचित्त परिग्रह (२) अचित्त परिग्रह और (३) मिश्र परिग्रह। जिस प्रकार उन तीनों प्रकार के परिग्रहों को भगवान ने अनर्थ का मूल कहा है, उसी तरह भगवान ने पांचों इन्द्रियों को भी शत्रु कहा है। जो इसका न्याय नहीं जानते हैं, वे बुद्धि-विकल लोगों के समान हैं।

२४. जिस तरह सचित्त, अचित्त और मिश्र परिग्रह अपने आप में निश्चय ही अनर्थ का मूल नहीं है। उसी तरह पांचों इंन्द्रियां भी अपने आप में शत्रु नहीं हैं, अन्तः करण में इस न्याय पर विचार कर देखें।

२५. सचित्त, अचित्त और मिश्र परिग्रह के प्रति मूर्च्छा करना सावद्य योग है। इस सावद्य योग को अनर्थ का मूल जानें। इसी तरह शब्द आदि विषयों के प्रति राग लाना सावद्य योग है। उस राग को शत्रु पहचानें।

२६. जिस तरह उत्तराध्ययन सूत्र के तेईसवें अध्ययन (श्लो. ७३) में जिनेश्वर देव ने सारे शरीर को नाव कहा है, उसी तरह वहां इद्रियों को शत्रु कहा है। यह भी बुद्धि-विकल लोगों को कुछ पता नहीं है।

२७. जिस तरह शरीर निश्चय ही नाव नहीं है, उसी तरह इंद्रियां भी निश्चित रूप से शत्रु नहीं है। उनका परमार्थ सम्यग्दृष्टि लोग जानते हैं, किंतु भोले लोगों को इसका कुछ भी पता नहीं चलता।

२८. जिस तरह शरीर से सावद्य के सेवन का जो आगार (मुक्तता) है उसे फूटी नाव जानें, वैसे ही जीव शब्दादि विषयों के प्रति जो राग भाव करता है, उस राग भाव को शत्रु पहचान लें।

२९. जिस तरह शरीर से सावद्य-सेवन का त्रिविध त्याग नाव रूप है, उसी तरह शब्द आदि विषयों के प्रति रागात्मक भाव के त्याग को जिन भगवान ने मित्र कहा है। ऐसा त्याग ही गुण रत्नों की खान है।

३०. प्रथवीकाय नें संजम कह्यों जिण, ज्यूं इंदर्‍यां सत्रू कही भगवंत।
ते न्याय न जाणें मूंढ मिथ्याती, तिणरो परमारथ जांणें मतवंत।।

३१. प्रथवीकाय तो संजम निश्चे नही छें, संजम छें प्रथवी हणवा रो त्याग।
ज्यूं इंदरयां पिण सत्रू निश्चें नही छें, सत्रू सब्दादिक सूं कीयां राग।।

३२. प्रथवीकाय नें असंजम कह्यों जिण, ज्यूं इंदरयां नें सत्रू कही भगवंत।
ते पिण न्याय न जांणें मूंढ मिथ्याती, तिणरो परमार्थ सुणजो मतवंत।।

३३. प्रथवीकाय असंजम नही निश्चें, असंजम तो प्रथवी हणवारो अत्याग।
ज्यूं इंदर्‍यां पिण सत्रू निश्चें नही छें, सत्रू तो शब्दादिक सूं कीयां राग।।

३४. सतरे भेदें संजम नें असंजम, प्रथवीकाय ज्यूं सतरेइ जांण।
त्यांरो त्याग संजम नें अत्याग असंजम,त्यांरी जूदी जूदी कर लीजो पिछांण।।

३५. काम नें भोग कह्या छें अनर्थरा मूल,
त्यां नें कह्या छें महादुख नें दुख तणी खांन।
त्यांनें किंपाक फल री ओपमा दीधी,
ज्यूं इंदर्‍यां सत्रू कही भगवांन।।

३६. कांम नें भोग कह्या छें अनर्थ रा मूल, ते तो राग नें धेष आसरी जांण।
ज्यूं इंदरयां नें पिण सत्रू कही छें, तिणनें लीजों रुडी रीत पिछांणो।।

३०. जिस तरह भगवान ने पृथ्वीकाय को संयम कहा है, उसी तरह भगवान ने इन्द्रियों को शत्रु कहा है। मूढ और मिथ्यात्वी लोग इसका न्याय नहीं जानते हैं। मतिमान लोग ही इसका परमार्थ जानते हैं।

३१. पृथ्वीकाय निश्चय ही संयम नहीं है, पृथ्वीकाय के हनन का त्याग संयम है। उसी तरह इंद्रियां निश्चय ही शत्रु नहीं हैं, इन्द्रियों के शब्द आदि विषयों के प्रति राग करने से इन्द्रियां शत्रु हैं।

३२. जिस तरह भगवान ने पृथ्वीकाय को असंयम कहा है, उसी तरह भगवान ने इंद्रियों को शत्रु कहा है। मूढ और मिथ्यात्वी लोग इसका न्याय नहीं जानते हैं। मतिमान लोग उसका परमार्थ सुनें।

३३. पृथ्वीकाय निश्चय ही असंयम नहीं है, पृथ्वीकाय के हनन का अत्याग असंयम है। उसी तरह इंद्रियां निश्चय ही शत्रु नहीं हैं, इन्द्रियों के शब्द आदि विषयों के प्रति राग करने से इन्द्रियां शत्रु हैं।

३४. सतरह प्रकार का संयम और सतरह प्रकार का असंयम हैं। पृथ्वीकाय संयम और पृथ्वीकाय असंयम की तरह ही सतरह भेदों के संबंध में जानें। पृथ्वीकाय आदि के हनन का त्याग संयम है और हनन का अत्याग असंयम है। इन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार से पहचानें।

३५. काम और भोगों को अनर्थ का मूल कहा गया है। उन्हें महादुःख और दुःख की खान कहा गया है। उन्हें किंपाक फल की उपमा दी गई है। उसी तरह भगवान ने इन्द्रियों को शत्रु कहा है।

३६. काम और भोगों को अनर्थ का मूल कहा गया है, वह उनके प्रति राग और द्वेष की अपेक्षा से जानें। उसी तरह राग ओर द्वेष की अपेक्षा से इंद्रियों को भी शत्रु कहा गया है। उसे अच्छी तरह से पहचानें।

३७. काम नें भोग अनर्थ रा मूल नांही, त्यांसूं ग्रिधपणों अनर्थ रो मूल जाणो।
ज्यूं इंदरयां पिण सत्रू छें नांही, सत्रू तो शब्दादिक सूं राग पिछांणो।।

३८. कांम नें भोग थी जीव सुमता न पामें, कांम नें भोग थी नही पामें विकार।
उत्तराधेन बतीसमें धेनें, सो ऊपरली पेंहली गाथा मझार।।

३९. कांम नें भोग ऊपर राग नें धेष, तेहीज राग धेष छें विषय विकार।
ते मोह कर्म उदे नीपनां भाव, पिण इंदर्‌यां सत्रू नही छें लिगार।।

४०. सत नें दत दोनूंइ संवर कह्या छें, प्रश्नव्याकरण सूतर मझार।
पिण सत ने दत दोनूं नही संवर, सत नें दत दोनूं छें जोग व्यापार।।

●

३७. जिस तरह काम और भोग अनर्थ के मूल नहीं हैं। काम और भोग के प्रति गृद्धि भाव को अनर्थ का मूल जानें। उसी तरह इंद्रियां भी शत्रु नहीं हैं, शत्रु तो शब्द आदि विषयों के प्रति राग भाव है। ऐसा जानें।

३८. उत्तराध्ययन सूत्र के बत्तीसवें अध्ययन की एक सौ एकवीं गाथा में कहा है- जीव काम और भोग से न समता को प्राप्त होता है और न विकार को।

३९. काम और भोग के प्रति जो राग और द्वेष के भाव हैं, वे ही विषय और विकार हैं। वे मोहनीय कर्म के उदय से निष्पन्न भाव हैं। पर इन्द्रियां जरा भी शत्रु नहीं हैं।

४०. प्रश्न व्याकरण सूत्र में सत्त (सत्य) और दत्त दोनों को संवर कहा गया है, किंतु सत्त (सत्य) और दत्त दोनों संवर नहीं हैं, ये दोनों योग-व्यापार हैं।

●

दुहा

१. द्रबे जीव छें सासतों, भावे जीव असासतो छें ताहि।
भगोती रे सतखंध सातमें, कह्यों बीजा उदेसा माहि।।

२. द्रव्य तो तीन काल में सासतों, असंख्यात प्रदेसी जांण।
उपजे नें विणसे ते भाव जीव छें, तिणरी बुधवंत करजों पिछांण।।

३. दरब नें भाव दोनूं छें जूजूआ, ते जीव लेखे तो एकहीज जांण।
उदयादिक पांच भावां करी, भाव जीव नें लीजो पिछांण।।

४. छ द्रव्य जिणेसर भाखीया, त्यांनें सासता कह्या तीन काल।
ते तों गिणती रा छहुं दरबांनें गिण्यां, अठे भाव रों न कह्यों निकाल।।

५. छ द्रबां नें छ दरब कह्या, त्यांरी गिणी नही परजाय।
परजाय तो एकीका दरब री, अनंती अनंती कही जिणराय।।

६. जीव दरब री परजाय नें, भावें जीव कह्यों जिणराय।
ते परजाय तो नीपनी हुवें, द्रब घटें बधें नही ताहि।।

७. दरब नें भाव जीव रों, विवरों कहूं छूं ताहि।
ते जथातथ परगट करूं, ते सुणजो चित्त ल्याय।।

दोहा

१. द्रव्य जीव शाश्वत है और भाव जीव अशाश्वत है। यह भगवती के सातवें शतक के दूसरे उद्देशक (सू. ५९) में कहा गया है।

२. द्रव्य जीव तीन काल में शाश्वत होता है, वह असंख्य प्रदेशात्मक चेतन पिण्ड है-ऐसा जानें। जो उत्पन्न और नष्ट होता है, वह भाव जीव है। बुद्धिमान लोग उसकी पहचान करें।

३. द्रव्य और भाव जीव दोनों भिन्न-भिन्न हैं, पर वे जीवत्व की दृष्टि से एक ही हैंह्नऐसा जानें। उदय निष्पन्न आदि पांच भावों के द्वारा भाव जीव को पहचानें।

४. जिनेश्वर देव ने छः द्रव्य बतलाए हैं तथा उन्हें तीनों काल में शाश्वत कहा है। गणना की दृष्टि से छः द्रव्य कहे गए हैं, यहां भाव की दृष्टि से विमर्श नहीं किया गया है।

५. छः द्रव्यों को छः द्रव्य बतलाया गया है। यहां उनकी पर्याय का आकलन नहीं किया गया है। जिनेश्वर देव ने प्रत्येक द्रव्य की अनंत-अनंत पर्याय बतलाई है।

६. जिनेश्वर देव ने द्रव्य जीव की पर्याय को भाव जीव कहा है। यह पर्याय निष्पन्न होती हैह्नउत्पाद और व्यय को प्राप्त होती है। द्रव्य जीव किंचित् भी घटता-बढता नहीं है।

७. द्रव्य और भाव जीव का विवरण बतला रहा हूं। उसे यथातथ्य प्रकट कर रहा हूं। उसे एकाग्र चित्त होकर सुनें।

ढाल : १५

(लय : आ अणुकंपा जिण आग्या में)

दरब नें भाव जीवरो निरणों कीजो।।

१. द्रब नें भाव जीव रो निरणों कीजों, वीर रा वचन आगम माहे जोवो।
आगम नां उंधा उंधा अर्थ करेनें, मानव नों भव कांय विगोवो।।

२. नव पदार्थ में धुर सूं जीव कह्यों जिण, तिणमें दरब नें भाव दोनूं ई आया।
काइ दरब गुण परजाय बारें न राखी, समचें जीव कह्यों तिणमें सर्व समाया।।

३. आश्व संवर निरजरा नें मोख, ए च्यारूं पदार्थ छें भाव जीवो।
यांनें समदिष्टी ओलखीया अभिंतर, त्यांरें अभिंतर ग्यांन खुल्यों घट दीवों।।

४. आश्व संवर निरजरा नें मोख,
यांनें दरबे जीव कह्यों छें अग्यांनी।
तिण भाव जीव नें दरब जीव सरध्या,
तिणनें समदिष्टी किण विध जांणे ग्यांनी।।

५. अधवसाय परिणांम ध्यांन नें लेस्या, त्यांरा भेद अनेक कह्या भगवंत।
ए जीवरा भाव असासता निश्चैं, त्यांनें भावे जीव जांणो मतवंत।।

६. वले जोग उपीयोग नें दिष्ट तीनोंइ, कषाय संज्ञादिक बोल अतंत।
ए पिण जीवरा भाव असासता निश्चें, त्यांनेंइ भावे जीव कह्या भगवंत।।

७. नारकी तिरजंच मिनख नें देवा, वले चोवीस डंडक नें छकाय।
इत्यादिक अनेक असासता त्यांनें, भावे जीव कह्या जिणराय।।

ढाल : पन्द्रह

द्रव्य और भाव जीव का निर्णय करें।

१. आगम में भगवान के वचनों को देखकर द्रव्य और भाव जीव का निर्णय करो। आगम के विपरीत अर्थ करके मानव-भव को क्यों डुबो रहे हो?

२. जिनेश्वर देव ने नौ पदार्थ में पहला जीव पदार्थ बतलाया है। उसमें द्रव्य जीव और भाव जीव दोनों का समावेश हो गया है। इसमें द्रव्य, गुण और पर्याय-किसी को पृथक् नहीं रखा है। समुच्चय जीव में सबका समावेश हो गया है।

३. आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्षहृये चारों पदार्थ भाव जीव हैं। सम्यग्दृष्टि जीवों ने इन्हें जीव पदार्थ के अन्तर्गत जाना है। इससे उनके अन्तः करण में आभ्यन्तर ज्ञान रूपी दीप प्रज्वलित हो गया है।

४. आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष-इन्हें अज्ञानी लोग द्रव्य जीव कहते हैं। उन्होंने भाव जीव को द्रव्य जीव मान लिया है। ज्ञानी उन्हें सम्यग्दृष्टि कैसे मानेंगे।

५. भगवान ने अध्यवसाय, परिणाम, ध्यान और लेश्या के अनेक भेद बतलाए हैं। ये निश्चय ही जीव के भाव हैं, अशाश्वत हैं। मतिमान लोग! इन्हें भाव जीव जानें।

६. इसी तरह योग, उपयोग, तीन दृष्टि, कषाय, संज्ञा आदि अनंत बोल हैं। ये भी निश्चय ही जीव के भाव हैं, अशाश्वत हैं। भगवान ने उनको भाव जीव कहा है।

७. नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देवता, चौबीस दण्डक, छः काय आदि अनेक अशाश्वत हैं। उन्हें जिनेश्वर देव ने भाव जीव कहा है।

८. दरब आत्मा नें दरबे जीव कहीजे, सेष जीवरी परजाय आत्मा सात।
तिण परजाय नें दरबे जीव सरधे, तिणरे निश्चेइ आय चूको छें मिथ्यात।।

९. भाव जीव नें दरब जीव सरधें, ते अन्हाखी थको करे झूठी झखाल।
ते आगम उथापनें उंधी परूपें, अनंता अरिहंता सिर दीधो आल।।

१०. द्रबे तो जीव नें एक कह्यो छें,
तिण एक रा दोय कदे नही होय।
तिण दरब रा लखणां नें भाव जीव कहीजे,
तिण भाव री संख्या नही छें कोय।।

११. सुखदेव सिन्यासी पूछा कीधी, तिणरों जाब दीयों थावचे अणगार।
दरब थकी तो हूं एक हो सुखदेव, ते हूं सासतों तीनोंइ काल मझार।।

१२. नाणदंसणठया ए दोय पिण हूं छूं, प्रदेसठया ए अखय पिण हूं छूं।
प्रजोगठयाए अनेक पिण हूं छूं, अें तोनें जाब सूतर सूं देऊ छूं।।

१३. वले सोमल नें कह्यों वीर जिणेसर, दरब थकी हूं सोमल एक।
अठारमां सतक रें दसमें उदेशें, भगोती सूतर जोय छोड दों टेक।।

१४. वले पारसनाथजी कह्यो सोमल नें, दरब थकी हूं सोमल एक।
निरावलका सूतर जोय निरणों कीजों, परभव सहमों जोय नें छोड़ दो टेक।।

८. द्रव्य आत्मा को द्रव्य जीव कहा जाता है। शेष सात आत्मा जीव की पर्याय हैं। उस पर्याय को जिसने द्रव्य जीव मान लिया है, उसके निश्चित ही मिथ्यात्व का आगमन हो गया है।

९. जो भाव जीव को द्रव्य जीव मानता है, वह व्यर्थ ही मिथ्या बकवास करता है। उसने आगम-वाणी को उलटकर विपरीत प्ररूपणा कर अनंत अर्हतों पर मिथ्यारोपण किया है।

१०. द्रव्य से जीव को एक कहा गया है। उस एक के दो कभी नहीं हो सकते। इस द्रव्य जीव के लक्षणों को भाव जीव कहा जाता है। इस भाव जीव की कोई संख्या नहीं है अर्थात् अनंत है।

११. सुखदेव संन्यासी ने प्रश्न पूछा, जिसका उत्तर अनगार थावच्चापुत्र ने दिया। उन्होंने कहा-सुखदेव! द्रव्य की अपेक्षा से मैं एक हूं और मैं तीनों ही कालों में सत्ता स्वरूप-शाश्वत हूं।

१२. ज्ञान और दर्शन की दृष्टि से मैं दो भी हूं। प्रदेश की दृष्टि से मैं अक्षय भी हूं। उपयोग की दृष्टि से मैं अनेक पर्यायों से युक्त भी हूं। ये मैं जवाब तुम्हें सूत्र से दे रहा हूं।

१३. जिनेश्वर महावीर ने सोमिल से कहाह्नसोमिल! मैं द्रव्य की अपेक्षा से एक हूं। यह भगवती सूत्र के अठारहवें शतक के दसवें उद्देशक (सू. २२०) में देखकर मिथ्या आग्रह को छोड़ दो।

१४. पार्श्वनाथ ने सोमिल से कहाह्नसोमिल! मैं द्रव्य की अपेक्षा से एक हूं। निरयावलिका सूत्र देखकर यह निर्णय कर लेना चाहिए। परलोक का चिन्तन कर यह मिथ्या आग्रह छोड़ दो।

१५. इत्यादिक सूतर में ठांम ठांम, दरब थकी जीव कह्यों छें एक।
तिण दरब रा भाव नीपना त्यानें, भाव थकी जीव नें कहीजें अनेक।।

१६. दरब थकी जीव तो सासतो कहीजें, भाव थकी असासतो केहणों।
भगोती रे सात्में सतक कह्यों छें, दूजा उदेसा माहें जोय लेणों।।

१७. जीव दरबे सासतो भावे असासतो, जमाली नें वीर कह्यो छें ताहि।
भगोती सुतर रा नवमां सतक में, तेतीसंमां उदेसा रें माहि।।

१८. नेरइयों नेरइयों दरब थी तूला, प्रदेस थकी पिण तूला जांणो।
अवग्राहणा नें थित आश्री तो, चउठाणवडीयों लेजो पिछांणो।।

१९. नव उपीयोग आश्री छठाणवडीयो, तिणरी धारणा करनें रीत सूं कहीजें।
चउठाण नें छठाणवडीया, त्यांने भावे जीव पिछांण लीजें।।

२०. दरब नें प्रदेस वधें घटें नांही, वधें घटें तिण नें भाव जीव कहीजें।
नारकी तिम डंडक चोवीसोंइ कहिणा, जिण जिण में बोल पावें ते लीजें।।

२१. ए पन्नवणा रा पांचमां पद माहें, तिण ठामें तो छें घणों विस्तारो।
इम सांभल नें उत्म नरनारी, दरब भाव सरध लों न्यारो न्यारो।।

१५. इस तरह सूत्र में अनेक स्थानों पर जीव को द्रव्य की अपेक्षा से एक कहा है। उस द्रव्य की जो पर्यायें निष्पन्न होती हैं, उनकी अपेक्षा से जीव को अनेक कहा जाता है।

१६. जीव को द्रव्य की अपेक्षा से शाश्वत कहा जाता है तथा भाव की अपेक्षा से अशाश्वत कहा जाता है। यह भगवती सूत्र के सातवें शतक के दूसरे उद्देशक (सू. ५९) में देख लेना चाहिए।

१७. भगवती सूत्र के नौवें शतक के तेतीसवें उद्देशक (सू. २३३) में भगवान महावीर ने जमाली से कहाह्नजीव द्रव्य की अपेक्षा से शाश्वत और भाव की अपेक्षा से अशाश्वत है।

१८. एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य होते हैं तथा आत्म-प्रदेश की अपेक्षा से भी तुल्य जानें। अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा से उन्हें चतुः स्थान पतित पहचानें।

१९. नौ उपयोग की अपेक्षा से उन्हें षट् स्थान पतित जानें। उसकी सम्यक् अवधारणा कर विधिपूर्वक कहना चाहिए। चतुःस्थान पतित और षट् स्थान पतित को भाव जीव पहचानें।

२०. द्रव्य और प्रदेश में किंचित् भी घट-बढ़ नहीं होती है। जो घट-बढ़ होती है उसे भाव जीव कहना चाहिए। नारकी की तरह चौबीस दण्डक के विषय में कहा जाए तथा उनमें पाए जाने वाले बोलों का ग्रहण किया जाए।

२१. ये बोल प्रज्ञापना सूत्र के पांचवें पद में वर्णित हैं, वहां उन बोलों का बहुत विस्तार उपलब्ध है। यह सब सुनकर उत्तम नर-नारी लोग द्रव्य और भाव जीव को भिन्न-भिन्न समझें।

२२. इत्यादिक सुतर में ठांम ठांम, दरबे जीव नें सासतो कह्यों वीर।
भावे असासतो जीव कह्यों छें, दरब नें भाव जांण्या छें सरधा सधीर।।

२३. भावे जीव असासतो तिणनें, दरब नें भावे कहे छें दोनूइ।
एहवी उंधी परूपणा करनें अग्यानी, उसभ कर्म उदे साची सरधा नें खोइ।।

२४. दरबे जीव तो नित सासतों छें, तिणनें पिण कहें दरब नें भाव दोनूंइ।
यांनें ओलखीयां विण उंधी परूपें, तांण कर कर नें यूंही आत्म विगोइ।।

२५. दरब नें लखणां नें दरब ने कहीजें, लखणां रा दरबां नें लखण न कहीजें।
दरब नें लखण न्यारा न्यारा कहीजें, जीव रें लेखें दोयां नें एक गिणीजें।।

२६. जिण दरब नें भाव ओलखीया नांही, ते खाय रह्या छें अग्यांनी झखोलां।
त्यांनें प्रश्न पूछ्यां तो डिगता बोले, त्यांरी परतीत करनें बूढें कोइ भोला।।

२७. दरब री ठोर तो भाव बतावे, भाव री ठोर दरब नें बतावें।
तिणरी अभिंतर आंख हीया री फूटी, तिणसूं आंमो सांहमो झखोला खावें।।

२८. दरब नें भाव जीव ओलखीया नाही, तिणनें समझावण पूछा कीजें।
दरब जीव नें एक के अनेक कहीजें, वले सासतो के असासतो कहीजें।।

२९. जो उ दरब जीवनें सासतो कहिदे, वले दरब जीव नें कहिदे एक।
तिणरो वचन गाढो कर चरचा कीजे, भाव जीव असासतो कहीजे अनेक।।

२२. ऐसे अनेक सूत्रों में स्थान-स्थान पर भगवान महावीर ने द्रव्य जीव को शाश्वत कहा है तथा भाव जीव को अशाश्वत कहा है। श्रद्धा संपन्न जनों ने द्रव्य और भाव को जाना है।

२३. भाव जीव अशाश्वत हैह्नउसे द्रव्य और भाव दोनों कहते हैं। अज्ञ लोगों ने ऐसी विपरीत प्ररूपणा करके अशुभ कर्म के उदय से सच्ची श्रद्धा को खो दिया है।

२४. द्रव्य जीव नित्य और शाश्वत हैंह्नउसे भी वे द्रव्य और भाव दोनों कहते हैं। उन्हें जाने बिना विपरीत प्ररूपणा करते हैं तथा खींचतान कर व्यर्थ ही उन्होंने आत्मा को डुबो दिया है।

२५. द्रव्य जीव के लक्षणों को द्रव्य नहीं कहा जाता है तथा लक्षणों के द्रव्य को लक्षण नहीं कहा जाता है। द्रव्य और लक्षण भिन्न-भिन्न कहे जाते हैं तथा जीव की अपेक्षा से दोनों (द्रव्य और लक्षण) को एक गिना जाता है।

२६. जिन्होंने द्रव्य और भाव को पहचाना नहीं है, अज्ञानी इतस्ततः भ्रान्त हो रहे हैं। उन्हें प्रश्न पूछने पर वे लड़खड़ाकर बोलते हैं। कोई भोले मनुष्य ही उनकी प्रतीति करके डूबते हैं।

२७. वे द्रव्य के स्थान पर भाव और भाव के स्थान पर द्रव्य को बतलाते हैं। उनका आभ्यन्तर नेत्र-विवेक नष्ट हो गया है। उससे वे इतस्ततः भ्रान्त हो रहे हैं।

२८. जिसने द्रव्य और भाव जीव को पहचाना नहीं है, उसे समझाने के लिए प्रश्न पूछना चाहिए कि द्रव्य जीव को एक कहना चाहिए या अनेक तथा शाश्वत कहना चाहिए या अशाश्वत।

२९. यदि वह द्रव्य जीव को शाश्वत कह दे तथा द्रव्य जीव को एक कह दे तो उसके वचन को पुष्ट करके चर्चा करनी चाहिए। उसे भाव जीव को अशाश्वत और अनेक कहकर समझा देना चाहिए।

३०. पछे दरब नें भाव री चरचा करनें, समझतो जांणे तो समझाय लीजें।
जो समझायो समझे नहीं मूर्ख, तिणसूं विषवाद कदेय न कीजे।।

३१. सासतो असासतो दोनूं न जांणे, वले दरब नें भावरा नही निवेरा।
अजांण थको उंधी तांण करें छें, तिण नरक सूं सनमुख दीधा डेरा।।

३२. दरब ने भाव जीव ओलखावण काजे, जोड कीधी माधोपुर सहर मझारो।
समत अठारे नें वरस सेंताले, चेत विद बीज नें सोमवारो।।

●

३०. यदि समझने की संभावना हो तो बाद में उससे द्रव्य और भाव की भिन्न-भिन्न चर्चा करके समझा देना चाहिए। यदि समझाने पर भी मूर्ख न समझे तो उससे कभी भी कटुता पैदा नहीं करनी चाहिए।

३१. जो शाश्वत और अशाश्वत दोनों को नहीं जानता है तथा द्रव्य और भाव से अनभिज्ञ है। वह अज्ञानतावश विपरीत खींचतान करता है तो उसने नरक के सम्मुख अपना डेरा डाल दिया है।

३२. द्रव्य और भाव जीव के स्वरूप को समझने के लिए विक्रम संवत् १८४७ चैत्र कृष्णा द्वितीया, सोमवार को माधोपुर शहर में मैंने यह जोड़-रचना की।

●

आमुख

आत्मा चेतन तत्त्व है। उसके गुण और पर्याय भी चेतन हैं-जीव हैं। इन्हें भाव जीव कह सकते हैं। आचार्य भिक्षु के शब्दों में जीव के गुण साक्षात् जीव होते हैं। उन्हें जीव न मानना मिथ्यात्व मूलक मान्यता है।

पर्यायवादी एक ऐसा मत है जो चेतन के गुण और पर्याय को जीव एवं अजीव दोनों ही नहीं मानता। वह कहता है कि जीव और जीव की पर्याय एक नहीं हैं। इस आधार पर वह जीव के पर्याय को जीव नहीं मानता है।

पर्यायवादी की चौपई में आचार्य भिक्षु कहते हैंह्नजीव और अजीव का पर्याय एक है, इन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता। वे आगमिक आधार पर सिद्ध करते हैं कि योग, उपयोग, लेश्या, गुणस्थान आदि निश्चय ही जीव हैं।

पर्यायवादी पर्याय को जीव और अजीव दोनों न मानकर त्रैराशिकवाद का निरूपण करता था। वह केवल द्रव्य आत्मा को ही जीव मानता था। शेष आत्मा को जीव मानने में सकुचाता था। द्रव्य आत्मा शाश्वत है, इस आधार पर वह उसे जीव कहता था। शेष आत्मा अशाश्वत हैं, वह अशाश्वत द्रव्य को जीव नहीं मानता था। उसके मतानुसारह्न

- सिद्ध भगवान जीव नहीं हैं।
- तीर्थंकर, चक्रवर्ती, आचार्य, उपाध्याय, महामुनि आदि जीव नहीं हैं।
- पांच प्रकार के देव जीव नहीं हैं।
- पांच जाति, षड्जीवनिकाय, जीव के चौदह भेद आदि नहीं हैं।
- चार ध्यान और छह भाव लेश्या जीव नहीं हैं।
- बारह उपयोग, चौदह गुणस्थान, चौबीस दण्डक आदि जीव नहीं हैं।

- छह निग्रन्थ, पांच चारित्र, सात आत्मा आदि जीव नहीं हैं।
- कर्म का कर्त्ता और विकर्त्ता जीव नहीं हैं।

इस तरह जीव की समस्त पर्यायों को उसने जीव नहीं माना। इस ऐकान्तिक आग्रह के कारण वह मिथ्यात्व का पोषक बन गया है। इस चौपई में उक्त मिथ्यात्व के उन्मूलन का भरसक प्रयास किया गया है। इसमें तीन ढालें हैं, जिनमें १५ दोहे और १०१ गाथाएं उपलब्ध हैं।

आचार्य भिक्षु ने अनेक आगमिक प्रमाणों से जीव को विविध पर्यायों को जीव प्रमाणित किया है।

परजायवादी री चौपई

परजायवादी री चौपई

दुहा

१. दसासतखंध सूयगडाअंग में, अकिरीयावादी रो विस्तार।
नासतक मत छें तेहनों, ओं जाणें भर्म संसार।।

२. तीर्थंकर चक्रवतादिक, वले साध सती अणगार।
त्यांनें जीव न सरें सरवथा, ते भूलो भर्म गिवार।।

३. तिण नास्तकवादी रा मत तणो, परजायवादी परवार।
तिण नास्तक पाडी जीवरी, तिणरा घट माहे घोर अन्धार।।

४. उ चेतन गुण परजाय नें, नहीं सरधें जीव अजीव।
एहवी उंधी करें छें परूपणा, कर कर खांच अतीव।।

५. वले असासता दरब नें इम कहें, जीव अजीव दोनूंइ कहें नांहिं।
जीव अजीव विना तीजी वस्तु छें, ते तों नहीं गिणती रे मांहि।।

६. नियमा निश्चें जीव तेहनें, जीव गिणे नही ताहि।
तिणरी सरधा परगट करूं, ते सुणजों चित्त ल्याय।।

पर्यायवादी की चौपई

दोहा

१. दशाश्रुतस्कन्ध और सूत्रकृतांग सूत्र में अक्रियावाद का विस्तार से विवेचन किया गया है। यह नास्तिक मत है जो संसार को भ्रम रूप में जानता है।

२. तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि शलाका पुरूष तथा गृह त्यागी साधु-साध्वियों को यह मत जीव नहीं मानता है। इस मत के अनुयायी मूढ और भ्रान्त हैं।

३. पर्यायवादी उस नास्तिकवादी मत का परिवार है, जिसने जीव के अस्तित्व को अस्वीकार किया है। उसके घट में घोर अंधकार है।

४. वह चेतन के गुण और पर्याय को जीव और अजीव दोनों ही नहीं मानता है। अत्यन्त आग्रहपूर्वक वह ऐसी विपरीत प्ररूपणा करता है।

५. जितने भी अशाश्वत द्रव्य हैं, उन्हें वह जीव और अजीव दोनों ही नहीं मानता। जीव और अजीव के अलावा कोई तीसरी वस्तु है, वह गिनती में नहीं है।

६. जो नियमतः निश्चय ही जीव है, उसे वह जीव नहीं मानता। उसकी श्रद्धा (मान्यता) को मैं प्रकट कर रहा हूं। उसे एकाग्र मन होकर सुनें।

ढाल : १

(लय : आ अणुकंपा जिन आगना में)

आ सरधा छें परयायवादी री।।

१. तीर्थंकर गणधर धर्म नां नायक, आचार्य उवझाय मोटा अणगारो।
साध साधवीयादिक च्यारूंइ तीर्थ, यांनें जीव न सरधें ते मूंढ गिंवार।।

२. देव गुर धर्म तीनूंइ रतन अमोलक, त्यांरों सरणों लीयां उतरें भवपारों।
यांनें जीव न सरधें ते मूंढ मिथ्याती, तिण आंख मीचीनें कीयों अंधारों।।

३. गुर नही जीव चेलो नही जीव, विनों अविनों करे ते पिण जीव नांही।
मांहोमा करें संभोग असणादिक नों, तिण में पिण जीव रों अंस न कांइ।

४. आठोइ कर्मां सु मूकावे ते मोख, त्यांनें तों कहीजें सिध भगवांन।
त्यांनें पिण जीव न सरधें अग्यानी,त्यां विकलां में नही छें जाबक विगनांन।।

५. सुतर बांचे ते जीव नही छें, धर्म कथा कहे ते पिण नही जीव।
वखांण सुणें ते पिण जीव नांही, त्यां दीधी मिथ्यात री उंडी नीव।।

६. तिरण तारण जीव नें नही सरधें, जीव नें जीव नही उतारें पारो।
जीव नें जीव डबोंवे नांही, वले जीव नें जीव न करें खुवारे।।

७. चक्रवत वासुदेव मंडलीक राजा, ए मिनख हुआ करणी कर मोटी।
भवी दरबादिक पांचूंइ देवां नें, यांनें जीव न कहें तिणरी सरधा खोटी।।

ढाल : एक

यह श्रद्धा पर्यायवादी की है।

१. तीर्थंकर और गणधर धर्म के नायक हैं। आचार्य और उपाध्याय विशिष्ट अनगार हैं तथा साधु-साध्वी आदि चारों तीर्थ हैं। इन्हें जीव नहीं श्रद्धता वह मूढ और अनभिज्ञ है।

२. देव, गुरु और धर्मह्नये तीनों ही अमूल्य रत्न हैं। उनकी शरण लेकर जीव भवपार हो जाता है। उन्हें (रत्नत्रयी को) जीव न मानने वाला मूढ और मिथ्यात्वी है। उसने आंख मूंदकर अंधकार किया है।

३. गुरु जीव नहीं है और शिष्य भी जीव नहीं है। विनय और अविनय करने वाला भी जीव नहीं है। परस्पर अशन आदि का संभोज करते हैं, उनमें भी जीव का अंश नहीं है।

४. आठों कर्मों के क्षीण होने से मोक्ष प्राप्त होता है। उन्हें सिद्ध भगवान कहा जाता है। अज्ञानी उन्हें भी जीव नहीं मानता है। उन बुद्धि-विकल लोगों में किंचित् भी विज्ञान नहीं है।

५. सूत्र वाचन करने वाला जीव नहीं है, धर्म-कथा करने वाला भी जीव नहीं है तथा व्याख्यान सुनने वाला भी जीव नहीं हैह्नऐसा मानने वालों ने मिथ्यात्व की गहरी नींव लगा दी है।

६. तीर्ण-तारक को जीव नहीं मानता तथा वह मानता है कि जीव को जीव पार नहीं उतारता, जीव को जीव नहीं डुबोता तथा जीव जीव का अनिष्ट नहीं करता।

७. महान करणी कर चक्रवर्ती, वासुदेव और माण्डलिक राजा मनुष्य हुए, इन्हें तथा भव्य द्रव्य देव आदि पांच प्रकार के देवों को जो जीव नहीं कहता है, उसकी श्रद्धा मिथ्या है।

८. बाप नही जीव बेटो नही जीव, वले जीव नही सगलो परवारो।
जीव जन्में नही जीव मरें पिण नांही, जीव नही भोगवे विषें विकारो।।

९. परणीजे परणावे ते जीव नही छें, जांनी मांडी आया ते पिण नही जीव।
असणादिक नीपजावें ते जीव नही छें, जीमें जीमावें ते नही जीव अजीव।।

१०. अप्रज्यापतो होय प्रज्यापतो हुवों, पछें बाल जुवांन ने होय गयों बूढों।
नेरइयो तिरजंच मिनख नें देवा, यांनें जीव न सरधें ते जाबक मूढो।।

११. हालें चालें तिणनें जीव न कहीजें, वले जीव न करें छें विणज व्यापारो।
खेती करसणादिक करें ते जीव नही छें,जीव तो नही करे छें झगडा नें राडो।।

१२. एकिंद्री आदि दे पंचिंद्री नें, वले प्रथवी आदि देइ छकाय।
वले चउदें भेद छें जीवरा त्यांनें, यां सगलां नें जीव कहें नही ताहि।।

१३. हिंसक झूठाबोलो नही जीव, वले चोर कुसीलीयों नें धनपातर।
वले तीनसों तेसठ पाखंडीयां नें, यां सगलां नें जीव न सरधे कुपातर।।

१४. भोगी नही जीव जोगी नही जीव, वेंरी नें मित्री ए पिण जीव नाहि।
मायावीया मिथ्याती नें जीव न जांणें, इण खोटी सरधा माहे कला न कांइ।।

१५. आरत रूद्र धर्म नें सुकल, यां च्यारूं ध्यांन नें जीव न जांणें।
छ भाव लेंस्या नें पिण जीव न जांणें, अग्यांनी थका मूंढ उंधी तांणें।।

८. पिता जीव नहीं है, पुत्र जीव नहीं है तथा समस्त परिवार जीव नहीं है। इसी तरह जीव जन्म नहीं लेता है, जीव मरता भी नहीं है तथा जीव विषय-विकार का सेवन नहीं करता है।

९. विवाह करने वालेह्नकरवाने वाले जीव नहीं हैं, बाराती और मेजवान जीव नहीं हैं, भोजन बनाने वाले जीव नहीं हैं तथा भोजन करने-करवाने वाले भी जीव-अजीव दोनों नहीं है।

१०. अपर्याप्त जीव पर्याप्त बना, कालान्तर में वह बाल, युवा और वृद्ध बनता है। इन्हें तथा नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव को जीव न मानने वाला सर्वथा मूढ होता है।

११. हलन-चलन करने वाले को जीव नहीं कहा जाता और वाणिज्य-व्यापार जीव नहीं करता है। खेती-बाड़ी करता है, वह जीव नहीं है तथा जीव लड़ाई-झगड़ा नहीं करता है।

१२. एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव, पृथ्वी आदि छः काय के जीव तथा जीव के चौदह भेदों को वे लोग जीव नहीं कहते हैं।

१३. हिंसा करने वाला, झूठ बोलने वाला, चोरी करने वाला, मैथुन सेवन करने वाला और परिग्रह रखने वाला तथा तीन सौ त्रेसठ प्रकार के अन्य मतावलम्बीह्नइन सबको कुपात्र (पर्यायवादी) जीव नहीं मानता है।

१४. भोगी जीव नहीं है, योगी जीव नहीं है, शत्रु जीव नहीं है और मित्र जीव नहीं है। इसी तरह मायावी और मिथ्यात्वी को जीव नहीं जानता है। ऐसी मिथ्या श्रद्धा में कोई कला नहीं है।

१५. आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्लह्नइन चार प्रकार के ध्यान को जीव नहीं जानता है। इसी तरह छः भाव लेश्या को भी जीव नहीं जानता है। अज्ञानतावश मूढ दुराग्रह करता है।

१६. बारें उपीयोग नें चवदें गुणठांणा, त्यांने पिण जीव न जाणें अग्यांनी।
जीव न जाणें चोवीस डंडक नें, तिणनें बुधवंत कोइ न जाणें ग्यांनी।।

१७. छव नियंठा नें पांचोइ चारित, उठाण कमादिक ए पिण पांच।
वले आतमा सात नें सावद्य निरवद, यांनें जीव न मांने करें कूडी खांच।।

१८. इत्यादिक जीव रा भेद अनेक, त्यांने निश्चेंइ जीव कह्या जिणराय।
त्यांनें जीव अजीव न कहें दोनूंइ, तीजी रास कहें छें ताहि।।

१९. असासता सगलाइ पाछें कह्या ते, त्यांनें तो जीव कहसी किण लेखें।
यांनें जीव कहें तो झूठ बोलें छें, आपरी सरधा सांह्मा क्यूं नहीं देखें।।

२०. जो चरचा रो कांम पड्यां जीव कहें तो, असासता दरब री पूछा कीजें।
असासता दरब नें जीव न सरधें, यांनें जीव कहें तो झूठो घालीजें।।

२१. जो असासता दरब नें जीव कहें तों, आपरी सरधा रो आप अजांणों।
सूनें चित हीयाफूट विकल ज्यूं, आपरी सरधां री पिण नही पिछांणों।।

२२. हिवें परजायवादी नें पूछा कीजें, संसार माहे दुख किण विध पावें।
कुण उपजावें नें कुण खपावें, करमां रो करता कुण कहावें।
ए प्रश्न पर्जायवादी नें पूछीजें।।

२३. जो उ कर्मा रों करता जीव नें थापें, तो उणरी सरधा जाबक उठ जावें।
करता अनेक असासता दीसें, असासता नें जीव यूंही वतावें।।

१६. बारह उपयोग और चौदह गुणस्थान को भी अज्ञानी जीव नहीं जानता है। इसी तरह वह चौबीस दण्डक को जीव नहीं जानता है। कोई बुद्धिमान उसे ज्ञानी नहीं जानता है।

१७. छः प्रकार के निर्ग्रन्थ, पांच प्रकार के चारित्र, उत्थान-कर्म आदि पांच प्रकार के पुरुषार्थ, सात आत्मा (द्रव्य आत्मा को छोड़कर) और सावद्य-निरवद्यह्ववह दुराग्रह कर उन्हें जीव नहीं मानता है।

१८. ऐसे जीव के अनेक भेद हैं। उन्हें जिनेश्वर देव ने निश्चय ही जीव कहा है। उन्हें वह जीव और अजीव दोनों न कहकर तीसरी राशि के अन्तर्गत कहता है।

१९. उपरोक्त कहे सारे बोल अशाश्वत हैं, उन्हें वह जीव कैसे कहेगा? यदि वह उन्हें जीव कहता है तो झूठ बोलता है। अपनी श्रद्धा की ओर वह क्यों नहीं देखता है?

२०. यदि वह चर्चा के प्रसंग में उन्हें जीव कहता है तो अशाश्वत द्रव्य के विषय में प्रश्न करना चाहिए। अशाश्वत द्रव्य को जीव नहीं मानता है। यदि वह उन्हें (अशाश्वत द्रव्य को) जीव कहता है तो उसे झूठा साबित करना चाहिए।

२१. यदि वह अशाश्वत द्रव्य को जीव कहता है तो वह अपनी श्रद्धा से ही अनभिज्ञ है। वह शून्य चित्त, हृदय-विहीन और मूढ बना हुआ अपनी श्रद्धा से ही परिचित नहीं है।

२२. पर्यायवादी से प्रश्न करना चाहिए कि जीव संसार में दुःख किस कारण से पाता है? दुःख को कौन पैदा करता है, कौन भोगता है? और कर्मों का कर्त्ता कौन कहलाता है। ये प्रश्न पर्यायवादी से पूछने चाहिए।

२३. यदि वह कर्मों का कर्त्ता जीव को बतलाता है तो उसकी श्रद्धा सर्वथा समाप्त हो जाती है। कर्म के कर्त्ता अनेक हैं (मिथ्यात्व आदि आश्रव) और वे अशाश्वत हैं। वे अशाश्वत को जीव यों ही बतलाते हैं।

२४. जो उ कर्म रों करता नें जीव नही कहें तो, घणां लोक न मांनें तिणरी वातो।
जो सरधा हुवें तो पिण छांनें राखें, एहवा कपटी रो झूठ नें गूढ मिथ्यात।।

२५. उणरी सरधा रा अहलांण एहवा दीसें छें, करमां रा करता नें गेबी जांणों।
करमां रो करता तो असासतो छें, गेबी जांणजों इण अहलांणो।।

२६. धर्म नें कर्म रो करता जीव, तिणनें जीव अजीव न कहें दोनूंइ।
जीव अजीव विनां तीजी वस्तु न काइ, तीजी कहें ते तेरासीयो होइ।।

२७. जीव अजीव विनां वस्तु थापें, तिणनें नियमाइ निश्चें तेरासीयो जांणों।
तिणनें कोइ तेरासीयों नही जांणें, ते पिण मूढमती छें अयांणो।।

२८. करमां रो करता सासतो नांही, तो उ जीव नें करता कहसी किण लेखें।
एहवा प्रश्न पूछ्यां रा जाब न आवें, जब झूठ बोलण री सेरी देखें।

२९. कें तों झूठ जांणी नें बोलें छें, कें आपरी भाषा रो आप अजांणों।
ए वात रो निश्चों तो केवली जांणें, पिण बुधवंत हूसी ते करसी पिछांणों।।

३०. श्री वीर कह्यों आचारंग मांहें, करमां रो करता छें निश्चें जीवों।
चेतन गुण परजाय सहीत ओलखसी, त्यांरे अभिंतर ग्यांन खुलसी घट दीवों।
आ सरधा श्री जिणवर भाखी।।

३१. हिंसादिक झूठ चोरी जीव करें छें, तिण किरतब सूं लागें जीवरें पापो।
ते छेदन भेदन जन्म मरण रा, चिहूं गति में दुःख भुगतें आपो।।

२४. यदि वह कर्म के कर्त्ता को जीव न कहे तो अनेक लोग उसकी बातों को नहीं मानते हैं। उसकी श्रद्धा होने पर भी वह उसको गोपन करता है। ऐसे कपटी का कथन असत्य है और उसके प्रगाढ़ मिथ्यात्व है।

२५. उसकी श्रद्धा के ऐसे लक्षण प्रतीत होते हैं। कर्म के कर्त्ता को विरोधी जानना चाहिए। कर्म का कर्त्ता अशाश्वत है, इस लक्षण से उसे विरोधी जानें।

२६. धर्म और कर्म का कर्त्ता जीव है। वह उन्हें जीव और अजीव दोनों ही नहीं कहता है। जीव और अजीव के बिना कोई तीसरी वस्तु नहीं है। जो तीसरी वस्तु कहता है, वह त्रैराशिक है।

२७. जो जीव और अजीव के बिना वस्तु की स्थापना करता है। उसे नियमतः निश्चय ही त्रैराशिक जानें। उसे कोई त्रैराशिक नहीं जानते हैं। वे भी अज्ञानी और मूढमति हैं।

२८. जब कर्म का कर्त्ता शाश्वत नहीं है तब वह जीव को कर्म का कर्त्ता किस न्याय से कहेगा? ऐसे प्रश्न पूछने पर जब उसे जबाब नहीं आता है, तब वह झूठ बोलने का मार्ग ढूंढता है।

२९. या तो वह जान बूझकर झूठ बोलता है, या अपनी ही भाषा का वह स्वयं अनजान हैह्नइस बात का निश्चय तो केवलज्ञानी जानते हैं, किन्तु जो बुद्धिमान होंगे, वे उसे पहचान लेंगे।

३०. आचारांग सूत्र में भगवान श्री महावीर ने कहा कि कर्मों का कर्त्ता निश्चय ही जीव है। जो व्यक्ति चेतना को गुण और पर्याय के साथ जानेगा, उसका आभ्यन्तर ज्ञान रूपी दीपक प्रज्वलित होगा। यह श्रद्धा जिनेश्वर देव ने बतलाई है।

३१. जीव हिंसा, झूठ, चोरी आदि करता है, उस कर्तव्य से उसके पाप कर्म का बंध होता है और वह चारों गतियों में छेदन-भेदन और जन्म-मरण का दुःख भोगता है।

३२. प्रयायवादी री सरधा परगट कीधां, केइ क्रोध करें केइ मन मांहे लाजें।
जिण आगम लोप विरुध परूपें, ते सींह तणी परें कदेय न गाजें।।

३३. इण खोटी सरधा रो उधाड कीयां सूं, केइ बुधवंत सुण सुण रहसी दूरा।
केइ विपरीत सरधा आदर नें छोडें, त्यांनें पिण वीर वखाण्या सूरा।।

३४. केइ मूंढ मिथ्याती इसडी परुपें, जीव नें जीव री परजाय नही छें एक।
जीवरी परजाय नें जीव न सरधें, ते अग्यांनी थको कूडी करें छें टेक।।

३५. पींजणी पेडा नें वले नाभ नें ओधण, इत्यादिक जूआ जूआ नांम अनेक।
यां सगला नें गाडो निश्चेंइ कहीजें, गाडा री परजाय नें गाडों छें एक।।

३६. जिम गाडा री परयाय नें गाडों कहीजें, तिम जीव री परजाय नें जीव छें एक।
जीवरी परजाय नें जीव न सरधें, तिण खोटी सरधा धारी विनां ववेक।।

३७. गाडां री परजाय तो भेली करी छें, ते तों कदेइ कालें पड जायें दूरी।
पिण जीवरी परजाय न पडे छें दूरी, उपजें उपजें नें होय जाअें पूरी।।

३८. जे जे परजाय पूरी होय जाअें, तिणरी प्रतक्ष बीजी हुवें ताहि।
जे मनख मूंओं ते देवादिक हुवो, इत्यादिक ओर रो ओर हुय जाय।।

३९. देश थकी दिष्टंत दीयों छें गाडा रो, ते बुधवंत जांण लीजों मन माहि।
पिण जीव री पर्जाय नें जीव एक छें, तिण माहें संका म आंणजों कांय।।

●

३२. पर्यायवादी की मान्यता को प्रकट करने पर कई व्यक्ति क्रुद्ध हो जाते हैं और कई व्यक्ति मन से लज्जित होते हैं। वे लोग जिनेश्वर देव की वाणी को लुप्त कर विरूद्ध प्ररूपणा करते हैं अतः वे सिंह की तरह कभी गर्जन नहीं कर सकते है।

३३. इस मिथ्या श्रद्धा का निराकरण करने से कई बुद्धिमान लोग इसे सुनकर पृथक् रहेंगे। कई लोग विपरीत श्रद्धा को स्वीकार कर पुनः छोड़ देते हैं, भगवान ने उन्हें भी शूर कहा है।

३४. कई मूढ-मिथ्यात्वी ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि जीव और जीव की पर्याय एक नहीं है। जीव की पर्याय को जीव न मानकर वे अज्ञानवश मिथ्या आग्रह करते हैं।

३५. पींजणी, पहिया, नाभि और औधन आदि अनेक पृथक्-पृथक् नाम हैं। इन सबको निश्चय ही गाड़ी कहा जाता है क्योंकि गाड़ी की पर्याय और गाड़ी एक ही है।

३६. जैसे गाड़े के पर्याय को गाड़ा कहा जाता है, वैसे ही जीव का पर्याय और जीव एक ही हैं। जो लोग जीव के पर्याय को जीव नहीं मानते हैं, उन लोगों ने बिना विवेक के मिथ्या श्रद्धा को धारण किया है।

३७. गाड़े के पर्याय तो संकलित है जो कभी भी विलग हो सकता है किन्तु जीव का पर्याय अलग नहीं होता है। यह पर्याय उत्पन्न हो-होकर विलीन होता रहता है।

३८. जो-जो पर्याय पूरा हो जाता है, उसका दूसरा पर्याय प्रत्यक्ष उत्पन्न हो जाता है। जैसे मनुष्य मरकर देवादिक हो गया। इस तरह अन्य पर्याय उत्पन्न हो जाता है।

३९. गाड़ा का दृष्टान्त देशह्नआंशिक रूप से दिया गया है। बुद्धिमान लोगों को इसे भली भांति जान लेना चाहिए। परन्तु जीव का पर्याय और जीव एक हैं। उसमें किंचित् भी शंका न करें।

●

दुहा

१. आ परयायवादी री सरधा बूरी, घोर रुद्र मिथ्यात।
हलूकर्मा किम सरधसी, ए प्रतख झूठ मिथ्यात।।

२. चेतन गुण पर्याय ते जीव छें, जोवों सूतर माहि संभाल।
चेतन गुण नें जीव सरधें नही, तिण दीयों अरिहंत सिर आल।।

३. त्यांनें साध वतावें जूजूआ, जीव रा गुण जीव साख्यात।
पिण गुघू सरीखा मांनव मांनें नही, त्यांरें दिवस तकाइज रात।।

४. त्यांनें धुर सूं तो संत मिलीयों नही, कीधों प्रजायवादी रो परसंग।
जांणें निरणें कोठें झूंबीयों, कालो नाग भूयंग।।

५. उणनें मिलें सतगुर गारलू, जो उ दूर करें पखपात।
सूतर अरथ सुणाय नें, काढे जेंहर मिथ्यात।।

६. जीवरा गुण लखण परजाय छें, त्यांनें जीव कह्यों जिणराय।
त्यांनें जीव न सरधें सर्वथा, ते चोडें भूला जाय।

७. परजायवादी री सरधा उपरें, सूतर में जाब अनेक।
पिण थोडा सा परगट करूं, ते सुणजों आंण ववेक।।

दोहा

१. पर्यायवादी की यह श्रद्धा बुरी है, भंयकर है, रौद्र रूप वाली है और मिथ्यात्व से परिपूर्ण है। इस श्रद्धा को हलुकर्मी जीव कैसे स्वीकार करेंगे? यह प्रत्यक्ष ही मृषा और मिथ्यात्व से ओतप्रोत है।

२. चेतना के गुण और पर्याय जीव हैंह्नऐसा सूत्र में भली भांति देखा जा सकता है। जो चेतना के गुण को जीव नहीं श्रद्धता है, उसने अरिहन्त देव के सिर पर आरोप लगा दिया है।

३. उन्हें साधु जीव के गुण को जीव साक्षात् बतलाते हैं तथा भांति-भांति से समझाते हैं। किन्तु उल्लू सदृश मनुज इस सच्चाई को स्वीकार नहीं करते हैं, उनके तो दिवस भी रात्रि सदृश हैं।

४. उन्हें प्रारंभ में तो शुद्ध साधु का सुयोग मिला नहीं और पर्यायवादी का संसर्ग कर लिया। यह संसर्ग वैसा ही है जैसे खाली पेट व्यक्ति को काले नाग ने डस लिया हो।

५. जैसे मंत्रविद् विष को निकाल देता है वैसे ही उसे सद्गुरु का सुयोग मिल जाए और वे सूत्र का अर्थ सुनाकर उसके दुराग्रह रूपी पक्षपात को दूर कर दें तो मिथ्यात्व रूपी विष बाहर निकल जाता है।

६. जीव के गुण, लक्षण और पर्याय को जिनेश्वर देव ने जीव कहा है। जो लोग उन्हें जीव नहीं मानते हैं, वे स्पष्ट ही भटक रहे।

७. पर्यायवादी की श्रद्धा पर सूत्र में अनेक समाधान दिया गया हैं। उनमें से कुछ प्रकट करता हूँ। आप इन्हें विवेकपूर्वक सुनें।

ढाल : २

(लय : पाखंड वधसी आरे पांच में)

ए अरिहंत वायक सतकर जांणजों रे।।

१. तीथंकर गणधर उत्म जीव छें रे, उत्म छें आचार्य ने उवझाय रे।
त्यांरा ग्यांन दरसण चारित छें निरमला रे, यांनें वांद्या सूं पातिक दूर पलाय रे।।

२. वले साध साधवी श्रावक श्राविका रे, सूतर में भाख्या छें तीर्थ च्यार रे।
त्यांनें पिण उत्म जीव जिण कह्या रे, ग्यांनादिक गुण रत्नां रा भंडार रे।।

३. यां सगलां नें जीव न सरधें सर्वथा रे, परजायवादी पाखंडी बाल रे।
वले एहवी करें छें मूढ परूपणा रे, तिण दीयों अग्यांनी मोंटों आल रे।

ए परजायवादी रो मत रूडो नही रे।।

४. ए च्यारू तीर्थ तीथंकर देव में रे, पावें गुणठाणा परज्या प्रांण रे।
जोग उपीयोग लेस्या तेहमें रे, यांनें जीव न गिणें ते मूंढ अयांण रे।।

५. त्यांरो विनों वीयावच गुण कीरत कीयां रे, बांधें तीर्थंकर गोत रसाल रे।
ते कह्यों गिनाताधेन आठमें रे, लीजों बीसोंई बोल संभाल रे।।

६. विनों वीयावच करें ते निश्चें जीव छें रे, जीव विना वीयावच कुण कराय रे।
यांनें परजायवादी जीव गिणें नही रे, ए प्रतख चोडें भूलों जाय रे।।

७. भवी दरबादिक पांचूं देव में रे, यांमें करें केई वेक्रें रूप रसाल रे।
यांरी गति आगति नें यांरों आंतरो रे, यांनें जीव न सरधें ते मूर्ख बाल रे।।

ढाल : दो

इस अर्हत् वाणी को सत्यमेव जानें।

१. तीर्थंकर और गणधर तथा आचार्य और उपाध्याय उत्तम जीव हैं। उनके ज्ञान, दर्शन और चारित्र गुण निर्मल हैं, उन्हें वन्दना करने से अशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

२. आगम में चार तीर्थ बतलाए हैंह्नसाधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। जिनेश्वर देव ने उन्हें भी उत्तम जीव कहा है, क्योंकि वे भी ज्ञान आदि गुण रत्नों के भण्डार हैं।

३. पाखण्डी और बाल पर्यायवादी इन सबको बिल्कुल भी जीव नहीं मानता है तथा मूढ़ात्मा ऐसी ही प्ररूपणा करता है। उस अज्ञानी ने बहुत बड़ा आरोप लगाया है। पर्यायवादी का यह मत अच्छा नहीं है।

४. इन चारों तीर्थों और तीर्थंकर देव में गुणस्थान, पर्याप्ति, प्राण, योग, उपयोग और लेश्या पाई जाती है। उन्हें जीव न मानने वाले मूढ़ और अनभिज्ञ हैं।

५. उनका विनय, वैयावृत्य और गुणोत्कीर्तन करने से उत्तम तीर्थंकर गोत्र का बंध होता है। यह ज्ञाता सूत्र के आठवें अध्ययन (सं.गा.) में कहा है। वहां बीस बोलों को देख लें।

६. विनय और वैयावृत्य करने वाला निश्चय ही जीव है। जीव के बिना वैयावृत्य कौन करेगा? पर्यायवादी इन्हें (विनय, वैयावृत्य आदि को) जीव नहीं मानता है, वह प्रत्यक्षतः मार्ग भूलता जा रहा है।

७. भव्य द्रव्य देव आदि पांच प्रकार के देवों में कई उत्तम वैक्रिय रूप बनाते हैं। इनकी गति, आगति और अन्तराल होता है। इन्हें जीव न मानने वाले मूर्ख और अज्ञानी होते हैं।

८. अें पेंली गति मासूं उपजें आय नें रे, अें मरनें उपजें पेंली गति मांहि रे।
देवातदेव जाअें छें मुगति में रे, यांनें सुतर में जीव कह्या जिणराय रे।।

९. परभव में जासी ते निश्चें जीव छें रें, जीव विनां गतागति करें केम रे।
इतलों न सूझें मोह अंध जीव नें रे, ओ बोलें सूनें चित गेंहला जेम रे।।

१०. भवी दरबादिक पांचूं देवनों रे, विस्तार भगोती सुतर माहि रे।
नवमें उदेसे सतकज बारमें रे, ए निरणों कर लीजों भवीयण ताहि रे।।

११. एकंद्री आदि पंचिंद्री जीव छें रे, छ काय नें जीव कही जिणराय रे।
जीवरा चवदें भेद ते जीव छें रे, त्यांनें जीव न गिणें अग्यांनी ताहि रे।।

१२. वले पर्ज्यायवादी पाखंडी इम कहें रे, पर्जाय रे नहीं छें देस प्रदेस रे।
जीवरी प्रया नें जीव मांनें नही रे, ते करें अग्यांनी कूड कलेस रे।।

१३. एकंद्री आदि पंचिंद्री जीव नें रे, देस परदेस कह्या जिणराय रे।
ते देस परदेस चेतन द्रब रा रे, जोवों भगोती सुतर माहि रे।।

१४. दसमें उदेसे दूजा सतक में रे, वले दसमां सतक रे पेंहिलें जांण रे।
सोलमें सतक उदेसें आठमें रे, ए निरणों कर लीजों चुत्तर सुजांण रे।।

१५. वले दसमें उदेशें सतक इग्यार में रे, तिहां पिण तेहीज छें विस्तार रे।
जीव अजीव देस परदेस नो रे, रूपी अरूपी नो विस्तार रे।।

८. पिछली गति से आकर जीव उत्पन्न होते हैं तथा मरकर अगली गति में उत्पन्न होते हैं। देवाधिदेव (तीर्थंकर देव) मोक्ष-गमन करते हैं। जिनेश्वर देव ने सूत्र में इन्हें जीव कहा है।

९. परभव में जाएगा, वह निश्चय ही जीव है। जीव के बिना गति और आगति कैसे करेगा? मोहान्ध जीव को इतना भी नहीं सूझता है। वह शून्य चित्त और उन्मत्त की तरह बोलता जा रहा है।

१०. भव्य द्रव्य देव आदि पांच प्रकार के देवों का भगवती सूत्र के बारहवें शतक के नौवें उद्देशक (सू. १७३ से) में विस्तार है। भव्य जीव इसका निर्णय कर लें।

११. जिनेश्वर देव ने एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों को, षड्जीवनिकाय को तथा जीव के चौदह भेदों को जीव कहा है। अज्ञानी उन्हें जीव नहीं मानता है।

१२. पर्यायवादी मतावलम्बी यों कहता हैह्नपर्याय के देश और प्रदेश नहीं होते हैं। वह जीव के पर्याय को जीव न मानकर झूठा क्लेश करता है।

१३. जिनेश्वर देव ने एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीव के देश और प्रदेश कहे हैं। ये देश और प्रदेश चेतन द्रव्य के हैं। भगवती सूत्र में देखें।

१४. दूसरे शतक के दसवें उद्देशक (सू. १३९), दसवें शतक के पहले उद्देशक (सूत्र ५,७) और सोलहवें शतक के आठवें उद्देशक में कहा है। चतुर व्यक्ति इसका निर्णय कर लें।

१५. इनके अलावा ग्यारहवें शतक के दसवें उद्देशक में भी यही विस्तार उपलब्ध है। जिसमें जीव-अजीव, देश-प्रदेश और रूपी-अरूपी विस्तार से बताया गया है।

१६. नेरइयो तिरजंच मिनख नें देवता रे, त्यारे आठोई कर्म कह्यां भगवंत रे।
ए जीव होसी तो यारें कर्म छें रे, त्यांनें निश्चेंइ जीव जांणों मतवंत रे।।

१७. चोवीसोइ डंडक नियमा जीव छें रे, नियमा कह्यौ ते विसवावीस रे।
दसमें उदेशें छठा सतक में रे, भगोती में भाख गया जगदीस रे।।

१८. जीव रा चवदें भेद सिधंत में रे, ते निश्चेंइ जीव कह्या साख्यात रे।
यांनें मूंढ मिथ्याती जीव गिणें नही रे, आ प्रतख झूठी तिणरी वात रे।।

१९. वले दशवीकालिक चोथा अधेयन में रे, निश्चेंइ जीव कहीं छ काय रे।
तिणनें अग्यांनी जीव न लेखवें रे, ते करें बूडण रों मूढ उपाय रे।।

२०. गिनाता सूतर रा तीजा अध्ययन में रे, ठांणा अंग में तीजा ठांणा मांहि रे।
छ जीव नीकाय माहे संका करें रे, अहेत असुख नें समकत जाय रे।।

२१. अरिहंत कही छें आठूं आत्मा रे, आत्मा ते निश्चें जीव साख्यात रे।
कोइ सात आत्मा नें जीव सरधें नही रे, तिणरा घट माहे घोर मिथ्यात रे।।

२२. हिंसादिक अठारें थांनक पाप रा रे, त्यां अठारां रो वेरमण ते परिहार रे।
पांच थावर नें धर्म अधर्म आकासती रे, वले सलेसी साध मोटा अणगार रे।।

२३. बादर कलेवर नें परमांणूओ रे, वले सरीर रहीत जीव छें ताहि रे।
ए सारा अडतालीस बोलां भणी रे, जीव अजीव दरब कह्या जिणराय रे।।

१६. भगवान ने नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवता के आठों ही कर्म बतलाए हैं। ये जीव होंगे, तभी इनके कर्म होंगे। मतिमान लोग इन्हें निश्चय पूर्वक जीव जानें।

१७. चौबीस दण्डक नियमतः जीव हैं। नियमतः कहा है अर्थात् वह पूर्ण सत्य है। भगवती सूत्र के छठे शतक के दसवें उद्देशक (सू. १७४ से १८२) में भगवान ने ऐसा कहा है।

१८. जीव के चौदह भेदों को सिद्धान्त में निश्चय ही जीव कहा है। मूढ-मिथ्यात्वी इन्हें जीव नहीं मानता है। यह बात उसकी प्रत्यक्ष झूठी है।

१९. तथा दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन में षड् जीवनिकाय को निश्चय ही जीव कहा है। अज्ञानी उन्हें जीव नहीं मानता है। इस तरह वह मूढ-मनुज डूबने का उपाय कर रहा है।

२०. भगवान ने ज्ञाता सूत्र के तीसरे अध्ययन (सू. २४) में तथा स्थानांग सूत्र के तीसरे स्थान (सू. ५२३) में कहा है कि जो छः जीवनिकाय के विषय में शंका करता है, वह उसके लिए अहित, असुख और सम्यक्त्व नाश का हेतु बनता है।

२१. अरिहन्त देव ने आठ आत्मा बतलाई हैं। आत्मा निश्चय ही साक्षात् जीव है। जो व्यक्ति सात आत्मा को (द्रव्य आत्मा को छोड़कर) जीव नहीं मानता है, उसके अन्तः करण में घोर मिथ्यात्व है।

२२-२३. हिंसादिक अठारह पाप स्थानक, अठारह पाप का विरमण, पांच प्रकार के स्थावर, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, सलेश्यी साधु, बादर कलेवर, परमाणु पुद्गल तथा अशरीरी जीवह्नइन अड़तालीस बोलों को जिनेश्वर देव ने जीव-अजीव द्रव्य कहा है।

२४. ए भगोती सुतर रे सतक अठारमें रे, कह्यों चोथा उदेसा माहि रे।
जीव अजीव री परजाय नें रे, जीव अजीव दरब कह्या छें ताहि रे।।

२५. जीव री परजाय नें जीव एक छें रे, जीव री पर्ज्या ते निश्चें जीव रे।
प्रज्यायवादी प्रज्याय नें जीव गिणें नहीं रे,तिण दीधी खोटी सरधा री नींव रे।।

२६. चोथे उदेसे सतक तेरमें रे, भगोती में पूछयो गोत्म सांम रे।
आप कहो सांमी किरपा करी जी रे, जीव रें जीव आवें छें कांम जी।।

२७. जब वीर कह्यों छें सुण तूं गोयमा रे, जीव रें जीव आवें छें कांम रे।
उपीयोग कांम आवें छें जीव रे रे, त्यां उपीयोगां रा छें बारे नांम रे।।

२८. जीव कह्यों छें वीर उपीयोग नें रे, निसंकपणे कीयों निस्तार रे।
जे कोइ जीव नही सरधें छें उपीयोग नें रे, ते निश्चेंइ पूरो मूढ गिंवार रे।।

२९. केवल ग्यांन तणों विनों कीयां रे, कट जाएं माठा पाप कर्म रे।
कोइ जीव न गिणें छें केवल ग्यांन नें रे, ते भूला अग्यांनी जाबक भर्म रे।।

३०. अगिनांन नें कही छें नियमा आत्मा रे, नियमा ते निश्चेंइ जीव जांण रे।
ए दसमें उदेशें सतक बारमें रे, भगोती में जोय करो पिछांण रे।।

३१. गिनांन नें नियमा कही छें आत्मा रे, नियमा ते निश्चेंइ जीव जांण रे।
दसमें उदेसें सतक बारमें रे, भगोती में जोय करों पिछांण रे।।

२४. भगवती सूत्र के अठारहवें शतक के चौथे उद्देशक (सू. ८६,८७) में जीव-अजीव के पर्याय को जीव-अजीव द्रव्य कहा गया है।

२५. जीव का पर्याय और जीव एक है। जीव का पर्याय निश्चय ही जीव है। किन्तु पर्यायवादी पर्याय को जीव नहीं मानता है। ऐसा कर उसने मिथ्या श्रद्धा की नींव लगा दी है।

२६. भगवती सूत्र के तेरहवें शतक के चौथे उद्देशक (सू. ५९) में गौतम स्वामी ने पूछाह्नभगवन्! आप कृपा कर बतलाएं कि क्या जीव के जीव काम आता है?

२७. ऐसा पूछने पर भगवान महावीर ने कहाह्नहे गौतम! तुम सुनो, जीव के जीव काम आता है। उपयोग जीव के काम आता है। उन उपयोगों के बारह नाम हैं।

२८. भगवान ने उपयोग को जीव कहा है और निशंक रूप में उसका निस्तारण किया है। यदि कोई उपयोग को जीव नहीं मानता है तो वह निश्चय ही पूर्णतः मूढ और अज्ञ है।

२९. केवलज्ञान का विनय करने से अशुभ पाप कर्म क्षीण हो जाते हैं। कोई व्यक्ति केवलज्ञान को जीव नहीं मानता है तो वह अज्ञ पुरूष सर्वथा भ्रम में भूला हुआ है।

३०. अज्ञान को नियमतः आत्मा कहा गया है। नियमतः कहा है अतः वह निश्चय ही जीव है। यह भगवती सूत्र के बारहवें शतक के दसवें उद्देशक (सू. २०६) में देखकर पहचानें।

३१. ज्ञान को नियमतः आत्मा कहा गया है। नियमतः कहा है अतः वह निश्चय ही जीव है। यह भगवती सूत्र के बारहवें शतक के दसवें उद्देशक (सू. २०६) में देखकर पहचानें।

३२. **आतमा छें तेहीज निश्चें ग्यांन छें रे, ग्यांन छें तेहीज आत्मा जांण रे।**
ते आचारंग पांचमां अध्ययन में रे, पांचमें उदेसे जोय पिछांण रे।।

३३. **जे जे दरब में जोग उपीयोग छें रे, वले लेस्या गुणठांणा प्रज्याय प्रांण रे।**
ते तो दरब निश्चेंइ जीव छें रे, ए सरधा में संका मूल म आंण रे।।

●

३२. आत्मा है, वही निश्चयतः ज्ञान है और ज्ञान है, उसे ही आत्मा जानें। यह आचारांग सूत्र के पांचवें अध्ययन के पांचवें उद्देशक (सू. १०४) को देखकर पहचानें।

३३. जिस-जिस द्रव्य में योग, उपयोग, लेश्या, गुणस्थान, पर्याप्ति और प्राण पाए जाते हैं, वे द्रव्य तो निश्चय ही जीव हैं। इस श्रद्धा में किंचित् भी शंका नहीं करें।

●

दुहा

१. परजायवादी रा मति तणा, केइ कर रह्या कूडी तांण।
त्यांनें खुलवा जाब वतावीया, साख सूतर री आंण।।

२. त्यांरी खोटी सरधा छुडायवा, काढण मूल मिथ्यात।
कितरा एक तो वले कहूं, ते सूणजों विख्यात।।

ढाल : ३

(लय : पूज जी पधारो हो नगरी सेविया)

ए अरिहंत वायक सतकर जांणजो।।

१. संजती असंजती ने संजतासंजती, एहवा बोल घणां छें ताहि हो।भवकजन।
ए सगलां नें जीव जिणेसर भाखीया, ते पनवणा भगोती माहि हो।।भवकजन।

२. संजती असंजती नें संजतासंजती, एहवा बोल घणा छें ताहि हो।
ते सगलाइ भावे जीव असासता, ते भाष्यों छें श्री जिणराय हो।।

३. समाइ पचखाण संजम नें संवर, ववेग नें विउसग जांण हो।
ए सगला नें कही छें जिणेसर आत्मा, ए भावे जीव पिछांण हो।।

४. ए सुतर भगोती रा पेंहला सतक में, नवमां उदेसा माहि हो।
समाइ आदि छहुं आत्मा भणी, भावे जीव कह्यों जिणराय हो।।

५. चारित परिणांम कह्या छें जीवरा, ठांणाअंग दसमां ठांणा माहि हो।
ते जीव रा परिणांम तों निश्चें जीव छें, तिणमें संका म आंणों काय हो।।

दोहा

१. कई पर्यायवादी मतावलम्बी दुराग्रह कर रहे हैं। उन्हें सूत्र की साक्षी से स्पष्ट जबाब बतलाए गए हैं।

२. उनके मिथ्यात्व को मूल से निकालने के लिए तथा विपरीत श्रद्धा को छुड़वाने के लिए मैं कुछ बोल और कह रहा हूं। उन्हें आप विशेष रूप से सुनें।

ढाल : तीन

यह अर्हत् वाणी सत्यमेव जानें।

१. संयमी, असंयमी और संयमासंयमीह्नऐसे अनेक बोल हैं। प्रज्ञापना और भगवती सूत्र में जिनेश्वर देव ने इन सबको जीव कहा है।

२. संयमी, असंयमी और संयमासंयमीह्नऐसे अनेक बोल हैं। ये सभी भाव जीव अशाश्वत हैं। ऐसा जिनेश्वर देव ने कहा है।

३. सामायिक, प्रत्याख्यान, संयम, संवर, विवेक और कायोत्सर्गह्नइन सबको जिनेश्वर देव ने आत्मा कहा है। इन्हें भाव जीव पहचानें।

४. भगवती सूत्र के पहले शतक के नौवें उद्देशक (सू. ४२६) में सामायिक आदि छहों आत्माओं को जिनेश्वर देव ने भाव जीव कहा है।

५. स्थानांग सूत्र के दसवें स्थान (सू. १८) में चारित्र को जीव का परिणाम कहा है। ये जीव के परिणाम निश्चय ही जीव हैं। इसमें किसी प्रकार की शंका न करें।

६. दरब कषाय जोग उपीयोग आत्मा, ग्यांन दर्शण चारित ताहि हो।
वले आठमी कही छें वीर्य आत्मा, आठोंइ जीव कही जिणराय हो।।

७. एक जीव गिणें छें दरब आत्मा भणी, ते सासती नित सदीव हो।
सेष आत्मा सात नहीं छें सासती, त्यांनें जाबक न गिणें जीव हो।।

८. आत्मा आठोंइ जीव जिणवर कही, ते सुतर भगोती मझार हो।
ए दसमें उदेसे सतक बारमें, आत्मा आठों रो विसतार हो।।

९. उ भावे जीव न सरधें असासतो, तिण सुतर दीया छें उथाप हो।
उ सांप्रत जीव नें जीव गिणें नही, यूं ही कूडों करें छें विलाप हो।।

१०. दरबे सासतो नें भावे असासतो, जीव नें कह्यों जिणराय हो।
ते सुतर भगोती रे सतक सातमें, दूजा उदेसा माहि हो।।

११. दरबे सासतो जीव नें यूं कह्यों, जीव रो अजीव न थाय हो।
भावे जीव नें कह्यों छें असासतो, ते तो परजाय पलटे जाय हो।।

१२. निजगुण फिरें नें परगुण झरपडें, ते परगुण पुदगल जांण हो।
परगुण झडीयां हुवें निजगुण निरमलो, आ सरधा घट में आंण हो।।

१३. असुध निजगुण फिरीयां सुध निजगुण हुवें, ते परगुण कर दे दूर हो।
सुध निजगुण फिरीयां असुध निजगुण हुवें, तिणसूं परगुण लागें पूर हो।।

१४. जे मेंला निजगुण मोह करम वसें, त्यां निजगुणां सूं कर्म बंधाय हो।
मोह रहीत निजगुण हुवें निरमला, त्यांसुं परगुण दूर पलाय हो।।

६. द्रव्य, कषाय, योग उपयोग, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्यह्रये आठ आत्मा बतलाई गई है। जिनेश्वर देव ने इन आठों आत्माओं को जीव कहा हैं।

७. पर्यायवादी एक द्रव्य आत्मा को जीव मानता है, जो नित्य, ध्रुव और शाश्वत है। शेष सात आत्मा शाश्वत नहीं हैं, उन्हें वह जीव नहीं मानता है।

८. भगवती सूत्र के बारहवें शतक के दसवें उद्देशक (सू. २००) में जिनेश्वर देव ने आठ आत्मा को जीव कहा है। वहां आठ आत्माओं का विस्तार बताया है।

९. जो भाव जीव को अशाश्वत नहीं मानता है, वह आगम-वाणी का उत्थापक है। जो साम्प्रत जीव में जीव नहीं गिनता है, वह मिथ्या विलाप कर रहा है।

१०. भगवती सूत्र के सातवें शतक के दूसरे उद्देशक (सू. ५९) में जिनेश्वर देव ने द्रव्य जीव को शाश्वत और भाव जीव को अशाश्वत कहा है।

११. द्रव्य जीव को शाश्वत इसलिए कहा है क्योंकि जीव का कभी अजीव नहीं होता है। भाव जीव को अशाश्वत कहा है क्योंकि पर्याय का परिवर्तन होता है।

१२. निजगुण बदल जाते हैं और परगुण निर्जीर्ण हो जाते हैं। उन परगुणों को पुद्गल जानें। परगुण के निर्जरण होने से निजगुण निर्मल होते हैं। यह श्रद्धा अन्तः करण में बिठानी चाहिए।

१३. अशुद्ध निजगुण के बदलने से शुद्ध निजगुण होते हैं। वे परगुण पुद्गलों को दूर कर देते हैं। शुद्ध निजगुण के बदलने से अशुद्ध निजगुण होते हैं। उससे प्रचुर मात्रा में परगुण का बंध होता है।

१४. मोह कर्म के उदय से जो मलिन निजगुण हैं, उनसे कर्म का बंध होता है। मोह रहित निजगुण निर्मल होते हैं, उनसे परगुण दूर पलायन कर जाते हैं।

१५. सात कर्म उदें सूं निजगुण मेंला हुवें, त्यांसूं पाप न लागें तांम हो।
ते कर्म झस्यां हुवें निजगुण निरमला, त्यांरा गुण निपन छें नांम हो।।

१६. आठ कर्म उदें हूवां नीपजें, निजगुण उदें भाव अनेक हो।
आठ करमां नें खय कीधां नीपनां, निजगुण खायक भाव विशेख हो।।

१७. च्यार कर्मां नें खयउपसम कीयां नीपजें, निजगुण खयउपसम भाव हो।
मोह कर्म उपसमीयां परगटें, निजगुण उपसम भाव हो।।

१८. ए च्यारूंइ भाव परणांमीक जीव छें, ते चेतन गुण परजाय हो।
ए भाव फिरें पिण दरब फिरें नही, ते पिण सुणजों न्याय हो।।

१९. तत्व सुध सरध्यां हुवें जीव समकती, उंधी सरध्यां मिथ्याती थाय हो।
उहीज ग्यांनी रो अगनांनी हुवें, अग्यांनी रो ग्यांनी हुय जाय हो।।

२०. नारकी देवता रो मिनख तिर्यंच हुवें, मिनख तिर्यंच देवता थाय हो।
इत्यादिक जीवरा भाव अनेक छें, ते ओर रो ओर होय जाय हो।।

२१. सासतो जीव दरब छें अनादरो, तिणरी परज्या अनंती जांण हो।
ते परज्या हांण विरध हुवें कर्म सूं, पिण दरब री नही विरध हांण हो।।

२२. जे भाव फिरें पिण दूर पडें नही, त्यां भावां रा नांम अनेक हो।
इण विध भावे जीव असासतो, ते सरधों आंण ववेक हो।।

१५. सात कर्मों (मोह कर्म को छोड़कर) के उदय से निजगुण मलिन होते हैं किन्तु उनसे किंचित् भी पाप नहीं लगता है। उन कर्मों के निर्जरण से निजगुण निर्मल होते हैं। इनके गुण निष्पन्न नाम हैं।

१६. आठ कर्मों के उदय होने से अनेक औदयिक भाव निजगुण निष्पन्न होते हैं। आठ कर्मों को क्षय करने से विशिष्ट क्षायिक भाव निजगुण निष्पन्न हुए।

१७. चार घाती कर्मों के क्षयोपशम से क्षयोपशम निष्पन्न निजगुण पैदा होते हैं। मोह कर्म के उपशम से उपशम निष्पन्न निजगुण प्रकट होता है।

१८. ये औदयिक आदि चारों भाव जीव पारिणामिक हैं। तथा चेतना के गुण और पर्याय स्वरूप हैं। ये भाव परिवर्तन शील हैं किन्तु द्रव्य परिवर्तन शील नहीं है। इसका भी न्याय सुनें।

१९. तत्त्व के शुद्ध श्रद्धान से जीव सम्यक्त्वी होता है तथा विपरीत श्रद्धान से मिथ्यात्वी होता है। इस तरह जीव ज्ञानी का अज्ञानी होता है और अज्ञानी का ज्ञानी हो जाता है।

२०. नारकी और देवता से निकलकर जीव मनुष्य और तिर्यंच होता है तथा मनुष्य और तिर्यंच से निकलकर जीव नारकी और देवता हो जाता है। ऐसे जीव के अनेक भाव (परिणमन) हैं, उनसे जीव नाना रूप धारण करता है।

२१. जीव द्रव्य शाश्वत और अनादिकालीन है। इसको अनन्त पर्याय जानें। कर्म के संयोग से पर्यायों की हानि और वृद्धि होती है किन्तु जीव द्रव्य की हानि और वृद्धि नहीं होती।

२२. भाव परिवर्तनशील हैं, किन्तु वे जीव से पृथक् नहीं होते हैं। उन भावों के अनेक नाम हैं। इस प्रकार भाव जीव अशाश्वत है। उसे विवेक पूर्वक श्रद्धना चाहिए।

२३. ओ जीव रा भाव न सरधें असासता, तिण काढ्यों छें मत कूर हो।
यांनें जीव न सरधें मूंढ मूर्ख थका, तिणरी संगत करजों दूर हो।।

२४. वले गोत्म सांमी पूछा करी जीव री, सूतर भगोती माहि हो।
ते तीजा उदेसा छठा सतक में, ते सांभल जों चित ल्याय हो।

२५. ए आदि नें अंत रहीत जीव छें, कें आदि नही अंत सहीत हो।
कें आदि सहीत नें अंत रहीत छें, कें आदि नें अंत सहीत हो।
ए गोत्म सांमी पूछ्यों श्री वीर नें।।

२६. श्री वीर जिणेसर कहें सुण गोयमा, ए च्यारूं भांगा छें जीव हो।
त्यांरा भेद विसतार कहूं छूं जूजूआ, ए सरध्यां समकत री नीव हो।।

२७. ए आदि रहीत नें अंत रहीत छें, ए अभव सिधीया जीव जांण हो।
आदि नहीं पिण अंत सहीत छें, ते भव सिधीया जीव पिछांण हो।।

२८. जे कर्म खपाए नें सिध गति में गया, त्यांरी आदि छें पिण अंत रहीत हो।
नारकी तिरजंच मिनख नें देवता, ए आदि नें अंत सहीत हो।।

२९. ए च्यारूंइ जीव जिणेसर भाखीया, त्यांनें जीव न सरधें मूढ हो।
ते बूडें छें वीर ना वचन उथापनें, कर कर कूडी रूढ हो।।

●

२३. वह जीव के भावों को अशाश्वत नहीं मानता है। ऐसा कर उसने क्रूर मत निकाला है। मूढता और मूर्खतावश वह इन्हें जीव नहीं मानता है। ऐसे लोगों की संगति नहीं करनी चाहिए।

२४. भगवती सूत्र के छठे शतक के तीसरे उद्देशक (सू. ३१,३२) में गौतम स्वामी ने भगवान से जीव के विषय में पृच्छा की है। उसे आप एकाग्र चित्त होकर सुनें।

२५. जीव अनादि-अनंत है, अनादि सान्त है, सादि अनन्त है या सादि सान्त है? ऐसा प्रश्न गणधर गौतम ने भगवान महावीर से किया।

२६. जिनेश्वर महावीर ने कहा-गौतम! सुनो! ये चारों ही विकल्प जीव के हैं। इनका भेद और विस्तार पृथक् पृथक् बतला रहा हूं। इनका श्रद्धान सम्यक्त्व की नींव है।

२७. अभवसिद्धिक (अभव्य जीव) को आदि रहित और अंत रहित जानें। भवसिद्धिक मोक्षगामी (भव्य जीव) को आदि रहित और अंत सहित पहचानें।

२८. जो जीव कर्म-क्षय कर सिद्ध गति को प्राप्त हो गए हैं, वे सादि अनन्त हैं। चार गति के जीव-नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव प्राणी सादि सान्त है।

२९. जिनेश्वर देव ने इन चारों को जीव कहा है। मूढ उन्हें जीव नहीं मानता है। भगवान के वचनों को उलटकर और मिथ्या रूढि को अपनाकर वह संसार-समुद्र में डूब रहा है।

●